शिक्षा और सेवा के चार दशक

४ अप्रैल, १९९३
प्रतियां १०००
प्रथम संस्करण

मूल्य २०० रुपये

श्री श्वे० स्था० जैन सभा
१८-डी, सुकियस लेन,
कलकत्ता - ७०० ००१
दूरभाष - २४२-६३६९

लेजर कम्पोजिंग एवं मुद्रण
प्रिन्टवेल (इण्डिया)
४६, जयमित्रा स्ट्रीट, कलकत्ता-५
दूरभाष - ३०-८४२३

दीप से दीप जले

सेवा के नाम पर आज जिस तरह की परिपाटी चल पड़ी है वह सेवा के नाम पर मात्र दिखावा है। हम आये दिन समाचार पत्रों में किसी पौधे को पानी पिलाते हुए या फावड़ा चलाकर श्रमदान करते हुए किसी नेता की तस्वीर देख सकते हैं। उद्घाटनों, शिलान्यासों एवं अभिनन्दनों की भीड़ में आज सेवा का असली मर्म तिरोहित हो गया है। "करो सेवा पावो मेवा" की उक्ति ही आज चरितार्थ हो रही है फलत: समाज एवं राष्ट्र में स्वार्थान्धता पनप रही है और सेवा का स्वरूप ही विकृत होता जा रहा है। वस्तुत: सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है और इसीलिए सेवा धर्म को अति गहन बताया गया है। सेवा का मर्म समझकर जो सेवा मार्ग पर प्रयाण करता है, वह निन्दा प्रशंसा से अप्रभावित होकर निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। कष्ट-काठिन्य उसका मार्गावरोध नहीं कर पाते एवं विघ्न-बाधाएं उसे हतप्रभ नहीं कर पाती। वह नि:शल्य, नि:स्पृह होकर अंकुठ भाव से चलता रहता है। गांधीजी ने ऐसे ही कर्मवीर को सत्याग्रही कहा है। श्री सरदारमलजी कांकरिया ऐसे ही निस्पृही, निष्काम सेवा साधक हैं। इन्होंने अपनी कर्मठता से अनासक्त सेवा का जो दीप प्रज्वलित किया है, वह दीप सदैव आलोकित रहकर कार्यकर्त्ताओं का पथ संधान करता रहे, यही हार्दिक कामना है। श्री कांकरियाजी का यह अभिनन्दन सेवा के उन शाश्वत मूल्यों का अभिनन्दन है, जिसने राष्ट्र जीवन को सदैव प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया है। तीन माह पूर्व उनके अभिनन्दन की योजना बनी एवं अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इस अल्पावधि में भारत भर से सामग्री एकत्रित करना अत्यन्त कठिन कार्य लग रहा था, लेकिन हमारे अनुरोध पर श्री कांकरियाजी से सम्बन्धित संस्मरण एवं आलेख जिन महानुभावों ने प्रेषित किये हैं, हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। ग्रन्थ को पठनीय एवं संग्रहणीय बनाने के लिए जैन विद्वानों के लेख भी प्रकाशित किये गये हैं। हम उन जैन विद्वानों के भी अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने हमारे अनुरोध को स्वीकार कर अपने महत्त्वपूर्ण आलेख हमें शीघ्र प्रेषित किये हैं। अभिनन्दन ग्रन्थ में शुभाशंसा एवं संस्मरण का प्रथम खंड है, उसके बाद श्री कांकरियाजी द्वारा लिखा गया उनका जीवन वृत प्रकाशित किया है। साथ ही उनके जीवन की विविधता को प्रदर्शित करने वाले चित्रों का एक एलबम भी दिया गया है। स्वल्प समय में इस ग्रन्थ को सुन्दर के साथ ही उपयोगी बनाने का हमने प्रयत्न किया है। कितना सार्थक एवं उपयोगी यह बन पड़ा है, यह तो सुधी पाठकवृन्द की प्रतिक्रिया से ही अवगत हो सकेगा। यह ग्रन्थ यदि कार्यकर्त्ताओं को निष्काम सेवा के लिए किंचित भी प्रेरित कर सका तो श्री कांकरियाजी का यह सर्वाधिक मूल्यवान अभिनन्दन होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

इसके मुद्रण में प्रिन्टवेल (इण्डिया) के श्री सिंघानिया जी एवं उनके कर्मचारियों का जो सहयोग मिला है, इसके लिए हम हार्दिक आभारी हैं। हम उन सबके भी अत्यन्त आभारी हैं, जिनका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहयोग हमें इसके प्रकाशन में प्राप्त हुआ है।

– सम्पादक मंडल

निष्काम सेवाभावी, उत्कट शिक्षाप्रेमी,

श्री ...

के कार-...

सादर

आ ...
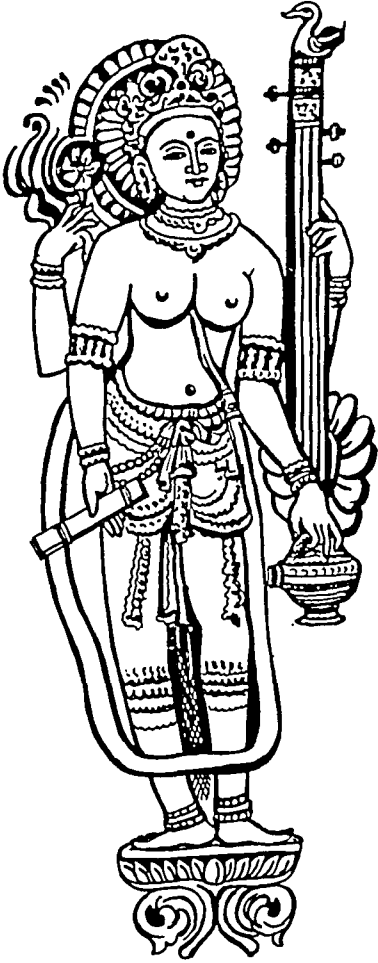
मान्यवर,

अपने जीवन के कैशोर्य से ही सेवा, सद्भावना और स्नेह की त्रिवेणी को...

निरभिमानता और निश्छल सहृदयता का प्रतीक है अपितु मानव...

अनन्य शिक्षा प्रेमी !

शिक्षा के प्रति आपके गहरे अनुराग ने शिक्षा के प्रचार-प्र...

चरितार्थ किया है, वह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है...

यथा नाम तथा गुण !

आपकी कर्मठता, दृढ़ संकल्प शक्ति, नेतृत्व की ...

प्रदान की है, वह विलक्षण तो है ही, अद्वितीय भी है।

प्रत्युत्पन्नमति सम्पन्न विरल व्यक्तित्व !

देश, काल और भाव के अनुरूप अपनी प्रत्युत्पन्नमति से प्रत्युत्प...

विरल है एवं यही कहा जा सकता है :-

विरला जाणंति गुणा, वि...

विरला परकज्ज करा, परदुःखे ...

क्रान्तदर्शी विचारक

रूढ़ परम्पराओं, अंध विश्वासों एवं कुंठित मान्यताओं के विरुद्ध ...

वहीं विद्वत् समुदाय के कंठहार भी। आपके निष्काम सेवा भाव, अप्रम...

हुए हम आपकी स्वस्थता एवं 'जीवेम् शरदः शतम्' की अशेष कामना...

दिनाङ्क

कलकत्ता,

४ अप्रैल, १९९३, रविवार

संयोजकीय

विगत काफी समय से श्री सरदारमलजी कांकरिया के अभिनन्दन की चर्चा चल रही थी, किन्तु श्री कांकरियाजी की अस्वीकृति के कारण यह सम्भव नहीं हो पा रहा था। समाज के वयोवृद्ध श्री सूरजमलजी बच्छावत, श्री कन्हैयालालजी मालू, साहित्य मनीषी श्री कन्हैयालालजी सेठिया, श्री रिखबदासजी भंसाली यह चाहते थे कि श्री कांकरियाजी का उनकी बहुमूल्य एवं बहुआयामी सेवाओं के उपलक्ष्य में अभिनन्दन बिना किसी विलम्ब के हो ही जाना चाहिए। इनकी हार्दिक इच्छा के सामने श्री कांकरियाजी को न चाहते हुए भी स्वीकृति देनी पड़ी फलत: अभिनन्दन का यह प्रसंग सम्भव हो सका। तीन माह पूर्व मुझे इसके संयोजन का दायित्व सौंपा गया। मुझे हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ कि मेरा कलकत्ता समाज से इतना प्रगाढ़ सम्बन्ध एवं परिचय नहीं है। फिर भी मुझे यह कार्य सौंपा जा रहा है। मैंने सभा के कार्यकर्त्ताओं के स्नेह-सहयोग के बल पर इस दायित्व को वहन करना स्वीकार किया।

श्री कांकरियाजी का कार्य क्षेत्र समग्र देश में फैला हुआ है एवं इतनी अल्पअवधि में इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा था, लेकिन सभा के कार्यकर्त्ताओं के अथक परिश्रम और अनवरत अध्यवसाय के बल पर यह कार्य आशातीत भाव से सम्पन्न हुआ, यह हमारे लिए अत्यन्त प्रसन्नता की बात है।

परम पूज्य गुरुदेव श्री अमर मुनिजी ने एक बार कहा था कि सत्कर्म निश्चित रूप से वन्दनीय है अत: उसके कर्त्ता का अभिनन्दन, सत्कार व वन्दन होना ही चाहिए। समाज का यह कर्त्तव्य ही नहीं दायित्व है, वह ऐसे कर्मवीरों का अभिनन्दन करे।

श्री कांकरियाजी जैसे सहृदय, संगठन कुशल, कर्मठ कर्मयोगी, उत्कट शिक्षाप्रेमी एवं निष्काम सेवाभावी का यह अभिनन्दन वस्तुत: व्यक्ति का नहीं अपितु व्यक्तित्व का अभिनन्दन है, जिसकी आज अत्यन्त आवश्यकता है। यह अभिनन्दन गुणों का है और विश्वास है कि गुणपूजा से समाज में कार्यकर्त्ताओं का मान-सम्मान बढ़ेगा एवं निष्काम सेवा भावी कार्यकर्त्ता समाज-सेवा में अधिक से अधिक प्रवृत्त हो सकेंगे।

सभा के कार्यकर्त्ताओं के साथ इस कार्य के सफल सम्पादन में श्री रिखबदासजी भंसाली, श्री रिधकरणजी बोथरा, श्री गणेशजी ललवानी, श्री भूपराजजी जैन, श्री पद्मचन्दजी नाहटा का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ एतदर्थ हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। श्री कांकरियाजी स्वस्थ रहकर दीर्घायु प्राप्त करें एवं इसी तरह समाज का मार्गदर्शन करते रहें, यही हार्दिक कामना है।

- तनसुखराज डागा
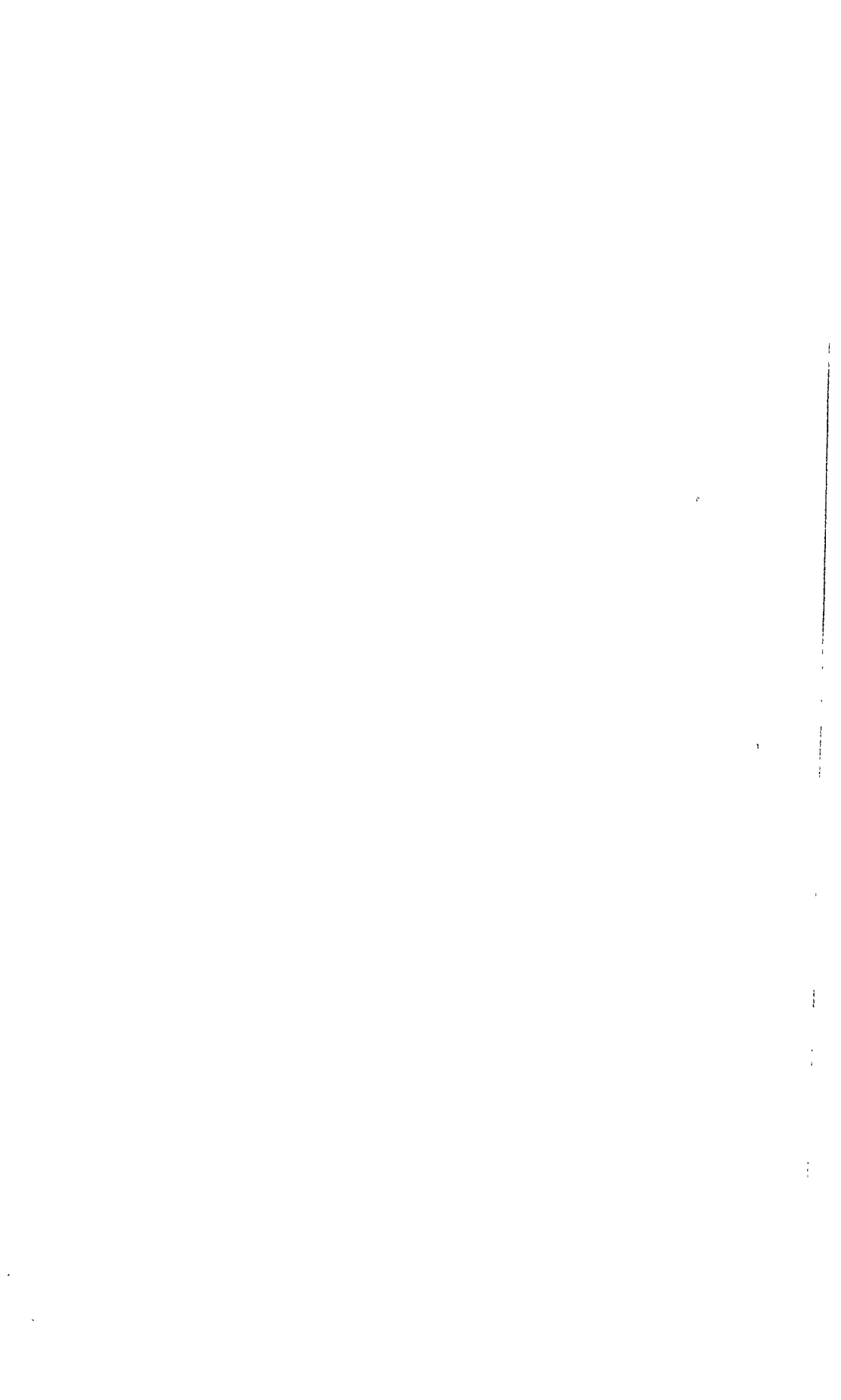
शुभाशंसा

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा
वर्तमान कार्यकारिणी समिति

[illegible] :

श्री कन्हैयालाल मालू
श्री जयचन्दलाल रामपुरिया
श्री सरदारमल कांकरिया
श्री भंवरलाल बैद

...ापति :

श्री रिखबदास भंसाली

... :

श्री रिधकरण बोथरा

...क्त मंत्री :

श्री कंवरलाल मालू
श्री सुभाष बच्छावत

...ाध्यक्ष :

श्री भंवरलाल दस्सानी

कार्यसमिति सदस्य :

१. श्री सूरजमल बच्छावत
२. श्री माणकचन्द रामपुरिया
३. श्री जयचन्दलाल मिन्नी
४. श्री शिखरचन्द मिन्नी
५. श्री बालचन्द भूरा
६. श्री बच्छराज अभ्भाणी
७. श्री केवलचन्द कांकरिया
८. श्री पारसमल भूरट
९. श्री मोहनलाल भंसाली
१०. श्री प्रेमचन्द मुकीम
११. श्री शांतिलाल जैन
१२. श्री सुन्दरलाल दुगड़
१३. श्री अनूपचन्द सेठिया
१४. श्री शांतिलाल डागा
१५. श्री मेघराज जैन
१६. श्री सुभाषचन्द कांकरिया
१७. श्री जयचन्दलाल मुकीम
१८. श्री प्रकाशचन्द कोठारी
१९. श्री उगमराज मूथा
२०. श्री गोपालचन्द भूरा
२१. श्री अशोक बच्छावत

स्थाई आमंत्रित :

१. श्री जसकरण बोथरा
२. श्री देवराज मेहता
३. श्री किशनलाल बोथरा
४. श्री तनसुखराज डागा
५. श्री चांदमल बरड़िया
६. श्री झंवरलाल कोठारी
७. श्री सोहनराज सिंघवी
८. श्री सुरेन्द्रकुमार बांठिया
९. श्री कमलसिंह कोठारी

स्वागत समिति

श्री भंवरलालजी नाहटा
श्री कन्हैयालालजी सेठिया
श्री [illegible]लालजी [illegible]
श्री [illegible]कुमारजी [illegible]
[illegible] श्री [illegible]मलजी लोढा
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

१५. श्री कमलसिंहजी रामपुरिया
१६. श्री कमलकुमारजी जैन
१७. श्री वीरेन्द्रसिंहजी बांठिया
१८. श्री गजेन्द्रजी भंसाली
१९. श्री श्यामसुन्दरजी आचार्य
२०. श्रीमती [illegible] भालोटिया
२१. श्री [illegible]सिंहजी मेहता
२२. श्री [illegible]लालजी टांटिया
२३. श्री [illegible]मलजी सिंघी
२४. श्री [illegible]मलजी सेठिया
२५. श्री [illegible]लालजी रामपुरिया
२६. श्री [illegible]लालजी [illegible]
२७. श्री [illegible]
२८. श्री [illegible]

२९. श्री रामरतनजी चौधरी
३०. श्री विनोदकुमारजी बैद
३१. श्री भागचन्दजी पहाड़िया
३२. श्री हिम्मतसिंहजी जैन
३३. श्री तिलकचन्दजी जैन
३४. श्री मनीनंदजी मुखानी
३५. श्री भागचंदजी सुराना
३६. श्री भंवरलालजी सिंघी
३७. श्री पदमचंदजी नाहटा
३८. श्री प्रदीपकुमारजी कुंडलिया
३९. श्री मोहनलालजी कोचर
४०. श्री रतनलालजी डूंगरिया
४१. श्री कान्तिलालजी श्रीमाल

मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है, महान् पुण्योदय से प्राप्त होता है। ऐसे दुर्लभ जीवन के हर क्षण को जो सार्थक करता है, उसी का जीवन अमृतमय बनता है। श्वाति नक्षत्र में सीप के मुख में पड़ा हुआ जल बिन्दु मुक्तामणि की कान्ति को प्राप्त होता है, वैसे ही समाजसेवी व्यक्ति का जीवन युग-युग तक अनमोल मुक्तामणि के समान कीर्तिमान एवं प्रभावशाली होता है। यह जीवन जनजन के लिए प्रेरणाप्रद तमोहारी दीप के समान होता है, जिसके प्रकाश में नई पीढ़ी प्रकाश प्राप्त कर अपने पथ पर आगे बढ़ती है। प्रसिद्ध समाजसेवी, कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री सरदारमलजी कांकरिया से मैं विगत अनेक वर्षों से परिचित हूं। उनकी शिक्षा-सेवाएं जन-जन के हित के लिए, कल्याण के लिए, अभ्युदय के लिए रही हैं। उनकी प्रतिभा, उनकी लक्ष्मी, उनकी सरस्वती एवं उनकी शक्ति निरन्तर जनकल्याण के मंगलमय पथ पर अग्रसर है।

जो व्यक्ति प्रसन्नता के क्षणों में श्रद्धा भक्तिपूर्वक सत्कर्म को प्रभु की पूजा समझकर प्रभु के चरणों में सत्कर्म के पुष्प अर्पित करते हैं, उन्हीं का जीवन सार्थक कहलाता है। प्रभु महावीर की दृष्टि में सत्कर्म दिव्य कल्पवृक्ष है। मैने श्री सरदारमलजी के ज्ञानालोकित सत्कर्म को देखा है। रात दिन शिक्षा के सत्कर्म में वे संलग्न रहे हैं। निन्दा, स्तुति की परवाह किये बिना वे अपना कार्य पूर्ण करते रहते हैं। भगवान महावीर की दिव्य भूमि राजगृह में पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनिजी महाराज के आशीर्वाद से संस्थापित तीर्थभूमि वीरायतन से आशीर्वचनपूर्वक मंगलभाव प्रेषित है।

- आचार्य श्री चन्दनाश्रीजी, वीरायतन (राजगृह)

वैसे तो कांकरिया परिवार ही हमारी समाज के लिए गौरव का विषय है और परिवार के प्रत्येक सदस्य ने धर्म और समाज के लिए आदर्श योगदान प्रस्तुत किया है, किन्तु श्री सरदारमलजी की तासीर कुछ और है। ये अपनी समाज के साथ पूर्ण ईमानदारी से पेश आते हैं और जो सत्य उनको स्पर्श कर गया है, उसे यथार्थ में लाने के लिए वे एक प्रकार से कूद पड़ते हैं। उनकी विचारधारा और कार्यकृति एक सी है। उनका पुरुषार्थ उनके विचारों से पूर्णतया प्रभावित है।

कहना होगा कि कार्य और विचार का पूर्ण समन्वय ही कांकरियाजी श्री सरदारमलजी हैं और एक विशेषता और है कि वे बराबर तरोताजा रहते हैं। चेहरे पर की उनकी मुस्कान उनके जीवन की प्रतिपल की तैयारी प्रदर्शित करती है। वे आशा के पूंज हैं, निराशा उनको छूती नहीं है। यही उनकी भारी सम्पत्ति है।

हमारी वीरप्रभु से यही प्रार्थना है कि ऐसे नवरत्न जो हमारी समाज के अनमोल श्रावक सम्पदा हैं, सुदीर्घकाल तक समाज को अपनी सेवा देते रहें और हमारे सामाजिक क्षितिज को उषा की भांति आलोकित करते रहें।

- जयन्त मुनि, पेटरवार (विहार)

श्री सरदारमलजी कांकरिया सचमुच अभिनन्दनीय पुरुष हैं। समाज के लिए आपकी सराहनीय सेवाएं रही हैं। विचार, सेवा और विवेक का समन्वय आपके जीवन में है। मेरी मंगल कामनाएं साथ में हैं।

- मुनि रूपचन्द

श्री सरदारमलजी कांकरिया के अभिनन्दन का समाचार सुनकर अत्यन्त आनन्द हुआ। उनके नाम से तो बहुत वर्षों से परिचित हूं, किन्तु साक्षात् परिचय चार पांच वर्ष से ही है। श्री कांकरियाजी का नाम श्री पूज्य जवाहरलालजी म० सा० के संगठन की व्यवस्था में तो बहुत ही है। स्थानकवासी समाज की सेवा भी वे अनेक वर्षों से कर रहे हैं। उनका निर्मल स्वभाव तो उनके घर रहने पर ही ज्ञात हुआ। वे दीर्घायु हों और समाज एवं राष्ट्र की सेवा सतत करते रहें, यही शुभेच्छा है।

- पं० दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद

सरदारमलजी कांकरिया!
सेवा धरम निगूढ़
अरथै कोई सो'क जन,
तू मरमी-सिरदार
कांकरिया कुल रो रतन।
मिनखपणो साख्यात
हिवड़ै में संवेदणा,
किंयां कथूं सिरदार
अलप सबद में गुण घणा
आशीषूं सौ साल-
रवै सरस जीवण-सुमन,
थारो जस सिरदार
गरणावै धरती गगन!

कन्हैयालाल सेठिया, कलकत्ता

समाज भूषण श्री सरदारमलजी कांकरिया के अभिनन्दन की योजना ज्ञात कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आप कलकत्ता जैन समाज के सर्वप्रिय कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। आपका शिक्षा-प्रेम, सौहार्द और सामाजिक एकता, जैन धर्म के प्रति सतत समर्पित भावना प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। स्थानकवासी जैन सभा के सेवा के नये-नये आयाम, नित नये आयोजन, शिक्षण कार्य में कलकत्ता में मूर्धन्य संस्थाओं की पंक्ति में लाने में आपके योगदान की प्रमुखता है। आपकी दृष्टि विशाल, असाम्प्रदायिक और औदार्यपूर्ण समन्वयात्मक प्रवृत्ति एवं वीतराग मार्ग के प्रति असीम श्रद्धा निश्चय ही आह्लादकारी है। मैं हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूं कि आप स्वस्थ, शतायु हों और अधिक समाज सेवारत हों।

— भंवरलाल नाहटा, कलकत्ता

मेरे कलकत्ते प्रवास के दौरान श्री सरदारमल जी से गहरी जान-पहचान हो गई थी व उनके कार्यों को समीप से देखने का सुअवसर भी मुझे मिला। वे जैन समाज की बहुत-सी संस्थाओं से जुड़े हैं व उसमें सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं। बच्चों की पढ़ाई में उनकी विशेष तौर पर रुचि रही है। श्री जैन विद्यालय के संचालन में तो इनका विशेष योगदान रहा है।

स्वभाव से अति नम्र, वाणी में कोमल, रहन-सहन में एकदम सादगी व दीन-दुखियों के प्रति दयाभाव सरदारमल जी के ये विशेष गुण हैं। अहम् व द्वेष भावना तो इनके समीप से भी नहीं गुजरती। सहनशीलता व विचारों में प्रगतिशील दृष्टिकोण वाले सरदारमलजी का प्रभाव जो भी उनसे मिलते हैं, उन पर पड़े बिना नहीं रहता। ऐसे व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति का सम्मान करने से न केवल सरदारमलजी के योगदान को स्मरण करने का अवसर मिलेगा, अपितु अन्य कार्यकर्त्ताओं को भी इससे प्रोत्साहन मिलेगा।

-लेफ्टिनेंट जनरल चिमन सिंह, बीकानेर

श्री सरदारमलजी कांकरिया से मेरा विगत ३२ वर्षों से निरन्तर सम्पर्क रहा है एवं उनके प्रखर व्यक्तित्व की अमिट छाप मेरे हृदय पटल पर अंकित है। चाहे विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती हो या सभा की हीरक जयन्ती, सभी जिम्मेदारियों को उन्होंने प्रामाणिकता एवं निष्ठा के साथ सम्पन्न किया है। हर समस्या का समाधान सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में करने की क्षमता उनमें प्रखर रूप में विद्यमान है।

शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में आपका महत्वपूर्ण योगदान है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री जैन विद्यालय है। आपके संतुलित चिन्तन और लगन से विद्यालय ने पश्चिम बंगाल के शिक्षण संस्थानों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। विद्यालय का वातावरण एक पारिवारिक रूप में विकसित होकर प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है। समाज को गौरवान्वित करने में आपका श्रम अद्वितीय है।

जब नवीन विद्यालय के निर्माण की परिकल्पना सभा के समक्ष आई, आपने सहर्ष यह दायित्व स्वीकार किया एवं निश्चित अवधि के पूर्व ही इसे सुचारु रूप से संचालित कर अपनी अद्वितीय क्षमता एवं लगन का परिचय दिया। जैन समाज ही नहीं वरन् जैनेतर समाज भी आपकी इस कार्य शैली पर स्तब्ध रह गया। सभा के इस स्वप्न को साकार रूप देने में आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आपने मुझे सदैव ही अनुज का स्नेह प्रदान किया। कभी-कभी वैचारिक मतभेद होने पर भी संयम एवं धैर्यपूर्वक समाधान करके विनम्रता का अद्भुत परिचय दिया। मैं उनके समर्पण के आगे स्वयं को थका पथिक महसूस करता हूं। श्री कांकरियाजी प्रारम्भ से ही गतिशील व्यक्तित्व सम्पन्न रहे हैं और आज भी उसी जोश, उत्साह और उमंग से संस्था के चतुर्मुखी विकास में अग्रणी हैं।

आप सेवा के क्षेत्र में सदैव ही प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। विकलांग शिविर हो या रक्तदान शिविर या नेत्र चिकित्सा शिविर, युवापीढ़ी को अहर्निश प्रोत्साहित कर कार्य सम्पन्न करने में ये जुट जाते हैं। जब अस्तपताल निर्माण का एक चिन्तन सामने आया, मैं सहम गया, किन्तु इन्होंने इसे भी साकार रूप देने का पूर्ण आश्वासन दिया। अपयश की परवाह किये बगैर ही समाज के प्रति दायित्व को निष्काम सेवा भावना के साथ निभाना, यह क्षमता बहुत ही कम लोगों में मिलती है। आपके अग्रज भ्राता एवं पिताजी से ये गुण, संस्कार आपको विरासत में मिले, लेकिन स्वाध्याय एवं सत्संग के सहारे इन्हें और विकसित करने का सुयोग ये सदैव ढूंढ़ते रहे।

श्री कांकरिया जी का अभिनन्दन उनके सत्कर्मों का वन्दन है, समीक्षा है। जिस तरह सागर में किसी एक सीप से ही मोती प्राप्त होता है, उसी तरह सभी को यह एक अनमोल रत्न प्राप्त हुआ है। अभी समाज को उनसे बहुत ही आशाएं, अपेक्षाएं हैं, जिन्हें वे एक दृढ़ संकल्प के साथ

शालीन, किसी बात को बिना सुदूर की सोचे न करने वाले, संकल्प के पक्के (इतने कि जब किसी जिम्मेदारी को ओढ़ लेते हैं तब अपना कदम पीछे नहीं हटाते) व्यक्ति हैं। उनसे कई बार चर्चा हुई और वे इन कसौटियों पर खरे उतरे हैं। कलकत्ता में, रतलाम में, इन्दौर में जहां भी, जब भी उनसे भेंट हुई है, मैंने उन्हें पराक्रमी और क्रांतिधर्मा श्रमणोपासक के रूप में ही पाया है। मैं अक्सर सोचता रहा हूं कि यदि उन जैसे मिजाज वाले पांच श्रावक समर्पित चित्त से किसी रचनात्मक परिवर्तन को आकार देने में जुट जाएं तो पूरे समाज में जागृति की एक नई लहर आ सकती है।'' यह एक रेखाचित्र है श्री सरदारमल कांकरिया के उस बहु आयामी व्यक्तित्व का, जिसका चित्रण तीर्थंकर के सम्पादक डॉ. नेमीचन्दजी जैन इन्दौर ने सन् १९८७ के सितम्बर-अक्टूबर के तीर्थंकर विशेषांक में किया था। तब से गंगा यमुना में न मालूम कितना पानी बह चुका है एवं श्री कांकरिया का व्यक्तिगत प्रखर से प्रखरतर एवं भास्वर से भास्वरतर होता गया है।

संयोग है कि समान विचारधर्मी सहयोगियों की एक टीम श्री सरदारमलजी कांकरिया को इन वर्षों में सतत मिलती रही। फलस्वरूप सभा का एक सपना साकार हुआ एवं कार्यकर्त्ताओं ने सेवा व शिक्षा की शृंखला में एक नई कड़ी और जोड़ी यानि- श्री जैन विद्यालय, हावड़ा का शुभारम्भ।

मेरे परिवार का सम्बन्ध इनसे व इनके परिवार से प्राय: पांच दशक से ऊपर का है। मेरा स्वयं का सम्बन्ध भी इनसे एक दशक से पूर्व का है।

श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता की स्वर्ण जयन्ती का समय था- मुख्य आयोजन से प्राय: ३-४ महीने पहिले तक समारोह को सफल बनाने के लिए, कार्यक्रम को साकार करने के लए कोई कदम बढ़ते नजर नहीं आ रहे थे। मैंने इनसे इस बात का जिक्र २-३ बार किया। बराबर यही जवाब मिलता था कि ''कर लेसां''। समारोह के प्राय: दो महीना पहिले से ही इन्होंने विद्यालय में प्रतिदिन ५-६ घंटा बैठना प्रारम्भ कर दिया। अपने मित्रों व सहयोगियों को फोन करके बुला लेते थे। देखते-ही-देखते विद्यालय का गोल्डेन जुबली समारोह अभूतपूर्व रूप से सम्पन्न हो गया। सभी ने मुक्त कंठ से इसकी सराहना की। सन् १९८२ तथा उससे कुछ वर्ष और पहले पश्चिम बंगाल सरकार ने शिक्षकों के वेतनमान में लम्बा परिवर्तन किया। विद्यालयों की कार्यकारिणी समितियां इसे लागू करने में परेशानी अनुभव कर रही थी। परन्तु श्री कांकरियाजी का सदैव की भांति एक ही रवैया रहा ''कर लेसां'' और शिक्षकों के साथ मिल बैठकर उन्होंने इसे सुलझा लिया। सभी पूर्ण संतुष्ट। विकट परिस्थितियों में भी कभी मैंने इन्हें हिम्मत हारते हुए नहीं देखा।

विद्यालय मंत्री के रूप में मेरे चयन का समय आया। समाज के वरिष्ट बुजुर्गों के आग्रह व सब तरह के पूर्ण सहयोग के बावजूद भी मेरी विद्यालय मंत्री पद सम्भालने की न तो हिम्मत ही थी और न ही इच्छा। आखिर श्री कांकरियाजी ने अपना वीटो प्रयोग किया ''मैं तुम्हारे बड़े भाई जसकरणजी की तरह हूं और तुम्हें यह काम करना है। अकेले नहीं हो, सबका पूरा सहयोग रहेगा।'' ये शब्द कोरे शब्द ही नहीं, हर परिस्थिति में हमेशा ढाल की तरह सामने आये। मैंने सभा व विद्यालय में मंत्री की हैसियत से नहीं बल्कि परिवार के एक युवा सदस्य के रूप में ही कार्य किया। समाज के बुजुर्गों के निर्णय व सही आदेश पर चलने का बराबर प्रयास किया। फलत: पूरा समाज मेरा एक परिवार बन गया तथा सबका भरपूर सहयोग एवं स्नेह मुझे मिला।

सन् १९८८ में विद्यालयों में प्रोविडेन्ट फण्ड कानून लागू हुआ और वह भी विगत सन् १९८२ के वर्ष से। वर्तमान वर्ष से तो ठीक था परन्तु पिछले सालों का प्रोविडेन्ट फण्ड उनके नियमानुसार व महंगाई भत्ते पर भी देना अधिकांश विद्यालयों के लिए सम्भव नहीं था। बड़ाबाजार के प्राय: विद्यालयों की एक बैठक इस सम्बन्ध में हुई तथा यह निर्णय लिया कि महंगाई भत्ते पर कोई विद्यालय

तब तक राशि नहीं देगा जब तक कि कोर्ट का निर्णय नहीं आता। श्री सरदारमलजी को कुछ ऐसा अहसास हुआ कि अपने विद्यालय ने महंगाई भत्ते पर फण्ड दे दिया। वे मेरे ऊपर बरस पड़े सब विद्यालयों को मरवाओगे क्या? थोड़ी देर बाद जब उन्हें मालूम पड़ा कि ऐसा नहीं हुआ है तो कहा कि रिधजी मैं तो बहुत गर्म हो गया, मेरा यही जवाब था कि मेरे बाबाजी (श्री हनुमानमलजी) भी कड़े स्वभाव के थे अत: कोई बात नहीं। इसी दिन मुझे अहसास हुआ कि अपने निकट सहयोगी की गलती भी ये स्वीकार नहीं कर पाते, बड़ा अच्छा लगा।

सभा की हीरक जयन्ती के संयोजक भी आप ही थे। काम करने का वही पुराना तरीका। ३-४ महीने पहले से इस कार्य में अपने सहयोगियों के साथ जुट गये। इस बार युवा वर्ग उनकी प्रेरणा से पूरी तादाद में कार्य में जुटा था। युवा एवं प्रौढ़ कार्यकर्त्ताओं के बीच इनका पूर्ण सामंजस्य था। दोनों के साथ इनके कार्य करने की अद्‌भुत क्षमता, युवा कार्यकर्त्ताओं के साथ हंसी एवं स्नेह का व्यवहार, मुग्ध बना देता था। युवा वर्ग ने कांकरियाजी की उपस्थिति को सदा सहज भाव में लिया फलत: उत्साहपूर्वक कार्य करने का सम्बल उन्हें मिल जाता था।

सभा की हीरक जयन्ती के समय जैन विद्वत् परिषद की एक गोष्ठी सभा भवन में चल रही थी। इस वजह से उस समय एक दीक्षार्थी बहिन का स्वागत सभा हाल में न होकर भवन के तीसरे तल्ले में बालकनी में किया गया। दीक्षार्थी बहिन के परिवार ने इसे अन्यथा लिया। उनके मन में इससे थोड़ा दुख हुआ। श्री कांकरियाजी ने बहुत ही सहज भाव से उनके घर जाकर खुले हृदय से खमत-खामणा किया। इससे न केवल मनोमालिन्य ही दूर हुआ, बल्कि वह परिवार आज भी बड़ी आत्मीयता के साथ सभा के कार्यों में पूर्णरूप से संलग्न है।

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा के निर्माण कार्य के समय इन्हें और निकट से देखने, समझने का मौका मिला। ये ऐसे सामाजिक सेवा कार्य को पूर्णतया निजी कार्य समझ कर करते हैं। थोड़ा-सा भी अपव्यय इनसे बर्दाश्त नहीं होता है। पूरे साल भर सप्ताह में ५-६ दिन निर्माण स्थल पर जाना, कार्य देखना, आवश्यक सामग्री की पूर्ति करवाना, कैसे काम जल्दी व अच्छी तरह से पूरा हो इसके लिए सबको आवश्यक निर्देश देते, अनुरोध करते। जिस कार्य के लिए जिस आदमी की जरूरत होती, वे उसके पास नि:संकोच पहुंच जाते। इतने बड़े आदमी को अपने घर पाकर प्राय: काम तो वैसे ही हो जाता। ये जबान के धनी दोनों ही अर्थों में है- जिससे जो वादा करते हैं, उसको पूरा करते हैं तथा सामने वाले आदमी को पूरा सम्मान भी देते हैं। आदमी के अच्छे कार्यों की निरन्तर प्रशंसा कर ये उसे प्रोत्साहित करते हैं, फलत: वह सामाजिक कार्य को अपना समझकर पूर्ण मनोयोग से सम्पादित करता है। यह उनके द्वारा प्रदत्त सम्मान एवं प्रोत्साहन का ही परिणाम होता है। उनका यह कथन है- "थोड़ा-सा मीठा बोलने में क्या जाता है", सचमुच चमत्कार करता है।

सभा की कार्यकारिणी समिति में भी कोई चीज समझ में न आने पर अपना स्पष्ट मत सामने रख देते हैं फिर बहुमत का निर्णय उनकी इच्छा के विपरीत होने पर भी वे इसे सहर्ष स्वीकार कर उसी के अनुसार कार्य भी करते हैं। इनके मन में अच्छे सामाजिक कार्य करने की इच्छा सदैव बलवती रही है। ये कहते हैं कि बुजुर्गों ने इस विद्यालय को बना दिया, हमें भी कुछ करना है। जब तक जीवन है, सेवा के कुछ काम करते रहना है। गरीबों के लिए एक हास्पीटल हो, इन दिनों इनकी यही बड़ी इच्छा है।

निन्यानवे के फेर में कभी नहीं लगे। बराबर यही कहते हैं- "दाल रोटी आराम से चलती है और [illegible] का क्या करना है। हम आराम से हैं, परिवार सुखी है"। ये अपने स्वास्थ्य का

पूरा ध्यान रखते हैं। शाम को एक घंटे का समय कलकत्ता क्लब में तैरने, बेडमिन्टन खेलने व कसरत में अभी भी व्यतीत करते हैं अत: इस उम्र में भी कार्य करने की पूरी क्षमता है इनमें।

सभा, विद्यालय इत्यादि के हर समारोह में समय से घंटा आधा घंटा पूर्व आ जाते हैं- पूरी निगरानी कर लेते हैं अत: आयोजन सफल रहता है। एकदम विपरीत परिस्थितियों में अकेले साहसपूर्वक कार्य करने की इनमें अपूर्व क्षमता मैंने अनेक बार देखी है। सामाजिक सेवाकार्यों में छोटे-से-छोटा कार्य करने में भी इन्हें कभी झिझक नहीं होती है। परिस्थिति व समय से समझौता करने की इनकी एक बड़ी खासियत है। लीक से हटकर इनके निर्णय समाज के लिए सदैव उपयोगी रहे हैं।

मेरा थोड़ा-सा जो उपयोग सामाजिक सेवा कार्यों के लिए हुआ एवं हो रहा है, वह इन्हीं के सान्निध्य, स्नेह व वीटो के कारण है। इनकी छत्रछाया में कार्य करने में मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूं। ऐसे निर्भीक, स्पष्टवक्ता व स्नेह से भरपूर व्यक्ति के साथ कार्य करने का एक अलग ही आनन्द है। शासन देव से यही प्रार्थना है कि वे ऐसे ही कार्य करते हुए आनन्द से शतायु हों।

रिधकरण बोथरा,
मंत्री- श्री श्वे. स्था. जैन सभा, कलकत्ता

Sri Sardarmal Kankaria a lone personality which always attracts us with love and affection, is a Jewel of Kankaria Family. His activities are diverse and pervasive.

He is a good Social-Worker, Organiser and Educationist though only with a meagre schooling. But in the bigger School of life he has acquired experience through various means. He has Organised not only the existing Shree Jain Vidyalaya, but has put the Second Unit in a schedule time at Howrah.. Shree K.L. Sethia, a well known Poet and Literateure has rightly described him as a "LOK-SEVAK" several times which is, of course, very correct.

I have the privilege to work with him for thirty years and have found him as a huge reservoir of human talents, awaiting new challanges and seeking fresh pastures across Social and Educational horizon, always aware of the ever-changing needs of the Society-I, on my own behalf and on behalf of the members of Managing Committee and staff of Shree Jain Vidyalaya, wish him a hundred years of happy prosperous and active life serving the community but nation at large.

KISHANLALL BOTHRA
President, shree Jain Vidyalaya Managing Committee, Calcutta.

My association with Shree S.M. Kankaria dates back to 1958 when I first joined Shree Jain Vidyalaya and became a member of the Managing Committee of the School. Very young and energetic Shree Kankaria was also a member of the said Committee and took very active part in the deliberations of the affairs of the School which faced many problems at the initial stages including getting recognition from the W.B. Board of Secndary Education. Pregnant with progressive ideas and always interested in the development of the School, he offered practical suggestions and helped us when we were seized with difficult problems. I remember once a member of the Managing Committee having come to know about the difficulties in getting recognition for a High School, said as to what was the necessity of getting the School upgraded when there were so many problems. I was awe struck with his remark and told our then Principal Sri R.N. Tiwari, as to how

we will pull on with such persons who are oppossed to our progressive ideas and know little about education. Sri Kankaria then told us not to be disheartened by such remarks of a signle person because all the members of the Managing Committee were one with our programme of upgradation.

This shows how progressive and educated Sri Kankaria is though he has no formal education of any significance. Impressed by his qualities he was elected secretary of the School and since then he has been occupying the post with an interval of a few terms.

I have the privilege of working with him as a vice Principal then Principal and also a member of the Managing Committee-since 1958 and my impression about him is that he is a good administrator with a very sharp brain, a social worker with progressive ideas and perhaps the richest beggar of the Sabha. It is not an exaggeration to say that without Sri Kankaria any development scheme of the Sabha and School will become a business without a bank account.

As I am due to retire within a few months I will be missing his Company in the School but I hope and trust that the family relationship that we have established will continue for ever even if we part company.

May God bless him with many more successful years of healthy and prosperous life.

K. L. Gupta
Rector, Shree Jain Vidyalaya, Calcutta

I first met Shri Kankariaji in April, 1992 in his palatial house at Queen's Park. My first encounter is still vivid in my memory. The moment I met him, I felt I was before a magnetic personality. What impressed me most was his "Humility". Yes, his greatness lies in his humility.

I had been fortunate enough to meet him on other occasion too. Each time I met him, I seemed to discover a new facet to his character. I came to know, he is an ardent social worker. Strangely enough, he always has time to give a patient hearing to all and sundry. His humanity is inexhaustible. He has an intense feeling of fellowship with his kind and grieves or rejoices in the sufferings or happiness of others with a relality as genuine as it is rare. He is full of consideration and sympathy for the difficulties of those who work under him.

He is extremely deveoted to the cause of the school. Inspite of a tight schedule, Kankariaji never fails to visit the school and is most willing to spare some precious moments to attend to our problems. He always has a kind thought and a kind word for everyone around him. His bearing of dignity tells anyone who meets him that he is a gentleman in the best sense of the word.

I shall always remember and venerate Kankariaji for years to come.

Olga Ghosh,
Head Mistress, Shree Jain Vidylaya, Howrah

श्री सरदारमल जी कांकरिया से मेरा परिचय पिछले ६-७ साल का है। परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री नानालाल जी म.सा. की परम कृपा से जब भारत के दक्षिणा पथ में उनकी आज्ञानुवर्तिनी परम-विदुषी महासती श्री नानूकंवर जी म.सा. बैंगलोर, मद्रास आदि क्षेत्रों में पधारीं तो उनके दर्शनों के लिये सम्पूर्ण भारतवर्ष के संघ प्रेमी दक्षिण भारत की ओर उमड़-उमड़ कर आने लगे।

मेरा जन्म स्थान उदयरामसर (बीकानेर) होते हुए भी कर्मस्थल दक्षिण भारत होने के कारण मुझे देशभर से आ रहे धर्म-प्रेमी श्रद्धालु भाई-वहिनों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। पहले आदर्श त्यागी श्री धर्मेश मुनिजी म.सा. आदि ठाणा तथा बाद में महासती श्री नानूकंवर जी म.सा. आदि ठाणा के दक्षिण-विहार में जो धर्म-समागम देखा उससे जहां एक ओर स्वयं मेरे वाल-संस्कारों ने करवट बदली तथा मेरी धर्म-रुचि प्रगाढ़ हुई वहीं श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के सदस्यों की सरलता-सहजता और सात्विकता के दर्शन हुए। इन्हीं संघ सदस्यों में संघ के शिखर पुरुष, संघ के हृदयहार, संघ शिरोमणि तथा संघनायक श्री कांकरियाजी शान्तभाव से आते थे और सन्तों के दर्शन करके अपने स्वभाव से सम्पर्क में आने वाले समाज को संस्कारित और सुवासित करते हुए प्रशान्त भाव से वापस चले जाते थे।

इसी आवागमन के मध्य जिन संघ प्रमुखों के प्रति मेरा विशेष आकर्षण बढ़ा और जिनके प्रति मेरे हृदय में आदर की भावना सहज ही अंकुरित हुई, उनमें श्री सरदारमल जी कांकरिया प्रमुख हैं। मुझे मेरे धर्मप्राण अग्रज उदारमना श्री सोहनलालजी सिपाणी से भी संघ तथा संघ प्रमुखों का सान्निध्य प्राप्त करने की प्रेरणा तथा सुअवसर मिला। श्री सोहनलालजी का भी श्री कांकरिया जी के प्रति विशेष आदर भाव है। इस प्रकार श्री कांकरियाजी के प्रति मेरी आत्मीयता शीघ्र ही प्रगाढ़ बन गई।

श्री कांकरिया जी को मैंने सदैव एक सजग संघ हितैषी के रूप में अनुभव किया है। मैंने जव उन्हें दक्षिण प्रवास के समय देखा तो पाया कि वे प्रत्येक व्यक्ति को प्रथम सम्पर्क में ही अपना वना लेते हैं और इस अपनत्व की डोर से ही वे उसे संघ से भी जोड़ लेते हैं। एक बूंद को, सागर में विलीन हो जाने से जैसे सागर-सा विराट व्यक्तित्व प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार एक व्यक्तित्व संघ में सम्मिलित होकर, विशाल समाज का अंगीभूत बनकर दिव्यस्वरूप प्राप्त कर लेता है। व्यष्टि को समष्टि से एकात्म करने की यह विशिष्ट प्रणाली श्री कांकरिया जी के व्यक्तित्व का एक सहज स्वभाव है। सरल शव्दों में कहूं तो श्री कांकरिया जी एक सतत् निर्मल प्रवाह हैं जो अपने प्रवाह को समृद्धतर बनाते हुए, मार्ग के प्रवाहों को आत्मसात् कर संघ प्रवाह को वृहतर रूप देते हुए समाज कल्याण के अनन्त पथ पर अनथक अग्रसर हैं।

मुझे श्री कांकरिया जी से परिचय के साथ ही उनका प्रोत्साहन मिला। उन्होंने मुझे संघ कार्यों में अधिकाधिक सहभागी वनने को बार-बार उत्साहित किया और जव मैं सचमुच संघ कार्यों में रस लेने लगा तो उन्होंने मुझे सर्वतोभावेन सहयोग भी प्रदान किया। संघ अधिवेशन में मुझे उनका स्वच्छ परामर्श और हार्दिक सहयोग मिला। कठिन समस्याओं के समाधान में उनके सुझाव मंत्र की भांति कारगर होते हैं।

संघ की प्रत्येक योजना को सफल वनाने में अपना समय, श्रम, शक्ति और धन, मुक्त भाव से समर्पित करने को सदा उद्यत रहने वाले श्री कांकरियाजी का अभिनन्दन, संघ की विकास यात्रा का अभिनन्दन है। यह एक संघ और समाज समर्पित व्यक्तित्व की सेवा की स्वर्ण जयन्ती है।

मैं स्वयं की तथा श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ की ओर से श्री कांकरियाजी के यशस्वी जीवन की कामना करते हुए उन्हें- "जीवेम् शरदः शतम्" का वरदान देने की शासनदेव से प्रार्थना करता हूँ।

- रिधकरण सिपाणी,
अध्यक्ष- श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

श्री सरदारमल जी कांकरिया से मेरा सम्वन्ध श्री अ.भा.सा. जैन संघ के माध्यम से स्थापित

हुआ। इस संघ की स्थापना में श्री कांकरियाजी का महानीय योगदान रहा है। आज से लगभग ३२ वर्ष पूर्व वे जब अपनी युवा अवस्था में समाज, राष्ट्र एवं जिन शासन की सेवा के लिये उमंगित हृदय से अपनी विशिष्ट कार्य शक्ति तथा अपूर्व संगठन कौशल के साथ सामाजिक धरातल पर एक नवीन संघ की स्थापना का विचार साकार करने को तत्परित हुए तो वे सम्पूर्ण देश के श्रद्धालु, श्रावकवर्ग के आकर्षण के केन्द्र बन गये। श्रमण परम्परा के शुद्धाचार समर्थक हजारों उभरते नौजवानों के मन में श्री कांकरिया जी का एक तेजस्वी, कर्मण्य और शासन समर्पित व्यक्तित्वयुक्त बिम्ब उभर आया। मैं भी उस समय करीब २०-२२ वर्ष का, समाज सेवा में रुचि लेने वाला नौजवान था। श्री कांकरिया जी के कर्त्तत्व की ओर मेरा युवामन सहज ही आकर्षित हुआ। मेरा परिवार शुद्धाचारी श्रावकों की परम्परा का प्रबल समर्थक, अनुयायी और सेवानिष्ठा हेतु प्रतिबद्ध था। इसलिए मुझे जिनशासन की श्रेष्ठ मर्यादाओं के संवहन हेतु अखिल भारतीय संगठन का समाचार सुखद लगा। इस प्रकार मेरा मन, संघ सेवा में और संघ सेवा में समर्पित व्यक्तियों के प्रति प्रगाढ़ आदर-भाव से भर गया। यही मेरा श्री कांकरिया जी से प्रथम भावात्मक लगाव था।

कांकरिया जी से मेरे इस भावानात्मक लगाव को परम पूज्य आचार्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म. सा. के राजनांदगांव चातुर्मास में उनसे पहली बार प्रत्यक्ष सम्पर्क के साथ ही प्रगाढ़ता मिलनी प्रारम्भ हो गई। राजनांदगांव में संघ अधिवेशन के अवसर पर मैंने एक साधारण संघ सदस्य के रूप में हजारों की भीड़ में बैठकर श्री कांकरिया जी के कार्यकलापों को देखा। मुझे यह देखकर हर्ष हुआ कि वे मंचस्थ संघ प्रमुख होते हुए भी युवकों से बातचीत करने एवं उनसे घुल-मिलने को उत्सुक रहते थे। प्राय: अधिकाधिक नौजवानों से सम्पर्क कर उन्हें संघ के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य वे अपनी मस्तीभरी अनौपचारिक बातों से सम्पन्न कर देते थे। आज अनेक दशकों बाद भी श्री कांकरिया जी की उन्मुक्त और सदा सहज यात्रा पर दृष्टि डालता हूं तो संघ में सैकड़ों युवा कार्यकर्त्ताओं को श्री कांकरिया जी की मौन मूक किन्तु महान् देन के रूप में अनुभव करता हूँ। आत्मीय सम्पर्क को संघ निधि में बदल देने का उनका यह महान् प्रयास निश्चय ही अनेकानेक अभिनन्दनों का अधिकारी है।

राजनांदगांव में कांकरियाजी से हालांकि मेरा प्रारम्भिक परिचय हुआ था किन्तु उनकी पारखी दृष्टि ने मुझे समझने में कोई भूल नहीं की और यह साधारण परिचय संघ के मन्दसौर अधिवेशन में मुझे संघ कार्य-समिति का सदस्य बनवाने से घनिष्टता में परिवर्तित होने लगा। श्री कांकरिया जी ने संघ स्थापना से लेकर आज तक युवकों को आगे बढ़ाने का अपना अभियान एक क्षण के लिये भी शिथिल नहीं होने दिया है।

शासन नायक परम पूज्य आचार्य गुरुदेव की महान् कृपा से हमारी कुल-परम्परा सदैव श्रमण-संस्कृति के शुद्धाचार स्वरूप की दृढ़ समर्थक रही है। मन्दसौर चौमासे के कुछ ही वर्ष बाद संघ के जयपुर अधिवेशन में मुझे और भंवरलाल जी कोठारी को एक साथ सहमंत्री बनाया गया। श्री कोठारी जी जैसे समाजसेवी के साथ मुझ जैसे एक साधारण कार्यकर्त्ता को इतने बड़े पद पर सर्वसम्मति से और आग्रहपूर्वक आसीन करवाया। गुण पूजक संघ की इस निर्मल गुण दृष्टि को स्मरण कर मेरा मन श्रद्धा से भर जाता है। सहमंत्री बन जाने के बाद श्री कांकरिया जी से मेरा सम्बन्ध निरन्तर गहन आत्मीयता से ओत-प्रोत होता चला गया। जयपुर अधिवेशन से आज तक कभी सहमंत्री, कभी कोषाध्यक्ष और कभी मंत्री के रूप में कार्य करते हुए मुझे कांकरिया जी का जो सबसे बड़ा गुण प्रभावित कर पाया वह है संघ के शिखर पुरुष होकर भी सदैव सामान्य रूप में रहना और समस्त संघ प्रमुखों और संघ सदस्यों के साथ अपने सम्बन्धों में निश्छलता बनाये रखना। मैं संघ का वर्षों तक उच्च पदस्थ अधिकारी रहा किन्तु कांकरियाजी के संसर्ग में रहते हुए मुझे एक क्षण के लिये भी नहीं लगा कि कांकरिया जी में कभी गुटबाजी का भाव रहा हो। वे सदैव संघ हित का परामर्श स्पष्टवादिता के साथ देते रहे। अपने मत को दो टुक शब्दों में व्यक्त करना उनकी

जीवनशैली है। यद्यपि अनेकबार, कई लोगों को नाराजगी भी हुई है। किन्तु समय की कसौटी पर उनके विचार खरे उतरे। यही कारण है कि किसी सभा में उनकी उपस्थिति में अथवा प्रत्यक्ष आमने-सामने हुए कटुविवाद के बाद जैसे ही सभा समाप्त होती उसी व्यक्ति की बांहों में बांहें डाले उन्हें देखा जा सकता है। अपने से नाराज होने वालों को कांकरियाजी एक मधुरदण्ड भी देते हैं। उनका यह दण्ड तत्काल ही कटुता को मधुरता में परिवर्तित कर देता है। वे अपने कठोर सत्य के प्रकटीकरण से किसी भी आत्मीय के आहत होने पर उनके घर भोजन या अल्पाहार के लिये मित्र मंडली के साथ जा धमकते हैं और फिर उनकी उपस्थिति में सौम्यता का स्वच्छसागर प्रवाहित हो उठता है। उसमें समस्त विभेद धुल जाते हैं। फिर से एक परिवार, एक लक्ष्य और एकसी कार्य पद्धति प्रभावी हो जाती है। कभी-कभी जब नाराज व्यक्ति दूसरे नगर या प्रान्त का होता है तो वे अपनी प्रवास योजना में उसी व्यक्ति के नगर में, प्रवास के समय उसके घर अपना निवास करते हैं। कहने का अर्थ यह है कि वे स्नेह की सरिता बहाते हुए चलते हैं और समाज-जीवन में इस समरसता निर्माण के लिये सतत् प्रयत्नशील रहते हैं।

अपने स्नहीजनों के प्रति उनका स्नेह सदा वर्द्धमान रहता है। संघ के छोटे-से-छोटे कार्यकर्त्ता को प्रोत्साहित करने का अवसर उनके स्नेहिल हृदयाकाश में उमड़ता-घुमड़ता रहता है और उचित अवसर पर उसमें अवगाहन करा देता है। मेरे साथ एकबार ऐसा ही हुआ। कलकत्ता में श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर सभा के भव्य विद्यालय भवन में भाव विभोर कार्यकर्त्ताओं के बीच सहसा मंच से सम्मान समारोह के सन्दर्भ में मेरी सेवाओं का उल्लेख करते हुए मुझे मंच पर आमंत्रित किया गया तो मैं एकबार स्तब्ध रह गया। कलकत्ता के उस भव्य समारोह में उपस्थित विभूतियों के बीच मेरा वह सम्मान वास्तव में कार्यकर्त्ताओं के प्रति श्री कांकरिया जी के हृदय का महान् और उदात्त भाव था।

उनकी एक बड़ी विशेषता है कि वे जब भी, जहां भी, अपने निजी कार्य या व्यवसाय हेतु जाते हैं, संघ को हमेशा याद रखते हैं। वे किसी को आजीवन सदस्य बना लेते हैं तो किसी को साहित्य सदस्य यानि उस व्यक्ति को संघ से तुरन्त जोड़ लेते हैं। संघ की प्रवृत्तियों की आर्थिकपूर्ति श्री कांकरियाजी के ही नेतृत्व में सम्पन्न हुई है। मूथा योजना के माध्यम से लाखों रुपये एकत्र करके मद्रास में संघ के नाम से एक फ्लैट ले लिया, जिसकी कीमत आज कई गुणा बढ़ गई है। जिस समय मद्रास में फ्लैट लिया गया उस समय उनकी बहुत आलोचना हुई, परन्तु आज सभी जानते हैं कि मद्रास में फ्लैट लेने का निर्णय संघ हित में कितना दूरदर्शितापूर्ण था। उदयपुर छात्रावास, श्री गणेश जैन ज्ञान भंडार, आगम अहिंसा समता संस्थान, जैनोलोजी विभाग, आदि श्री कांकरियाजी की ही देन हैं। आज संघ के पास जो विभिन्न नामों से कोष जमा हैं, इसका प्रयास भी कांकरियाजी का ही था। श्री सुरेन्द्र कुमार सांड शिक्षा सोसायटी की स्थापना में मुख्य भूमिका कांकरियाजी की ही थी। श्री प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार तथा सेठ स्व. चम्पालाल जी सांड स्मृति साहित्य पुरस्कार को श्री कांकरियाजी ने प्रारम्भ कराकर पूरे जैन समाज में व जैन समाज के विद्वानों में संघ का नाम गौरवान्वित किया।

श्री कांकरिया जी उदार हृदय, स्वच्छ और निर्मल मन के एक आदर्श समाजसेवी हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएं अविस्मरणीय हैं। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना और विकास में उनका योगदान सदैव आदर के साथ स्मरण किया जायेगा। हर्ष, आनन्द, उल्लास, उत्साह और उमंग की इस वेला में मैं अपनी, अपने परिवार तथा श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की ओर से श्री कांकरियाजी का अभिनन्दन करते हुए शतायु होने की कामना करता हूँ।

- चम्पालाल डागा,
मंत्री- श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

"Are you an SJVian ?" If the question has not been put this way, it's simply because no such word as 'SJVian' had ever crossed some body's mind; otherwise there are innumerable students who take mighty pride in being called the students, ex or present, of this institution, called Shree Jain Vidyalaya. And I dare say, looking back or around, there has been a person, a mighty great personality : Shree Sardar mal Kankaria, who has outstandingly given a shape, an ambience and a tradition to the Vidyalaya and enriched the proud SJVian culture as Honorary Secretary, for which it has become so eminent.

Looking back, I very well remember that fine May morning at 8 30 on the 13th, 1958 when I was interviewed by a Board of three persons. The Board asked me only a few things about my education. I was offered the post but the amount offered was not high. One of the interviewers, tall, young bespectacled and nicely dressed for summer, told me that it was the maximum they could offer me at the time, but he very emphatically added that if I joined them I would not have to regret. I joined and I must say his words proved prophetic.

I came to know just after a few minutes that the man who had told me so and assured me of my future was no other than Shree Sardarmalji Kankaria, the Secretary of Shree Jain Vidyalaya, which had been just shifted to its present location at 18/D, Sukeas Lane. The two other interviewers were Sri Ramanand Tiwari, in immaculate white Dhoti and Kurta, the newly appointed principal; and the other one of almost of my age, smart and handsome, Mr. Manick Chand Bachhawat, the Joint Secretary.

I felt at home, in no time, in the company of these people and others founder and the great enthusiastic persons around, working for the uplift of the Vidyalaya. It was bustling with activities they told me that I might have to change my classes from one room to another, every now and then, because the building was yet under construction. It had just taken off and completed only its first floor of the existing five.

The Vidyalaya was just a fledgling, then, trying to fly high, but not yet sturdy enough and it was not yet recongnised, but the spirit to work was exemplary. Mr. Kanakria, Mr. Tiwari, Mr. Bachhawat and I often met and sat together and discussed many matters. They expected a lot from me because I was the next man appointed after the Principal. I found one thing : where there is goodness a sincere will to work, an intimate and straight forward consultation about how to work and what to work on, things get smoother and move faster, however difficult and obstructive things may come in the way. And now I may say in the rise of the Vidyalaya, one of the persons, always in the Vanguard, is Shree Sardarmalji Kankaria.

During these three decades and a half of the Vidyalaya's existence on the present premises Sri kankaria has been with us. We have grown with him and he has grown with us. So a fine rapport has been establisted with him and the staff of the Vidyalaya. His constant effort has been to create an amiable relationship among the teachers, and the members of the Management and that of the S.S. Jain Sabha, under the auspices of which the Vidyalaya has its go. The result is the creation of a family like atmosphere in which it is a joy to work. Now, teachers of the Vidyalya are regarded as members of the enlarged Jain Family. This ambience enables every issue - whether it is the question of an increase in salary or for anyother benefit that the Government has given to other aided institutions of the state, is amicably settled. It is to the great credit of Shree Sardarmalji Kankaria that such settlements are reached without any din or acrimony.

So it has become a part of the Vidyalaya's tradition that simply a talk, a little persuasion, a clear understanding of the matter and a seating or two with the teachers, are sufficient to find out a solution to any pressing problem. The cordial relationship that always exists between the members of the Managing Committee and the Vidyalaya staff is never lost. And yet one may say, if there are a few important benefits which the staff has not yet

got are also soon expected to be granted by the benign efforts of Sri Sardarmalji Saheb. He has been always sympathetic to teachers cause.

Himself a fine sportsman and a great lover of sports activities, he feels sad that the Vidyalya lacks in them and the facilities available are far from satisfactory; but he wants them to be much improved despite space-constraints. Yet his untiring efforts have been always behind all laurels that the Vidyalaya has earned in sports and other such activities. The nitty-gritty of all these is that Sardarmalji Kankaria is the sheet anchor of the institution which has sent its root deep and is moving fast on its very strong even keel.

Thus, smoothly sailing with flying colours under the stewardship of Shree Sardarmalji Kankaria, The Vidyalya reached its golden Jubilee Age and celebrated it in a very fittng manner, for a week, with its last day grand spectacle in the fully packed Netajee Indoor Stadium, Jan. 15, 1984.

And I should like to say that the last day celebration become conspicuous by a suggestion by Sri Krishna Chand Agarwal, Editor, Vishwamitra. The suggestion made a deep dent on the minds of the Vidyalaya authorities and they resolved to translate that Challenging suggestion into reality. Shree Sardarmalji took the lead and the New Unit of Shree Jain Vidyalaya at Howrah is the result.

But a mere resolve is not enough. If wishes were horses; beggars must ride so goes the saying. But soon the horse of action was in motion. I remember a dinner meeting at Shree Sardarmalji's residence, attended by nearly two hundred big business and industrial magnets, honourable members of the Jain Sabhas of all denominations, to discuss the plan for the new unit of Shree Jain Vidyalaya at Howrah also for a Jain Hospital there. As education cannot wait, and a good educational institution, it was felt, Howrah was in dire need of, so Howrah Unit of the Vidyalaya got priority over the hospital. On that day I was overwhelmed to see in what high esteem Shree Sardarmalji is held. He was the ace speaker of the evening, and every proposal he made was accepted with a big applause. Greatly encouraging promises were made.

A campaign for it went on. Money proved no problem. It began to pour forth, as if, automatically. It appeared, people were waiting for "Someone" to do the right thing for them and they found that grand someone in Shree Sardarmalji Kankaria.

The magnificent six storied Howrah unit of Shree Jain Vidyalaya is a dream come true. It is no brain child of Shree Sardarmalji alone, but it has been well nurtured by him. He has stranined his every nerve to see it come into existence and become a success. It has taken off very well and a bright future awaits it with more than two thousand girls and boys admitted in both the sections (Girls & Boys) of the Vidyalaya in the very first year of its inception. It augurs well. Over years Sardarmalji has mellowed. He has grown richer in experiences, sounder in oration and more popular in public esteem. He may be suitably called the Doyen of social and educational organisers and workers.

He has vision. He has ideas. He has the capacity to translate those visions and ideas into action.

He has a wander-lust, It has taken him around the world and into every part of the country. Like an artist, he moves with his eyes, ears and brain open to receive impressions. He attends meetings, art exhibitions and parties and wherever he comes across some new ideas, events and performances, and if they happen to strike him, he tries to put them into practice. Among many such acts the last years Free Text Book Distribution among the poor needy students and the free gift of Artificial limbs to the disabled are recent examples, to quote a few. His benign efforts and active suggestions are behind them.

Sardarmalji is no academic or an academician. He is an industrialist. But he has a clear perception and deep understanding of the educational problems and the difficulties that crop up in running instutions. He has a flair of his own to do things in the right

perspective. As the secretary he gives a wider rein to the Principal to act and never to let the management interfere in the day to day administration of the Vidyalaya, its examinations and their results. He wants no classes to suffer when a teacher is absent. He is always for some extra few teaching hands. "Money is no problem," he always says. Sardarmalji is a bit worried. The old staff is on the verge of retirement. He has a deep regard for them. So as a good administrator and a visionary, he wants a second and third line of command to be prepared and well trained so that the vacuum created by the retirement of the old hands may be suitably filled to a great extent.

Here, I feel tempted to quote a slogan. In the last Parliamentary general Election of India there was a widely publicized slogan of a political party. 'My heart beats for India'. I don't know on our small level, there are some hearts, that indeed beat for Shree Jain Vidyalaya, and I dare say, it is Sardarmal Kankaria's that has the loudest, the firmest and the most constant beat for the Vidyalya, for the betterment of which, he has spared no pains.

Now, many people have come to associate shree Jain Vidyalya, with Shree Kankaria's name, and if spoken rhetorically, they say, they have become synonymous. Truly indeed, to remain and continue as the Honorary Secretary of an institution for more than three decades, with a nominal, slight break of a few years, and that too, in the best democratic tradition and way, is no mean achievement, for an individual and still commanding super estern of the friends, admirers, co-workers and honourable members of the Jain Sabha in Particular and the people in general of different communities.

It appears Sardarmalji has become a name, an inspiration and a true friend, philosopher and guide. If ever, an annal of Shree Jain Vidyalaya is written, especially since its shift to its present site the name of Shree Sardarmalji Kankaria will brilliantly shine for its ever ascending prosperity curve. It salute this multi-faced great personality who having forgone his own industrial and business interests has dedicated himself to pressing social and educational causes and to the service of the needy and suffering humanity.

I pray to god for his long life and a greater dedicated service to the society.

K. P. Verma
Vice Principal, Shree Jain Vidyalya, Calcutta

जिन शासन निष्ठ, शिक्षा प्रेमी, कर्मठ समाजसेवी, जन कल्याणकारी कार्यों में समर्पित श्री सरदारमलजी कांकरिया के साथ समाज के क्षेत्र में मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अत: उनका जीवन मुझे निकट से देखने का सौभाग्य मिला है।

आप एक विरल व्यक्तित्व के धनी एवं निष्काम कर्मयोगी हैं। उत्साह और समर्पण भाव से धार्मिक एवं जनकल्याणकारी कार्यों में सबका सहकार लेते हुए आप अविराम रूप से कठिन से कठिन परिश्रम करके निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। आपका निश्चय अडिग है। मुझे स्मरण होता है, जब भी कोई लक्ष्य निर्धारित किया गया तो आपने लक्ष्य से अधिक कार्यसम्पन्न किया। उदाहरण के लिए सन् १९८४ में श्री अ. भा. सा. जैन संघ के पूर्व अध्यक्ष श्री दीपचन्दजी भूरा के नेतृत्व में संघ प्रमुखों ने आसाम प्रवास किया। उस समय मैं भी आप महानुभावों के साथ था। करीमगंज से कूचबिहार तक पांच दिवसीय प्रवास में आपने करीब ढाई लाख रुपये दान दाताओं की इच्छानुसार बड़े परिश्रम और लगन के साथ संग्रह किये।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानेश दीक्षा रजत जयन्ती श्रमणोपासक विशेषांक के लिए निर्धारित लक्ष्य पांच लाख रुपये था, किन्तु आपके अथक प्रयासों से करीव साढ़े छ: लाख रुपये संग्रहित हुए। मुझे याद है कि जव मैं कलकत्ता गया तो आप व्यस्त रहते हुए भी मुझे साथ लेकर ३ दिन तक बरावर इस कार्य हेतु जन सम्पर्क में रहे।

जैन विद्यालय कलकत्ता के स्वर्ण जयन्ती समारोह की अपूर्व सफलता आपके मंत्रीकाल का एक कीर्तिमान है। मेरे जीवन काल में इतना सुव्यवस्थित सफल कार्यक्रम मैंने प्रथम वार देखा था। ''गणेश जैन छात्रावास, आगम शोध संस्थान'' उदयपुर को व्यवस्थित करने में आपने सराहनीय कार्य किया है।

श्री अ. भा. सा. जैन संघ वीकानेर की मद्रास सम्पत्ति की वर्तमान आय आपकी दूरदर्शिता का ज्वलन्त प्रमाण है। इसके लिए आपको अनेक वार की बैठकों में संघ उपालम्भ मिले, फिर भी आपने पूर्ण धैर्य रखा एवं रोष प्रकट नहीं किया एवं सभी की शंकाओं का समाधान करते हुए पूर्ण तटस्थता की भूमिका निभाई।

आपमें एक अद्भुत विशेषता यह है कि जो भी आपके साथ कटुता से वात करता है, आप धैर्य के साथ हंसते हुए उसके कंधे पर हाथ रखकर सौम्य व्यवहार से उसको अपना स्नेही वना लेते हैं।

भगवान महावीर के धर्म संघ में आपकी अटूट आस्था है, जिसकी प्रभावना में आप सपरिवार तन-मन-धन से बरावर करते हैं, यह संघ समाज के लिए गौरव की वात है।

मैं शासन देव से करवद्ध अर्चना करता हूं कि श्री कांकरियाजी को दीर्घायु प्राप्त हो और उनका वरदहस्त हम लोगों पर बरावर वना रहे।

— केशरीचन्द गोलछा,
कोषाध्यक्ष- श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, वीकानेर

यथा नाम तथा गुण। श्री कांकरियाजी में सरदारों जैसा अदम्य साहस और आत्मवल वहुत अधिक मात्रा में मौजूद है, वे किसी भी समय व कैसी भी परिस्थिति हो, अपने साहस व विश्वास को काम में लेते हैं। नाम को सार्थक करना भी वहुत वड़ी वात है। विरले ही होते हैं, जिनमें नाम के अनुरूप गुण होते हैं अन्यथा नाम तो लक्ष्मीवाई होता है और होती है कंडा विनने वाली। उत्साही-कांकरियाजी में इस उम्र में भी अथाह उत्साह है वे जिन कार्यों को हाथ में लेते हैं उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। हम उन्हें किसी भी क्षेत्र में देखें— पारिवारिक, सामाजिक या धार्मिक— सभी कार्यों में उत्साह व उमंग से भाग लेते हैं। वुजुर्गों के साथ वैसा व युवकों व वालकों के साथ वैसा व्यवहार करने में वे वहुत कुशल कारीगर हैं, रोते हुए को हंसाना तो उनके वांये हाथ का खेल है। नई-नई योजना वनाने में भी आप सिद्धहस्त हैं।

कांकरिया जी प्रत्येक व्यक्ति के गुणानुसार उसको वहुत प्रोत्साहित करते हैं। मैं वीस वर्षों पूर्व श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन महिला समिति की मंत्राणी थीं तव से अव तक वे मुझमें सतत उत्साह भरते रहे हैं। उसी समय में मैंने श्री जैन महिला उद्योग मंदिर की रतलाम में स्थापना करवाई तो इन्होंने तन, मन और धन से पूरा-पूरा सहयोग दिया। जव भी कोई समस्या हमारे सामने आती, हम पहुंच जाते इनके पास और आनन-फानन में ये समस्या का समाधान कर देते। उदाहरण के तौर पर रतलाम उद्योग मंदिर के भवन का प्रश्न सामने आया, इन्होंने हमें कलकत्ता वुलवाकर एक साथ दान देकर व दिलवाकर चार-पांच लाख रुपये का भवन तैयार करवा दिया। इनका इतना प्रभाव है कि कोई भी देने से मना नहीं कर सकता और कुछ ही समय में समस्या सुलझ जाती

है। इनके खड़े होते ही लोग तालियां बजाने लग जाते हैं, यानि सफलता के द्योतक इनको मानते हैं। श्री कांकरियाजी अ. भा. साधु. जैन संघ व समिति के संस्थापक, निष्ठावान, समर्पित सदस्य व प्राण माने जाते हैं। इनके जीवन में ऐसे अनेक गुण हैं, जिनका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।

श्री जैन विद्यालय का इतना बड़ा कार्य इन्होंने हाथ में लिया और उसे अपने अथक परिश्रम से अल्प समय में पूरा किया।

सरदार लोग अपनी आन, बान और शान के पक्के होते हैं, ठीक उसी प्रकार आप भी सच्चाई के लिये किसी को कुछ कहने में नहीं हिचकिचाते और उसी हिम्मत और साहस के साथ कार्य करते हैं और इसके लिये इन्हें किसी के खुश व नाराज होने की परवाह नहीं रहती है। श्री कांकरिया सा. से मेरा पारिवारिक संबंध भी है इस नाते भी व समाज के नाते भी हमने उन्हें अच्छी तरह से देखा है अत: मैं यह कह सकती हूं कि ये बहुत ही साहसी, उत्साही व विनोदी स्वभाव के व्यक्ति हैं।

मैं श्री अ. भा. साधु. जैन महिला समिति की अध्यक्ष के नाते व स्वयं की ओर से इन दोनों पति-पत्नी के दीर्घायु की कामना करती हूं और चाहती हूं कि इनका वरद हस्त हमेशा सभी पर बना रहे।

- शान्ता मेहता,
अध्यक्ष- श्री अ.भा.सा. जैन महिला समिति, चांदनी चौक, रतलाम

श्री सरदारमलजी कांकरिया के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न जुझारू व्यक्तित्व की प्रभावी छाप आज संघ, समाज एवं घर परिवार पर स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

श्री सरदारमलजी का व्यक्तित्व महान् है। वे ओजस्वी वक्ता, कुशल नेतृत्व सम्पन्न, सरल हृदय एवं त्याग में तृप्ति अनुभव करने वाले, अद्भुत संगठनकर्त्ता हैं। विपरीत परिस्थितियों में भी सहज-सरल भाव से समत्व धारण करने की अद्भुत क्षमता है उनमें। श्री कांकरियाजी का जीवन एक स्वच्छ दर्पण की तरह निर्मल है, जिसमें उनके पारदर्शी व्यक्तित्व के साथ उनका सामाजिक जीवन दर्शन भी स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है।

घाटकोपर (बम्बई) अधिवेशन का एक प्रसंग आज भी मुझे पूरी तरह स्मरण है कि महिला समिति में मुझसे विचार प्रकट करने के लिए कहा गया। मैं अपने विचारों को अभिव्यक्त कर बैठी ही थी कि श्री कांकरियाजी मेरे सामने आ गये एवं कहा कि "मामीजी आप बहुत अच्छा बोलती हैं। आपके विचार बहुत सुन्दर है"। मैं मामीजी का अतिस्नेहिल सम्बोधन सुनकर अवाक् रह गई। पूछा, मैं आपकी मामीजी कैसे? बड़ी स्नेह भरी मीठी वाणी में कहा, मेरा ननिहाल ओस्तवाल के यहां है। बस तत्क्षण ही मैं मामीजी बन गई और श्री कांकरियाजी मुझे आज तक मामीजी ही कहकर पुकारते हैं। और अत्यन्त विनम्र भाव से झुककर प्रणाम करते हैं। वस्तुत: यह उनके व्यक्तित्व की महानता है जो अपने स्नेह एवं प्रेम से दूसरों को परम आत्मीय बना लेते हैं।

ऐसा ही एक और हृदयस्पर्शी प्रसंग है। इन्दौर अधिवेशन में तीर्थंकर के सम्पादक डॉ. नेमीचन्दजी जैन साधु परम्परा पर अपना प्रवचन दे रहे थे। सभी मंत्र मुग्ध होकर सुन रहे थे। वक्तव्य अत्यन्त रोचक व प्रेरणास्पद था। श्री कांकरियाजी ने मुझसे पूछा, मामीजी कैसा लगा यह आयोजन आपको? आप जैसी विदुषी महिलाओं को पसन्द आ जाय तो हमारा यह प्रयत्न सफल है। वस्तुत: श्री कांकरियाजी की यह समन्वय भावना अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। ऐसे प्रेरणा के अक्षय स्रोत व्यक्तित्व का अभिनन्दन हम सबके लिए गौरव का अवसर है। श्री कांकरियाजी स्वस्थ रहें, शतायु हों, यही

प्रभु से प्रार्थना है।

रत्ना ओस्तवाल,
मंत्री- श्री अ.भा.सा. जैन महिला समिति

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ श्रमण परम्परा की शुद्धाचारी धारा का प्रतिनिधि संगठन है और इस संघ की सम्वत् २०१९ आश्विन शुक्ला द्वितीया की स्थापना के कुछ समय बाद सं० २०२२ में मुझे इस नवगठित संघ का अध्यक्ष बनने का सौभाग्य मिला। संघ स्थापना के समय से आज तक संघ सेवा में अनथक जुटे हुए जो थोड़े से नवरत्न हैं, श्री सरदारमलजी कांकरिया उनमें अग्रगण्य हैं।

आज से २७ वर्ष पूर्व संघ के रायपुर अधिवेशन में जब मुझे श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ का अध्यक्ष पद सौंपा गया और निरन्तर ३ वर्ष तक मुझे इस गरिमामय पद के दायित्वों का निवर्हन करना पड़ा तो मैंने अपने उस प्रथम कार्यकाल में श्री सरदारमलजी कांकरिया को सदैव अपना सच्चा सहयोगी पाया। एक अखिल भारतीय संगठन, वह भी नवजात ऊपर से पूर्व स्थापित संघों और कार्यरत संस्थाओं का असहयोगी और कभी-कभी विरोधी रुख अर्थात् प्रतिकूल परिस्थितियों में दृढ़संकल्प के साथ सहयोगी बनने वाले, कभी हार न मानने वाले और सदा उत्साह से भरे युवा सहयोगी के रूप में श्री सरदारमलजी की छवि आज भी मेरे मन-मस्तिष्क में बहुत बार तैर जाती है। संघ का कालजयी रथ, इसकी सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति का रथ अनवरत आगे बढ़ता रहा और इसके विराट स्वरूप धारण करने के लगभग २५ वर्ष बाद पुनः मुझे संघ अध्यक्ष पर संघ ने असीम स्नेह और अपार आग्रह के साथ सन् १९८८ में आसीन कराया। दो वर्ष अर्थात् सम्वत् २०४६ तक के इस कार्यकाल में मैं यह देखकर सुखद हर्षानुभूति से गद्‌गद् हो उठा कि मुझे श्री कांकरियाजी का वही निस्वार्थ स्नेह, सहकार सुलभ है। समय का अनथक प्रवाह भी जिस महामानव को उसकी संघनिष्ठ कर्मण्यता को रंचमात्र भी थका न सका, उन श्री कांकरियाजी के अभिनन्दन का समाचार सुनकर मेरा मन-मयूर नाच उठा।

लगभग ३० वर्ष से अधिक की इस सहयात्रा में आयु के अन्तर को किंचित भी बाधक न बनने देते हुए कर्म के हर मोड़ पर चाहे वह धर्मपाल क्षेत्र का घनघोर प्रवास और संगठन कौशल के परिचय का क्षण हो अथवा श्री गणेश जैन छात्रावास या आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत शोध संस्थान के प्रादुर्भाव या उदयपुर विश्वविद्यालय में जैनोलोजी विभाग की स्थापना का सुअवसर हो, प्रत्येक कार्य को उसके चरम स्वरूप तक पहुंचाने में अपनी भूमिका को पहिचानने और सार्थक रूप से क्रियान्वित करने में श्री कांकरियाजी ने कभी चूक नहीं की। वे सदा अचूक रहे। किसी भी संघ अध्यक्ष, संघ प्रमुख को ऐसे अविचलित समर्थ सहयोगी पर गौरव होना स्वाभाविक है और मैं इस विषय में जितना ही सोचता हूं, श्री कांकरियाजी के प्रति मेरे मन की ममता घनघोर घटा की तरह उमड़-घुमडकर बरस जाने को मचल उठती है।

श्री सरदारमलजी कांकरिया सच्चे अर्थों में एक मंत्रदृष्टा हैं। वे नवीन कार्यों और योजनाओं के कुशल रचनाकार व निष्णात शिल्पी हैं। उनके हृदय में संघ और समाज तथा विशेषकर युवकों और महिलाओं की उन्नति में नित्यनवीन योजनाएं आकार लेती रहती हैं और तदर्थ अर्थ एवं अन्य संसाधन जुटाने की अपनी बेजोड़ क्षमता से वे इन योजनाओं को मूर्त रूप देने में जुट जाते हैं और ऐसे प्रत्येक अवसर पर सफलता उनके चरण चूमती है।

संघ की बहुआयामी, विराट प्रवृत्तियों के सुसंचालन हेतु जब भी धन की जरूरत पड़ी अपनी विलक्षण कार्यशैली से श्री कांकरियाजी सदा आवश्यकता प्रभूत धन जुटाने में सदैव अग्रणी रहे। संघ की अर्थ-व्यवस्था की नींव में श्री कांकरियाजी का अनेक दशकों तक ऐसा सराहनीय योगदान

निरन्तर मिलता रहा कि अनोपचारिक रूप से जन-जन उन्हें अर्थमंत्री के रूप में जानने और सम्बोधित करने लगा।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री कांकरियाजी ने मुझे अग्रज मानते हुए सदैव मेरे साथ आदरपूर्ण व्यवहार किया। उनकी सच्ची और आत्मीय श्रद्धा भावना ने मुझे बहुधा स्नेहाभिभूत किया है और मैं उन्हें अनुज की भांति हृदय में संजोये रहता हूं। वस्तुत: श्री कांकरियाजी संघ परिवार के एक ज्योर्तिमय रत्न हैं।

उनके अभिनन्दन की इस हर्षोल्लास पूर्ण वेला में मैं उनके स्वस्थ दीर्घायुष्य की मंगलकामना करता हूं।

- गणपतराज बोहरा, पीपलिया कलां,
पूर्व अध्यक्ष- श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

श्री सरदारमल जी कांकरिया, सुश्रावक होने के साथ-साथ एक कर्मठ कार्यकर्ता, निष्काम सेवाभावी, अनन्य शिक्षा प्रेमी, कुशल संगठनकर्त्ता एवं संस्थाओं के लिये अर्थ एकत्रित करने में पारगंत एवं विचक्षण व्यक्तित्व के धनी हैं।

श्री कांकारियाजी मूलत: राजस्थान में नागौर जिले में गोगोलाव ग्राम के हैं, पर व्यवसाय की दृष्टि से आपके पूर्वज बंगाल पधारे। हिन्दुस्तान के कई नगरों- कलकत्ता, दिल्ली, जोधपुर आदि में आपका व्यवसाय फैला हुआ है। आपके पिता स्व. श्री किशनलालजी कांकरिया समाज के जाने-माने सुप्रतिष्ठित एवं सफल उद्योगपति थे, अत: आपको प्रतिभा विरासत से ही मिली हुई है।

लगभग ३५ वर्ष पूर्व गोगोलाव में उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. का चातुर्मास श्रमण संघ बनने के पश्चात् हुआ था। वह आपके परिवार द्वारा कराया गया था, तब आप युवा थे, लेकिन आप धार्मिक संस्कारों से ओत-प्रोत थे

जब उपाचार्य श्री ने श्रमण संघ से २०१९ में श्रमण संस्कृति को निर्मल रखने हेतु उदयपुर में पृथकत्व की घोषणा की तब आपका उसमें पूरा योगदान रहा एवं अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना में आपने रीढ़ की हड्डी की तरह कार्य किया। आप क्वालिटी चाहते हैं, क्वानटिटी नहीं। आपका कहना है कि हमारे आराध्य संत सतियां निर्मल चारित्र का पालन करने वाले हों चाहे वे संख्या में कम ही हों। जब से संघ की स्थापना हुई है तब से आप संघ को तन-मन-धन से सहयोग तो करते ही हैं, पर आप संघ की समस्त गतिविधियों से ऐसे जुड़े हुए हैं कि संघ के सभी कार्यकलापों में आपका वर्चस्व नजर आता है।

अद्भुत पारखी : आपमें व्यक्तित्व को पहचानने की, परखने की, समझने की अद्भुत शक्ति है। सम्वत् २०२९ में जयपुर में अचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के वर्षावास में आपसे सम्पर्क हुआ, इसके पूर्व मैं आचार्य श्री के दर्शनार्थ बहुत कम जाया करता था। आपने सम्वत् २०३० में संघ की मिटींग में अध्यक्ष पद के लिए मेरे नाम की चर्चा की जो कि एक अनहोनी बात थी, क्योंकि मेरा तो आना-जाना भी नहीं था और मेरे से परिचित भी बहुत कम लोग थे पर आपका सुझाव किसी को अमान्य हो, ऐसा सम्भव ही नहीं। यह आपकी प्रतिभा और वर्चस्व ही है कि सभी आपके परामर्श को स्वीकार करते हैं। आपने संघ में कई नये-नये उत्साही व्यक्तियों को जोड़ा है, जिसके कारण आज साधुमार्गी संघ का सर्वांगीण विकास हुआ है।

धर्मपाल प्रवृत्ति जो कि साधुमार्गी संघ की मुख्य प्रवृत्ति है, उसमें भी आपकी पूर्ण रुचि है। प्रवासों में, पद-यात्राओं में आप सपरिवार मित्र मण्डली सहित उपस्थित होते ही हैं।

विनोद प्रिय : आप हमेशा हंसमुख रहते हैं एवं विशेष विनोद प्रिय हैं। समय-समय पर गम्भीरता के अथवा शुष्क वातावरण में आपकी विनोद प्रिय वार्ता सभी को हल्कापन महसूस कराकर प्रसन्न करती रहती है।

आप सद्साहित्य में विशेष रुचि लेते हैं एवं चाहते हैं कि जो भी साहित्य प्रकाशित हो, वह उच्चस्तर का हो। आप डॉ. सागरमल जी जैन, डॉ. नेमीचन्द जी जैन इन्दौर एवं पं. दलसुख मालवणिया आदि विद्वानों से विशेष प्रभावित हैं और चाहते हैं कि संघ ने विद्वान तैयार करने के लिए जो आगम अहिंसा-समता प्राकृत शोध संस्थान की स्थापना की है उसका पूरा-पूरा उपयोग हो। आप इस संस्थान के मानद् मंत्री हैं एवं आपके प्रयत्नों से ही यह संस्था विद्वानों को तैयार करने के साथ-साथ अच्छा तात्विक, आगमिक साहित्य प्रकाशित कर रही है।

अद्‌भुत प्रेरक : जब भी ध्रुव फण्ड बनाना हो या किसी भी प्रवृत्ति के लिए राशि एकत्रित करनी हो, तो उसमें आप इतने सिद्धहस्त हैं कि अल्प समय में ही आपकी प्रेरणा से सब खुशी-खुशी अर्थ सहयोग कर देते हैं। आपकी बात को कोई टाल नहीं सकता, आपको संघ की रीढ़ की हड्डी कहा जाता है।

सफल व्यवसायी : आपने, अपने पूर्वजों की तरह ही व्यवसाय में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की, आप लक्ष्मी पुत्र हैं। आपके बहु आयामी व्यवसाय हैं एवं व्यवसाय क्षेत्र भी काफी विस्तृत है। देश के सभी महानगरों में आपका व्यवसाय है।

स्पष्ट वक्ता : आप में इतना साहस है कि आप जो भी बात हो स्पष्ट कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति स्पष्ट सुनने का आदि नहीं होता, अत: कभी-कभी सामने वाले को अप्रिय भी लग जाती है। ऐसी स्थिति में आप सहज होकर क्षमा याचना करने के विशिष्ट गुण को विस्मृत नहीं कर सामने वाले को तत्काल प्रसन्न भी कर लेते हैं।

कांकरिया परिवार एक प्रतिष्ठित, दानवीर परिवार है। आपने परिवार की प्रतिष्ठा का सर्वांगीण विकास किया है। आपने अपने बड़े भाईसाहब श्री पारसमल जी की आज्ञा हमेशा शिरोधार्य की है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती फूलकंवर बाई कांकरिया जो संघ की महिला समिति की पूर्व अध्यक्षा हैं, आपकी प्रेरणा स्रोत हैं। पुत्र, पुत्रियों, पौत्र, पौत्रों सहित आपका सुखी, समृद्ध, धर्म-संस्कार युक्त परिवार है। आचार्य प्रवर के जोधपुर चातुर्मास का श्रेय भी आपके परिवार को ही जाता है जो चातुर्मास में तन-मन-धन से पूर्णतया समर्पित था।

आप हमेशा लोकोपकारी, जनकल्याणकारी कार्यों में अग्रणी रहते हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र में अभिवृद्धि करें, यही मेरी प्रशस्त कामना है।

- गुमानमल चोरड़िया,
पूर्व अध्यक्ष- श्री अ.भा.सा. जैन संघ, बीकानेर

श्री सरदारमलजी कांकरिया मिलनसार शिक्षा प्रेमी व कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। जब श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की सम्वत् २०१९ आसोज सुदी द्वितीया को स्थापना हुई, उस समय आपने कई शहरों का दौरा कर इस संघ को मजबूत बनाने में काफी श्रम किया। फलस्वरूप संघ का प्रत्येक सदस्य श्री कांकरियाजी से परिचित है। श्री कांकरियाजी संगठन प्रेमी के साथ-साथ शिक्षा प्रेमी हैं। श्री कांकरियाजी में एक खूबी है, वे जिनसे भी मिलते हैं, अपने सरल व्यवहार से उन्हें अपना बना लेते हैं।

- धनराज कोठारी, ब्यावर

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि श्री सरदारमलजी कांकरिया का अभिनन्दन समारोह दिनांक ४ अप्रैल, १९९३ को श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा कलकत्ता द्वारा आयोजित है। वस्तुतः ऐसे कर्मठ, शिक्षानुरागी, उदारमना, दूरदर्शी व्यक्तित्व का अभिनन्दन बहुत पहले होना चाहिए था।

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का सद्भाग्य है कि ऐसे व्यक्ति संघ की स्थापना काल से जुड़े हुए हैं। मैं बड़ा सौभाग्यशाली था कि जब मैं इस संघ का अध्यक्ष बना तब मंत्री पद पर सहयोगी के रूप में कर्मठ और व्यवस्था कुशल श्री कांकरियाजी का मनोनयन हुआ था। इन्होंने अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण सफलता के साथ निर्वाह करते हुए संघ को कई ऊंचाइयों पर प्रतिष्ठित किया। मंत्री पद से निवृति के बाद भी संघ को आपकी अमूल्य सेवाएं और सर्वतोभावेन सहयोग निरन्तर मिल रहा है, यह सदा स्मरणीय रहेगा।

मैं जब से आपके परिचय में आया, आपकी लगनशीलता और कार्य प्रणाली से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूं। व्यावसायिक व्यस्तता के बावजूद संघ के प्रत्येक कार्यक्रम में आपकी उपस्थिति उसमें चार चांद लगा देती है। साधुमार्गी जैन संघ की विशिष्ट विभूतियों में से आप एक हैं जो भले ही किसी पद पर न हो पर आप संघ की रीढ़ की हड्डी के समान हैं जिन पर संघ का पूरा दारोमदार निर्भर है। समता विभूति आचार्य नानेश के आप अनन्य भक्त एवं निष्ठावान श्रावक हैं।

इस शुभ अवसर पर मैं वीर प्रभु से आपके दीर्घायु होने एवं स्वस्थ रहने की मंगल कामना करता हूं।

- पी. सी. चौपड़ा,
पूर्व अध्यक्ष- श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि सभा ने समाज के सेवाकर्मी, समाज गौरव श्री सरदारमलजी कांकरिया को उनकी पुनीत समाज सेवाओं तथा जन मांगलिक कार्यों में महत्वपूर्ण सहयोग के लिए सम्मानित तथा सविशेष अभिनन्दन करने का सत् संकल्प लिया है।

कविवर रहीम के शब्दों में :-

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अंखियां निरखि, अंखियन को सुख होत।।

श्री कांकरियाजी सामाजिक एवं व्यक्तिगत रूप से मेरे अन्तरंग बन्धु, सुहृद और कर्म सहयोगी विगत तीन दशकों से रहे हैं। उनके मन, वचन और कर्म का प्रत्यक्ष स्वरूप मेरे हृदय पर अंकित है। जब तक मैं जैन विद्यालय कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष का कार्य भार वहन कर रहा था, श्री कांकरियाजी ने शिक्षा मंत्री का पदभार दूरदर्शिता पूर्ण रूप से सम्भाला। उनकी योग्यता, कार्यप्रणाली और प्रत्युत्पन्न बुद्धि से विद्यालय को जैसा विकास, प्रसार और सुयश मिला है वह उनकी योग्यता और कार्यदक्षता का परिणाम है। मैं उनके सरल स्वभाव, कार्य दक्षता तथा समाज सेवा की भावना से सतत प्रभावित रहा हूं। मैं उनके स्वस्थ दीर्घायु की हार्दिक मंगल कामना करता हूं।

- जयचन्दलाल रामपुरिया, कलकत्ता

श्री सरदारमलजी कांकरिया को मैं पिछले तीन दशकों से स्थानकवासी समाज की विभिन्न संस्थाओं को सेवाएं देते देख रहा हूं। इनकी सेवा भावना, कर्त्तव्य निष्ठा व संघीय समर्पण बेजोड़ है। इनकी व्यावहारिकता सचमुच अनुकरणीय है।

मैं सर्वशक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि भविष्य में भी श्री कांकरियाजी समाज की कल्याणकारी योजनाओं के निरन्तर विकास में सहयोगी बने रहें।

– रतनलाल रामपुरिया, कलकत्ता

"उदार चरितानां वसुधैव कुटुम्बकम्" के नैसर्गिक उदार चरितवान के लिए यह अखिल विश्व ही उनका अपना परिवार है। श्री सरदारमलजी कांकरिया की प्रतिभा, दूरदर्शिता, धर्मनिष्ठा तथा समाज-सेवा आपके विशिष्ट व्यक्तित्व की परिचायक है। इस शस्य-श्यामला क्षेत्र में वाणिज्य, शिक्षा और धर्म को प्रतिष्ठित करने में आपका महत्वपूर्ण योगदान सर्वथा वर्णनातीत है।

राजस्थान के मरुदेश से लेकर उर्वरा बंग भूमि में आपने वाणिज्य उद्योग स्थापित कर समाज, धर्म और सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांति की शान्तिमय साधना के द्वारा सुयश एवं ख्याति प्राप्त की है, वह आपका प्रबल पुरुषार्थ है। जाति, समाज, धर्म और शिक्षा के जिस क्षेत्र में आपका अवदान आवश्यक हुआ तत्क्षण उस क्षेत्र में पहुंचकर सेवा के असिधारा-व्रत पालन से सिद्धि और सुयश के आप कृति कहलाये। जैन धर्म, शिक्षा और नैतिकता के प्रचार-प्रसार के लिए वृहत योजनाओं को मूर्त्त रूप देने में आप सतत अग्रसर रहे। महानगर कलकत्ता में शिक्षा, धर्म और सेवा का महान् उद्देश्य लेकर श्री जैन विद्यालय तथा समृद्धि पूर्ण ग्रन्थागार स्थापना में आपका अनुपम सहयोग प्रशंसनीय है।

जैन विद्यालय में कला, वाणिज्य और विज्ञान के सफल शिक्षण के सम्वर्द्धन में आपकी दूरदर्शिता, श्रम और सहयोग स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आपने धर्म, शिक्षा और सेवा की जो अमृतोपम त्रिवेणी प्रवाहित की है, वह आपके अथक श्रम सीकर एवं मन-वचन-कर्म का समाज को महत्वपूर्ण अमियदान है। सामाजिक, धार्मिक तथा परोपकार के क्षेत्र में जो आपका अमूल्य योगदान है, वह आपके अनमोल जीवन की श्री और शक्ति है।

आपने केवल लक्ष्मी और सरस्वती से समृद्ध महानगर में ही सार्वजनिक कल्याण भावना को मूर्त्त रूप नहीं दिया अपितु विद्या सागर सेतु के सम्पर्क से उपेक्षित हवड़ा अंचल को भी शिक्षा का वरदान देकर भावी संतान के भविष्य को समुज्जवल बनाने का सफल प्रयास किया है। क्या यह एक दूरदर्शी मानव की अमर कीर्ति नहीं कही जायेगी? समय और समाज आभारी रहेगा। आपकी साधना और सिद्धि धन्य है। आप सेवा धर्म का निर्वाह करते हुए शतायु, सहस्रायु हों। आपकी श्री, सम्पत्ति और जीवन हेमन्त रात्रि के शुक्ल पक्ष की भांति उत्कर्ष पाता रहे।

परोपकाराय सतांविभूतयः।

– माणकचन्द रामपुरिया, कलकत्ता

भाई सरदारमल का अभिनन्दन आगामी ४ अप्रैल को सभा की ओर से किया जा रहा है, यह मेरे एवं मेरे परिवार के लिए अत्यन्त प्रसन्नता की बात है।

सरदारमल मेरा छोटा भाई है एवं उसमें कार्य करने की अद्भुत क्षमता है। बचपन से ही सामाजिक एवं सेवाकार्यों की तरफ उसकी रुचि रही है। सामाजिक कार्यों में रुचि के कारण ही वह श्री अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स की कार्यसमिति का सदस्य युवा अवस्था में ही चुन लिया गया था।

व्यापार-व्यवसाय के साथ सामाजिक सेवाकार्यों में अर्थ सहयोग के साथ-साथ पूर्ण मनोयोग पूर्वक कार्य करना एवं अपरिमित उत्साह से उसे साफल्य मंडित करना उसका स्वभावगत वैशिष्ट्य है। साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना एवं उसके उन्नयन तथा विकास में तन-मन-धन से निरन्तर

लगे रहना उस जैसे कर्मठ व्यक्ति के लिए ही सम्भव है। निन्दा से कभी विचलित नहीं होना एवं प्रशंसा से कभी अहंकारी न बनना, इस सूत्र को सरदार ने इस तरह आत्मसात किया है कि वह अविचलित भाव से घोषित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अहर्निश जुटा रहता है। हावड़ा में श्री जैन विद्यालय के निर्माण की कहानी सरदारमल की इस अद्भुत कार्यक्षमता की न केवल परिचायक है अपितु जैन एकता के उसके स्वप्न का साकार रूप भी। यह विद्यालय उसके शिक्षाप्रेम की जीती जागती अनूठी तस्वीर भी है। उसकी समन्वय भावना, मिलन-सारिता तथा उदारता ने उसे अनेक सामाजिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक संस्थाओं से जोड़ा है। वह स्वस्थ एवं शतायु होकर इसी तरह निष्काम भाव से सेवारत रहे तथा परिवार समाज एवं राष्ट्र को गौरवान्वित करे, यह मेरी एवं मेरे परिवार की हार्दिक कामना है।

- हरकचन्द कांकरिया, कलकत्ता

श्री सरदारमलजी कांकरिया समाज शक्ति के केन्द्र के पथ प्रदर्शक, कल्पना के साथ कृतित्व से सम्पन्न सभा के चलते-फिरते प्रतिष्ठान हैं। इस सेवाभावी अनमोल रत्न को हमारी सभा के संस्थापक स्वर्गीय श्री फूसराजजी बच्छावत ने परखा। सभा के उद्देश्य सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र की अभिवृद्धि हेतु विगत ३० सालों से आप कार्यरत हैं। आप श्री जैन विद्यालय का कार्य आदरणीय सूरजमलजी बच्छावत, श्री कन्हैयालालजी मालू, श्री रिखवदासजी भंसाली, श्री रिधकरणजी बोथरा और अन्य कर्मठ कार्यकर्त्ताओं और सदस्यों के आदर और विश्वास से दक्षतापूर्वक सम्भाल रहे हैं। शिक्षा और जैन समाज की एकता के क्षेत्र में सभा के अखिल भारतीय स्तर को ख्याति दिलाने में आपका सफल नेतृत्व परिलक्षित होता है। अखिल भारतीय स्तर के जैन समाज के विशिष्ट व्यक्तियों में आपकी गिनती से सभा अपने को गौरवान्वित समझती है।

हृदय की सरलता और उदारता के समान कोई सद्गुण नहीं। इन्हीं गुणों के आइने में व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप, उसकी गरिमा एवं व्यक्तित्व का आकर्षण प्रतिविम्बित होता है। आपका सहज सरल भाव, मैत्री भाव को दृढ़ बनाता है। मैं समझता हूं कि जिस व्यक्ति में गुण हैं उन गुणों का बखान देश, समाज व व्यक्ति के लिए हितकर है। इससे दूसरों को प्रेरणा मिलती है। मानवीय कर्त्तव्यों के प्रति आप पूर्ण सजग हैं। आप सहृदय एवं उदारमना हैं। मैं श्री सरदारमलजी जैसे व्यक्ति के बारे में अपने शब्दों में अपने अन्तरमन को अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा हूं। शासनदेव से यही प्रार्थना करता हूं कि आपका स्वास्थ्य सुन्दर रहे, आप शतायु हों, दीर्घायु हों और हमलोगों में किंचित मात्र भी वैमनस्य और ईर्ष्या न आये। हम सब एकजुट होकर अपने इस प्रतिभाशाली नेता के नेतृत्व में अपनी सभा को निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर करते रहें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

- जयचन्द लाल मित्री
पूर्व मंत्री, श्री श्वे० स्था० जैन सभा, कलकत्ता

देश की स्वतंत्रता के बाद बाह्यरूप से हमने जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रगति के कदम उठाए हैं। इसके बावजूद भी देश के चिन्तकों ने सेवाभावी समर्पित कार्यकर्त्ताओं के बढ़ते हुए अभाव का अनुभव किया है। यह भी सच है कि देश में नैतिक मूल्यों का विघटन हुआ है। ऐसी स्थिति में समाज में जब कोई सच्चा समर्पणशील कार्यकर्त्ता दीख पड़ता है तो आशा की एक उज्ज्वल किरण मानस पर छा जाती है।

श्री सरदारमलजी कांकरिया ऐसे ही एक सेवाभावी व्यक्तित्व के धनी हैं, जो आज के इस विषम युग में भी समाजसेवा, शिक्षा-प्रसार जैसे बुनियादी कार्यों में बड़ी लगन और धुन के साथ लगे हुए हैं।

श्री जैन विद्यालय जो कलकत्ता महानगर के शिक्षा क्षेत्र में बहुमूल्य सेवाएँ कर रहा है, उसकी स्थापना और विकास में श्री कांकरिया जी घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं तथा गत वर्ष हवड़ा में विद्यालय की स्थापना इनके नव संकल्प का एक मूर्तिमान प्रमाण है।

श्री कांकरिया जी जिस संस्था से जुड़ते हैं उसकी सुव्यवस्था में, प्रबन्ध पटुता में और प्रगतिशीलता में पूर्णरूप से लगे रहते हैं। शिक्षण संस्थान केवल विद्यार्थियों के भर्ती की ही जगह नहीं है, वह विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का भी स्थान है। इस ओर भी श्री कांकरिया जी बराबर सतर्क रहते हैं। श्री जैन विद्यालय की अनुशासनबद्धता और शानदार परीक्षाफल श्री कांकरिया जी के कर्त्तृत्व का एक ज्वलन्त प्रमाण है।

मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि श्री सरदारमलजी कांकरिया स्वभाव के बहुत ही मृदु हैं और कोई अप्रिय बात भी हो जावे तो उसको भूलकर अपने प्रेम और सौहार्द को हमेशा बनाए रखते हैं। उनके हृदय पर किसी भी अनचाही बात का जरा भी असर नहीं रहता। यह उनका एक संत जैसा मानवीय सद्‌गुण है, जिसने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया है और मैं उनके प्रति एक हार्दिक आत्मीय भाव सदा संजोए रखता हूं।

आपके नेतृत्व में संचालित विचार मंच के माध्यम से समाज की विशिष्ट प्रतिभाओं का सम्मान हो रहा है। सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री इन्द्र दूगड़, विख्यात विधिवेत्ता श्री लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी, समाजसेवी श्री पुष्करलाल जी केडिया एवं श्री कमलकुमारजी जैन आदि विभूतियों का अभिनन्दन कर विचार मंच ने अपना सुनाम किया है।

श्री कांकरिया जी के स्वभाव की ही विशेषता है कि अच्छे-अच्छे समाजसेवी सज्जनों का इन्हें सहयोग प्राप्त होता रहा है। उनमें श्री रिखबदास जी भंसाली, श्री अभयसिंह जी सुराणा, श्री रिद्धकरण जी बोथरा एवं श्री नरसिंहदास जी डागा प्रमुख हैं।

ऐसे शिक्षाप्रेमी, सेवाभावी और नेतृत्व गुण से सम्पन्न व्यक्ति का अभिनन्दन करना भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

- दीपचन्द नाहटा, कलकत्ता

कुछ विभूतियां ऐसी होती हैं जो केवल अपने ही विकास एवं अर्थोपार्जन में लीन रहती हैं, जबकि कुछ अन्य विभूतियां अपने साथ-साथ समाज़ के विकास की ओर ध्यान लगाती रहती हैं। ऐसी ही विभूतियों में से एक हैं श्री सरदारमलजी कांकरिया। श्री कांकरियाजी एक सहृदय समाज सेवी एवं धर्मनिष्ठ व्यक्तित्व वाले हैं। आप परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म. सा. के प्रति पूर्ण निष्ठावान सुश्रावक हैं। आप श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर के कई वर्षों तक मंत्री रह चुके हैं, आप सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक क्षेत्र में सदैव अग्रणी रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों की अनेक संस्थाएं आपके सहयोग एवं मार्गदर्शन से पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित हुई हैं। श्री गणेश जैन छात्रावास उदयपुर, आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान उदयपुर ने आपके मार्गदर्शन में कई वर्षों तक कार्य किया और आज भी कर रहा है। कलकत्ता शहर की कई शैक्षणिक संस्थाओं से आप जुड़े हुए हैं। स्कूल एवं कालेज तक की संस्थाओं से जुड़े होने के कारण शैक्षणिक जगत में आपका एक महत्वपूर्ण स्थान है। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के लिए तो श्री कांकरिया सा. एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं और यदि मैं कहूं कि

श्री कांकरिया सा. श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की रीढ़ की हड्डी हैं तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे संघ के संस्थापक सदस्यों में हैं।

मेरा सर्वप्रथम सन् १९७८ में जब आचार्य प्रवर का जोधपुर चातुर्मास था, उनसे मिलन हुआ। उसके पश्चात् मुझे जो आपका असीम स्नेह, आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, वह मेरे जीवन की अक्षय निधि है। मुझे आपका सान्निध्य सदैव प्राप्त होता रहा है एवं कार्य-क्षेत्र में सदैव आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा भी आपसे निरन्तर मिलती रहती है।

आप दीर्घायु हों और वर्षों तक समाज एवं धर्म की तन, मन और धन से सेवा करते रहें, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

वीरेन्द्र सिंह लोढ़ा,
सहमंत्री- श्री अ. भा. सा. जैन संघ, बीकानेर

समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता, सेवाभावी, विचक्षण व्यक्तित्व के धनी श्री सरदारमलजी कांकरिया को उनकी विशिष्ट सेवाओं व कल्याणकारी कार्यों के लिए अभिनन्दित करने का निश्चय किया गया है, यह अभिनन्दन, सम्मान इनका ही नहीं, वरन् सबका सम्मान है।

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना से आज तक जो गौरवपूर्ण प्रगति हुई है, उसमें आपका काफी योगदान है। आप बहुत ही स्पष्टवक्ता हैं और जिस कार्य को पूर्ण करने की ठान लेते हैं उसे पूरा करते ही हैं। आपने संघ में कई नये-नये उत्साही एवं कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को जोड़ा है।

आपका मेरे ऊपर प्रारम्भ से ही बहुत स्नेह, प्रेम रहा है। आपमें हमेशा बड़े भाई का प्यार व मार्गदर्शन मिला है। अभी संघ अधिवेशन (पिपलिया कलां) के समय मैंने आपसे समाज कल्याण योजना की चर्चा की और आपको सारी रूपरेखा बताई, तो आप बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले कि यह कार्य बहुत ही अच्छा है और इसे जरूर पूरा करना चाहिए। आपने इस योजना को प्रारम्भ करने में काफी सहयोग दिया। प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक उत्थान के कार्यों के लिए आप हमेशा अग्रसर, उत्साहित रहते हैं। आपके ये गुण सभी के लिए अनुकरणीय हैं।

आपका परिवार शुरू से ही काफी प्रतिष्ठित, दानवीर रहा है। आपने अपने परिवार की प्रतिष्ठा को बढ़ाया है, गौरवान्वित किया है। आपके गुणों के अनुरूप ही आपकी धर्मपत्नी आदरणीया भाभीजी श्रीमती फूलकंवर बाई भी सामाजिक, धार्मिक कार्यों में सतत कार्यरत रहती हैं। आपने भी श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन महिला समिति के सभापति के पद को सुशोभित कर समिति विकास में अविस्मरणीय योगदान दिया है। आपका पूरा परिवार संघ, समाज को समर्पित है।

आप व आपका परिवार हमेशा लोकोपकारी, जनकल्याणकारी कार्यों में आगे रहते हुए संघ, समाज का चहुंमुखी विकास करते हुए अपने परिवार की गरिमा को गौरवान्वित करता रहे, यही शुभ कामना है।

- राजमल चोरड़िया,
सहमंत्री- श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

यों तो पूरे कांकरिया परिवार से ही मेरा सम्बन्ध है, पर श्री सरदारमलजी कांकरिया से विशेष। गत चार दशकों से मैंने उन्हें निकटता से देखा है। उनके व्यक्तित्व की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो हर व्यक्ति को आकृष्ट करती हैं। इन विशेषताओं में उनकी लोकप्रियता, निरभिमानता, सदाशयता

और समाज सेवा की भावना के साथ किसी भी कार्य को, लक्ष्य को निष्पन्न करने की अद्‌भुत क्षमता है। वे जितने वचन के पक्के हैं, इतने ही अपनी धुन के भी। साधन और साधक के प्रति ऐसी निष्ठावान उद्‌बुद्धता व जागरूकता कम दिखाई देती है। इसका एक अन्य पहलू भी है, वह है सबके साथ मिल-जुलकर विचार-विमर्श-परामर्श से कार्य करना, उसमें अहं की कृत्रिमता नहीं रहती, वरन् विद्यमान रहती है, सामाजिक मानसिकता व संलग्नता जिसका कारण है, उनकी रचनात्मक संगठन क्षमता।

श्री रामचरित मानस में श्री राम ने मनुष्य की तीन कोटियां बताई हैं :-

संसार महं पुरुष त्रिविध, पाटल रसाल पनस समा।

ये तीन प्रकार के मनुष्य हैं- गुलाब, आम और कटहल समान। एक केवल फूल देता है, एक फल और फूल दोनों एवं एक केवल फल। इसी प्रकार एक मनुष्य केवल बात करता है, एक केवल काम और एक दोनों- इसमें बचन और कर्म दोनों की प्रवीणता रहती है। श्री सरदारमलजी रसाल अर्थात् आम के समान हैं- जो कहेंगे, वहीं करेंगे, जिसे करना होगा वह कहेंगे। जिस व्यक्ति में यह विशिष्टता होती है, उसकी चारित्रिक दृढ़ता भी समादरणीय है। इस दृष्टि से वे कोमल हैं, तो दृढ़ भी। सदाशय हैं तो निर्भीक भी।

शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका अवदान महत्वपूर्ण है। कलकत्ते के दो प्रसिद्ध शिक्षा संस्थानों के सर्वांगीण विकास में उनका अप्रतिम योगदान रहा है। वस्तुत: वे इन विद्यालयों के स्तम्भ हैं। हवड़ा में उनकी प्रेरणा, प्रतिभा और पटुता से ही एक विद्यालय की स्थापना हुई, जिसकी क्षेत्रीय आवश्यकता निर्विवाद है। यह सब उनकी कर्त्तव्य परायणता का प्रमाण है। जब कर्त्तव्य का विवेक के साथ प्रतिफलन होता है, तभी न जीवन की नैतिक अवधारणाएं उच्चतर बनती हैं। वहां न तो अपलाप रहता है, न अवसरवादिता और न अभिमान। कर्त्तव्य के लिए कहा गया है, "कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं प्राणौ: कंठ गतैरपि" अपने कर्त्तव्य को निरन्तर करते रहना यही मनुष्य को सफलता-श्री से मंडित करता है। विवेक मनुष्य को उचित-अनुचित के निर्णय की प्रतिभा देता है। जिस व्यक्ति में यह निर्णय की क्षमता नहीं होती, उसमें सुप्तता का अभाव रहता है। विवेक ही विवेचन का कारण होता है। गउड़वहो (७६) में कहा गया है —

हरइ अणू वि-पर-गुणो गुरु अम्मिपय णिअ गुणे ण संतोसो।
सीलस्स विवेअस्स अ सारयिणं एत्तिअं चे अ।।

अन्य व्यक्ति का अल्प गुण भी विवेकवान को प्रफुल्लित करता है, किन्तु अपने बड़े गुण से भी संतोष नहीं होता- आत्मश्लाघा नहीं होती। शील और विवेक का यह सार तत्व है। अहंकार रहित होकर लोक-सेवा ही सच्ची साधना है। मैने जिस कर्त्तव्य बोध, विवेक दृष्टि और शीलगुण का उल्लेख किया है वही श्री सरदारमलजी की लोकप्रियता का कारण है। पुन: तुलसीदास की बात "सबहिं मानप्रद स्वयं अमानी"।

उनके साथ कार्य करने में उनके सम्पर्क में आने पर मैने यही वैशिष्ट्य उनमें पाया। ऐसे अनेक सन्दर्भ, प्रसंग, संस्मरण हैं, जिनके आधार पर मैं कह सकता हूं कि वे सही अर्थ में समाज सेवी, शिक्षाव्रती और लोकभावित हैं। वे जैन हैं, साधुमार्गी सम्प्रदाय के श्रावक। जैन धर्म की श्रावक-धर्मिता उनमें विद्यमान है। उनमें धर्म की अर्थवत्ता है, संकीर्णता नहीं। जैन-अजैन सबके प्रति उनमें वही अनुराग बोध है- मानवीय अस्मिता के आधार पर। कभी-कभी उन्हें यह देखकर क्षोभ होता है कि आज जैन धर्म की मूल भावना, श्रमणत्व की गुणवत्ता और श्रावकीय आचार-परम्परा कुंठित हो रही है- संकीर्ण मनोवृत्ति, स्वार्थपरक दृष्टि और मिथ्या अहंकार से आज समाज दूषित होकर अपना ऐक्य खो रहा है और इसके लिए वे सोचते रहते हैं कि क्या करणीय है?

एक पौराणिक आख्यान है। एक बार महर्षि दत्तात्रेय हंस रूप से विचर रहे थे। उस समय देवताओं

ने उनसे पूछा- "महर्षि दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोअन्मातुम्"। आपको देखकर हम आपके व्यक्तित्व का अनुमान नहीं कर सकते। हमें कुछ उपदेश दीजिये, दत्तात्रेय ने कहा-

एतत् कार्यममरा संश्रुतं में धृति: शम: सत्य धर्मानुवृत्ति:।

धैर्य धारण, मनोनिग्रह और सत्यवचन एवं धर्म की उदारता ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। विदुर धृतराष्ट्र से पांच प्रकार के बल बताते हैं, बाहुबल, मित्रबल (मंत्रीबल), अर्थबल, अभिजात बल (परम्परा से प्राप्त) और इन सबसे श्रेष्ठ बुद्धि (विवेक) बल।

श्री सरदारमलजी में दत्तात्रेय द्वारा व्याख्यायित मानवीयता और विदुर के पांचों बल किसी न किसी परिमाण में विद्यमान हैं और यही है उनकी लोकसेवा की अकृत्रिम निष्ठा का प्रमाण भी। उनके शतायु होने की कामना करता हुआ उन्हें अपनी शुभाशंसा प्रणति देता हूं। उनका अभिनन्दन व्यक्ति से अधिक उनके व्यक्तित्व की तेजस्विता, मनस्विता और लोकास्मिता का अभिनन्दन है। और वही तो जीवन की सिद्धि भी।

- प्रो. कल्याणमल लोढ़ा,
पूर्व कुलपति- जोधपुर विश्वविद्यालय

श्री सरदारमलजी कांकरिया से मेरा प्रथम परिचय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित धर्मपाल क्षेत्र की पद-यात्रा के प्रसंग में हुआ और फिर निरन्तर प्रगाढ़ होता ही गया। इन्हीं निकटता के क्षणों में उनके व्यक्तित्व को समझने और परखने का मौका भी मिला।

धर्मपाल क्षेत्रों की पद-यात्राओं के दौरान मैंने पाया कि उनके प्रशंसक और आलोचक दोनों ही वर्ग के लोग हैं। वस्तुत: इसका कारण उनका स्पष्टवक्ता होना है। सरदारमलजी इतने स्पष्टवक्ता हैं कि गृहस्थ तो क्या वे साधु-साध्वियों को भी स्पष्ट और दो टूक बात कहने में संकोच नहीं करते हैं। उन्हें जो भी और जैसा भी उचित लगता है, निर्भीक रूप से उसे कह देते हैं। सम्भवत: ऐसी निर्भीकता और साहस विरल लोगों में हीं होता है। यही कारण है कि उनके आलोचक भी कम नहीं रहे हैं, किन्तु जिसने उनके अन्तर में झांक कर उन्हें समझने की कोशिश की वह अन्ततोगत्वा उनका प्रशंसक बन गया। उनके जीवन में लाग-लपेट या दोहरापन नहीं देखा जाता है। आज के युग में ऐसा व्यक्तित्व कठिनाई से ही उपलब्ध होता है।

कांकरियाजी की दूसरी विशेषता यह है कि वे मन में कोई गांठ नहीं बांधते हैं- जो भी कहना होता है, कह डालते हैं। मुखर और स्पष्टवक्ता होने का उनका यह गुण उनमें कोई ग्रन्थी उत्पन्न नहीं होने देता है, चाहे वे निर्ग्रन्थ न हो, किन्तु निर्ग्रन्थता के सच्चे उपासक अवश्य हैं।

एक और विशेपता उनमें मुझे जो देखने को मिली वह यह कि वे यथाशक्य दूसरों की निन्दा और प्रशंसा से परे रहते हैं। मैंने कभी उन्हें दूसरों की अकारण आलोचना करते हुए या व्यर्थ की चाटुकारिता करते हुए न तो कभी देखा और न कभी सुना।

कांकरिया जी सम्पन्न परिवार में पले और जीये, किन्तु न तो मैंने उनमें सम्पन्नता के प्रदर्शन की भावना देखी और न धनार्जन की कोई अतिलालसा ही पाई। जो और जितना मिला है, वह युग की गति के साथ चलता रहे, इसीमें उन्हें संतोप है। सम्पन्नता के साथ जो लोभ की तीव्रता सामान्य रूप से पाई जाती है, वह इनमें नहीं दिखाई देती है। सम्पन्नता के क्षेत्र में उतार-चढ़ाव उनके जीवन में भी आये, वे उसमें भी अधिक विचलित हुए हों- ऐसा मुझे प्रतीत नहीं हुआ।

सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में उनकी सूझ-बूझ और निस्पृहता दोनों ही बेजोड़ हैं। सामाजिक दायित्वों का सम्यक् प्रकार से निर्वाह करना वे बखूबी जानते हैं- जो-जो भी दायित्व उन्हें दिये गये, उन्होंने उन्हें पूरी प्रामाणिकता के साथ निभाया है। चाहे वह फिर साधुमार्गी जैन संघ के मंत्री

का कार्य हो या आगम अहिंसा-समता संस्थान, उदयपुर के संचालन का कार्य हो। कलकत्ता के स्थानकवासी जैन समाज द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं की जो बहुआयामी प्रगति हुई है उसका बहुत कुछ श्रेय आपको ही जाता है।

सामाजिक क्षेत्र में आपने नेतृत्व अवश्य किया, किन्तु नेतृत्व की दौड़ में कभी नहीं पड़े। नेता बनाना चाहा, किन्तु नेता बनने की कोशिश कभी नहीं की। अनेक प्रसंगों का मैं प्रत्यक्षदर्शी भी हूं कि मीटिंग में बात चलती- अब कांकरिया जी का नाम आयेगा- पक्ष और विपक्ष में लोग बंटेंगे, किन्तु देखते हैं कि दूसरे ही क्षण कांकरिया जी स्वयं ही ऐसे व्यक्ति के नाम का प्रस्ताव कर देते हैं कि उनके पक्ष एवं विपक्ष के लोगों के सारे अरमान धरे रह जाते हैं और उनके द्वारा प्रस्तुत नाम पर आमसहमति हो जाती है। सही अर्थ में कांकरिया जी King Maker हैं। वे समाज की नब्ज के पारखी हैं और कभी-कभी उस दुःखती रग पर हाथ रखकर सभी को आश्चर्य चकित भी कर देते हैं। वे Back ground में रहकर कार्य करना बखूबी जानते हैं। वे अक्सर कहते हैं समाज-सेवा मेरा व्यसन है।

वस्तुत: कांकरिया जी का व्यक्तित्व बहुआयामी और बहुरंगी है, फिर भी समन्वित और संतुलित है। कलकत्ता का जैन समाज उनका जो अभिनन्दन कर रहा है, वह कांकरिया जी का नहीं उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का अभिनन्दन है, आशा है समाज की भावी पीढ़ी उनसे प्रेरणा लेगी। वे स्वस्थ और शतायु हों, समाज का मार्ग-दर्शन करते रहें, यही एक मात्र शुभ भावना है।

- **प्रो० सागरमल जैन**, वाराणसी - ५

विनम्र एवं विवेकशील व्यक्तित्व के स्वामी श्री सरदारमलजी कांकरिया के प्रति मेरे मन में जो आत्मीय भाव हैं, उसे शब्दों में अभिव्यक्त करने का प्रयास मेरे लिए जहां एक ओर प्रीतिकर है, वहीं दूसरी ओर उसे अभिव्यक्त कर पाना बड़ा दुष्कर कार्य है। अभिव्यक्ति भले ही सशक्त एवं प्रभावोत्पादक न बन पड़े मगर मन के भाव-बिन्दु को शब्दाकार देने का प्रयास तो किया ही जा सकता है- वह भी तब जब उससे आनन्द की अनुभूति हो रही हो।

श्री कांकरिया जी से मेरा सर्वप्रथम परिचय दिसम्बर, १९७८ में कलकत्ता में हुआ। श्रीमद् जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला के अंतर्गत 'भारतीय दर्शनों में अहिंसा का स्वरूप : जैन दर्शन के विशेष सन्दर्भ में' शीर्षक विषय पर व्याख्यान देने के लिए कलकत्ता जाना हुआ। मेरे सत्कार का दायित्व श्री सरदारमल जी ने वहन किया। उस मुलाकात में मेरे मानस पटल पर उनके व्यक्तित्व की जो विशेषताएं अंकित हुईं उनमें से सर्वाधिक प्रमुख हैं- समाज सेवा के प्रति निष्ठा तथा अतिथि परायणता। उन्होंने इस बात का सतत ध्यान रखा कि मुझे प्रवास में किसी प्रकार की कोई असुविधा न हो।

अभ्यागतों का सहज सत्कार वही कर सकता है जिसके अंतर्मन में आत्मतुल्यता का भाव हो तथा जो उदारचेता एवं विनयशील हो। उनके व्यक्तित्व के सौजन्य-सौरभ के कारण परिचय का अंकुर आत्मीय वट-वृक्ष में विकसित हो गया। तत्पश्चात् मैं जब-जब कलकत्ता गया उनका भवन मेरे लिए जैसे अपना ही घर हो गया। उनके कारण कलकत्ता के अनेक प्रतिष्ठितजन मेरे परिचितों एवं मित्रों की श्रेणी में आ गए। सबके नाम गिनाना सम्भव नहीं है। फिर भी प्रोफेसर कल्याणमल लोढ़ा, श्री कन्हैयालाल सेठिया, श्री गणेश ललवानी, श्री माणक चन्द रामपुरिया, श्री कमलकुमार जैन, श्री सूरजमल बच्छावत, श्री बच्छराज सेठिया, श्री भंवरलाल नाहटा, श्री भंवरलाल बैद, श्री दीपचन्द नाहटा, श्री माणिक चन्द नाहटा, श्री भंवरलाल सिंघी, श्री भूपराज जैन, श्री रिखवदास भंसाली तथा श्री महावीर प्रसाद काला के नामों का उल्लेख करना चाहूंगा।

कलकत्ता के बाहर भी अनेक अवसरों पर मुझे उनको निकट से जानने-पहचानने का सुअवसर

प्राप्त हुआ। विशेष रूप से अगस्त, १९७९ में अजमेर में 'बाल-संस्कार-शिक्षा-साहित्य' विषयक संगोष्ठी में उनकी सहभागिता के कारण उनकी गुण-ग्राह्यता, निर्भीकता, स्पष्टवादिता को पहचानने का सुयोग प्राप्त हुआ। जब उनको यह समाचार मिला कि मैं अक्टूबर, १९९३ में हिन्दी शिक्षण के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ शीर्षक संगोष्ठी में भाग लेने के लिए गोवाहाटी जा रहा हूं तो उन्होंने मुझे लिखा कि मैं गोवाहाटी से लौटते समय कलकत्ता अवश्य ठहरूं। मेरी सहमति मिलते ही उन्होंने १९ अक्टूबर, १९८९ को कलकत्ते में 'विचार मंच' के तत्वावधान में 'भारतीय दर्शनों में मोक्ष का स्वरूप' शीर्षक विषय पर मेरे व्याख्यान के आयोजन का प्रबंध कर दिया। गोवाहाटी से आने वाला हवाई जहाज कलकत्ता दो घंटे देर से आया। उन्होंने हवाई अड्डे पर अपनी कार भिजवाकर इस प्रकार की व्यवस्था करा दी जिससे मैं विचार गोष्ठी के सभागार में सही समय पर पहुंचने में समर्थ हो सका। यह उदाहरण उनकी मेरे प्रति प्रीति का परिचायक है वहीं उनकी प्रत्युत्पन्नमति एवं प्रबंधकौशल का प्रमाण भी है।

उनके व्यक्तित्व के इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया पक्षों को सूत्ररूप में व्यक्त करना हो तो यह कहा जा सकता है कि सांसारिक क्रियाकलापों में भाग लेते हुए भी अपने जीवन को शुद्ध एवं पवित्र रखना तथा समाज की सेवा करना उनके जीवन का इच्छा पक्ष है, आत्महित की भावना के साथ-साथ जैन समाज की संगठन-शक्ति को शिक्षा, चिकित्सा, सेवा आदि जनोपयोगी एवं लोक कल्याणकारी दिशाओं में प्रवृत्तकर कीर्तिमान स्थापित करना उनके जीवन का ज्ञान-पक्ष है तथा समाज के अन्य सदस्यों को उस दिशा में प्रवृत्त कर देना उनके जीवन का क्रिया पक्ष है।

वे गुणग्राही हैं। प्रतिभा के पुजारी हैं। विनयशील हैं। मिलनसार हैं। स्पष्टवादी हैं। निर्भीक हैं। संस्कारी हैं। उदारचेता हैं। सरल हैं। सहृदय हैं। सज्जन हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे समाजोत्थान एवं लोक के अभ्युत्थान के लिए जो भी कार्यक्रम समाज के सम्मेलनों एवं गोष्ठियों में प्रस्तावित करते हैं समाज उसे एकमतेन स्वीकार कर लेता है। वे एक सद्‌गृहस्थ संत हैं। परिवार में सभी सदस्य उनका आदर करते हैं। सरलता, सरसता एवं सहृदयता की त्रिवेणी उनके सेवा भाव का अभिषेक करती है और उनके सौजन्य एवं सौहार्द के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले सभी सामाजिक सदस्य सहज रूप से प्रभावित एवं प्रेरित होकर सेवाव्रत रूपी साधना-पक्ष के सहयात्री बन जाते हैं।

मंगलकामना है कि श्री सरदारमल जी कांकरिया यशस्वी तथा शतायु हों तथा समाजसेवा तथा लोकमंगल के क्षेत्रों को अपने चरित्र तथा अनुभव का संस्पर्श प्रदान करते रहें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपने आत्मीय कर्मयोगी मित्र का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं।

- प्रो० महावीर सरन जैन, आगरा

अपने सार्वजनिक जीवन में, विशेषतः सामाजिक क्षेत्र में जिन कतिपय विशिष्ट महानुभावों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला, जिन्होंने अपनी धार्मिक निष्ठा, अनासक्त कर्मशीलता, जन-जन के प्रति सेवा का प्रशस्त भाव, व्यवहार में मधुरता, मृदुता एवं विश्ववात्सल्यमयी उदात्त भावना द्वारा मुझे प्रभावित किया, उनमें श्री सरदारमल कांकरिया का महत्वपूर्ण स्थान है।

कलकत्ता, मालवा एवं राजस्थान के कई स्थानों में उनका सान्निध्य, साहचर्य पाने का मुझे सुअवसर मिला। मैंने मन-ही-मन अनुभव किया, उनके हृदय में बड़ों के प्रति आदर, समवयस्कों के प्रति स्नेह तथा छोटों के प्रति वात्सल्य का उज्ज्वल निर्मल स्रोत सतत प्रवहणशील है। निःसन्देह उनकी वह एक ऐसी अनुपम विशेषता है, जिससे मानवता विभूषित होती है।

सरदारशहर राजस्थान का प्रसंग है- परम पूज्य बालब्रह्मचारी, समतादर्शन एवं समीक्षण ध्यान

योग के प्रणेता आचार्य श्री नानालालजी म. का वहां चातुर्मास्य था। ब्राह्मण एवं श्रमण आदि विभिन्न परम्पराओं के आचार्यों, योगियों और संतों का अनुग्रह पाने का मेरा सद्भाग्य रहा है। पूज्यपाद आचार्य श्री नानालालजी म. सा. का भी स्नेहानुग्रह मुझे प्राप्त है, यह मेरा सौभाग्य है।

मैंने सरदारशहर में श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के वार्षिक अधिवेशन आदि अनेक समारोहों में श्री कांकरिया जी का सहवर्तित्व पाया। मैंने उनमें समता, एक्य, संगठन तथा समन्वय सम्भृत एक ऐसे व्यक्तित्व का दर्शन किया, जिसमें जरा भी कृत्रिमता परिलक्षित नहीं हुई। लगा, नैसर्गिक शालीनता, सहृदयता और सौमनस्य से वे ओत-प्रोत हैं। प्रतीत होता था, श्री कांकरिया समाज को एक सुदृढ़ शृंखला में संगठित देखना चाहते हैं। उनकी यह चाह केवल चिन्तन तक परिसीमित नहीं रही। उन्होंने श्री साधुमार्गी जैन संघ के अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रहते हुए इसके लिए अनवरत कार्य किया। श्री साधुमार्गी जैन संघ में जो संगठनात्मक अवस्थिति, सृजनात्मक कार्यशीलता दृष्टिगोचर होती है, उसकी सम्प्रतिष्ठा में जिन सतत सेवाशील कर्मयोगियों का योगदान रहा, उनमें श्री कांकरिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

श्री कांकरिया को आज वयसा युवा कहने में कुछ संकोच अवश्य होता है, किन्तु उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के यौवन ने पलायन नहीं किया है। दुर्जेय वार्धक्य को श्री कांकरिया ने अपनी निस्पृह कर्म-चेतना द्वारा पराभूत किया है, वे धन्य हैं। आज भी उनमें वही स्फूर्ति, उत्साह एवं कर्मशीलता है जो एक तरुण हृदय में चाहिए। अप्रमादकारिता, द्रुतकारिता उनकी कर्मशीलता के साथ जुड़ी रही है। मैंने उनके मन, वचन और कार्य में कहीं भी श्लथता नही देखी। मेरे प्रभावापन्न होने का यह प्रमुख हेतु था।

नीतिकार का बड़ा सुन्दर कथन है :-

"आदेयस्य प्रदेयस्य, कर्त्तव्यस्य च कर्मण:।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य, काल: पिवति तद्रसम॥"

आदेय, प्रदेय और करने योग्य कार्य में जो क्षिप्रता, शीघ्रता नहीं करता, काल उसका (करणीय का) रस पी जाता है।

श्री कांकरिया ने काल को कार्य के रस-पान का कभी मौका नहीं दिया। यही कारण है, उन्होंने जो भी कार्य हाथ में लिये, उन्हें बड़ी योग्यता और दक्षता से समय पर सम्पन्न किया, जिनका लाभ आज भी समाज प्राप्त कर रहा है।

श्री कांकरिया पूर्व जन्मार्जित पुण्य संभार के महनीय धनी हैं। एक धन्य-धान्य सम्पन्न, समृद्धशाली तथा प्रतिष्ठापन्न परिवार में उनका जन्म हुआ। प्रभुता मिली। व्यावसायिक तथा सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने स्पृहणीय प्रतिष्ठा अधिगत की। सुन्दर स्वास्थ्य, मोहक व्यक्तित्व, उल्लसित तारुण्य सब कुछ उन्हें प्राप्त रहा, जो किन्हीं भाग्यशालियों को ही मिलता है, किन्तु इन सबने उनको दर्पोद्धत नहीं बनाया। एक बड़ा मार्मिक सुभाषित है—

"यौवनं धनं सम्पत्ति:, प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय, किम् यत्र चतुष्टयम्॥"

यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता एवं अविवेकिता इनमें से कोई एक भी हो तो बड़ा अनर्थ होता है। जहां ये चारों हों, वहां तो फिर कहना ही क्या।

श्री कांकरिया के व्यक्तित्व का यह अप्रतिम वैशिष्ट्य है, उन्होंने अविवेकिता को कभी पास तक नहीं फटकने दिया। इसलिए और तीनों उनके लिए कभी अनर्थकर सिद्ध नहीं हुए। उन्होंने इनका अपने लिए, धर्म एवं समाज के लिए बड़ा सार्थक्य साधा। स्वयं अत्यन्त सुखशान्तिमय जीवन जिया, जी रहे हैं। निश्चय ही वे धन्य हैं, कृतपुण्य हैं।

श्री कांकरिया एक प्रबुद्ध श्रमणोपासक हैं, गुणग्राही हैं, अध्ययनशील हैं, उनमें साहित्यिक अभिरुचि

है, गति भी। वे विद्वानों का, ज्ञानियों का बड़ा आदर करते हैं। वे जिज्ञासु हैं। विज्ञ जनों से सदा सुनने, समझने को समुद्यत रहते हैं। यह मानव का बहुत बड़ा गुण है। जीवनभर उसे जिज्ञासु रहना चाहिए। इसमें उत्तरोत्तर ज्ञानावरणीय का अपगम और ज्ञानोद्भास का उद्‌गम होता जाता है। उसकी विज्ञता बढ़ती जाती है।

एक प्रसंग बना। मालव प्रदेश के जावरा सम्भाग में विशेषत: धर्मपालों के क्षेत्र में आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. अपने कतिपय अंतेवासियों सहित विहार यात्रा पर थे। श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ द्वारा समय-समय पर उस क्षेत्र में समाज के उच्च पदाधिकारियों एवं विशिष्ट कार्यकर्त्ताओं की पदयात्राएं आयोजित की जाती रही हैं। उस समय एक पद-यात्रा आयोजित थी। समाज के बड़े-बड़े सम्भ्रान्त जन पद-यात्रा में सम्मिलित थे। अनेक कार्यक्रमों के साथ-साथ ज्ञान संगोष्ठियां भी चलती थीं। जैन योग पर समीक्षात्मक दृष्टि से भाषण देने हेतु मैं विशेष रूप से आमंत्रित था। मेरे वहां जो व्याख्यान हुए, उनमें श्री कांकरियाजी और उनके पारिवारिक जन विशेष रूप से उपस्थित रहे। प्रश्नोत्तरों में वे सोत्साह सम्मिलित रहे। मैंने लक्षित किया, जिज्ञासु तो वे हैं ही, ग्रहण शक्ति और धारणा के भी वे अद्‌भुत धनी हैं।

मुझे एक प्रसन्नता और हुई, उस पदयात्रा में उनकी धर्मपत्नी, पुत्र तथा पुत्र वधू आदि भी साथ में थे। उनकी शालीनता एवं शिष्टता उनके संस्कारनिष्ठ घराने की गरिमा की द्योतक थीं। मुझे यह देखकर विशेष प्रसन्नता हुई कि बड़े भाई की पुत्रवधू श्रीमती गायत्रीदेवी कांकरिया तद् (अपने धर्मपिता के, श्वसुर श्री के) पद चिन्हानुसारिणी एक मेधाविनी एवं तत्वानुरागिणी सन्नारी हैं। जैन योग, ध्यान, दर्शन, साधना इत्यादि पर उन्होंने एक गोष्ठी में मुझसे अनेक प्रश्न किये। मेरे उत्तर उन्होंने बड़ी रुचि से सुने, संकलित किये। मुझे इस परिवार की तत्व जिज्ञासामयी वृत्ति बहुत अच्छी लगी।

श्री कांकरिया सही माने में एक स्पोर्ट्समेन हैं। वे जगत को खेल का मैदान और जीवन को एक खेल मानते हैं। इसलिए एक स्फूर्तिशील खिलाड़ी की ज्यों वे उल्लासमय जीवन जीते हैं। वैसे बहिर्दृष्ट्या भी खेल में उनको रुचि है। कलकत्ता की घटना है। वहां सुकियस लेन स्थित श्री श्वे. स्थानकवासी जैन सभा हाल में मेरे प्रवचनों का कार्यक्रम था। श्री कांकरिया बड़ी रुचि से सुनते। प्रवचन समाप्ति के कुछ ही समय बाद में उन्हें स्पोर्ट्समैन की पोशाक में वालीबाल के फिल्ड में एक स्फूर्त खिलाड़ी के रूप में देखता। किसी विद्वान ने बड़ा अच्छा कहा है—

''धर्मार्थकामा: सममेव सेव्या:, य एक सेवी स नरो जघन्य: ।।''

जीवन में धर्म, अर्थ और काम इनका सन्तुलित, समन्वित सेवनोपयोग हो, तभी जीवन शांत एवं सुखी बन सकता है। नि:सन्देह श्री कांकरिया एक संतुलित, सम्मार्जित जीवन जीने की कला जानते हैं। वे सभी आवश्यक कार्य करते हैं, किन्तु कभी विभ्रान्त नहीं होते। स्पृहा और आकांक्षा के वे दास नहीं हैं। वे उनकी दासियां हैं। अतएव जीवन समस्या संकुल होते हुए भी उनके लिए उलझन नहीं है।

वे एक सस्मितवदन, उल्लसित एवं हर्षोत्फुल्ल व्यक्तित्व के विलक्षण धनी हैं। हर स्थिति में प्रसन्न रहने की कला उन्हें आत्मसात् है। वह इसलिए है कि गीता का अनासक्त कर्मयोग उनके जीवन में सधा है। जहां फल की आसक्ति छूट जाती है केवल कर्म के साथ कर्त्तव्य निर्वाहकता जुड़ी रहती है, वहां व्यक्ति सफलता पर मदोद्धत नहीं बनता और न विफलता पर कभी निराश या खिन्न ही होता है। वही हर समय प्रसन्न रह सकता है। गीता में इसे कर्मकौशल कहा है। कौशल वहां चातुर्य या दक्षता के अर्थ में नहीं है, वह अनासक्त रूप से स्थिरता पूर्वक कार्य करते रहने के अर्थ में है। ऐसा करना आसान नहीं है, बहुत कठिन है। ऐसा वही कर सकते हैं, जिनमें फल का मोहावेश नहीं होता। मैं नहीं जानता, श्री कांकरिया ने गीता का कहां तक अध्ययन किया है, किन्तु उनके जीवन में गीता का दर्शन प्रतिफलित है, यह स्पष्ट रूप में परिलक्षित है, जो वास्तव

में गर्व करने योग्य विषय है।

लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व पीपलिया कलां (राजस्थान) में उनसे भेंट हुई। उनसे यह सुनकर मुझे असीम हर्ष हुआ, कलकत्ता में जो उनका प्रमुख कार्य क्षेत्र रहा है, वे शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसा वृहत् कार्य करने जा रहे हैं, जिससे समाज के बच्चों को अधिकाधिक शैक्षिक अनुकूलताएं, सुविधाएं, उन्नति-प्रगति के स्पृहणीय अवसर तथा स्वस्थ, पवित्र संस्कारयुक्त वातावरण प्राप्त हो सके। वे अविश्रान्त कर्मठता, लगन, उत्साह और जीवट के ऐसे धनी हैं, जिनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य कभी अपूर्ण नहीं रहे। यह कार्य निश्चय ही अविलम्ब सम्पूर्णता प्राप्त करेगा, ऐसा विश्वास है।

मैं उनके स्वस्थ, निरामय, सतत सेवा-निरत शतायुर्मय जीवन की मंगल-कामना करता हूं शत-शत अभिनन्दन करता हूं।

डॉ. छगनलाल शास्त्री, एम.ए. (त्रय), पी.एच.डी., सरदार शहर

अधिकांश लोग आकृति में मनुष्य होते हैं पर उनकी प्रकृति में मानवीय गुणों का अवतरण नहीं हो पाता। ऐसे मनुष्य बहुत बिरले हैं, जो आकृति में भी मनुष्य की विराटता लिये हुए हों और प्रकृति में भी मानवीय गुणों की दिव्यता समेटे हुए हों। श्री सरदारमलजी कांकरिया ऐसे ही बिरले मनुष्यों में से-हैं।-यथा नाम तथा गुण के अनुसार उनमें नेतृत्व-गुण की क्षमता और संगठन-शक्ति की दृढ़ता सर्वोपरि रूप में है।

श्री कांकरियाजी मूलरूप से नागौर क्षेत्र के गोगोलाव गांव के निवासी हैं पर उनका कर्म क्षेत्र कलकत्ता है। कलकत्ता में प्रमुख व्यवसायी, कर्मठ सामाजिक कार्यकर्त्ता, मौलिक विचारक और सक्रिय समाजसेवी के रूप में उनकी विशिष्ट पहचान और प्रतिष्ठा है।

श्री कांकरियाजी से मेरा परिचय विगत २० वर्षों से है। यों मैं उनका नाम विगत तीस-चालीस वर्षों से सुनता रहा हूं। उनसे मेरी पहली भेंट नागौर में आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के सान्निध्य में हुई, जब वे उनके दर्शनार्थ श्री भंवरलालजी कोठारी के साथ आये थे। उसके बाद जब आचार्य श्री नानेश का चातुर्मास जयपुर में हुआ, तब मैं उनके विशेष सम्पर्क में आया और उनकी प्रेरणा से श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ की विविध प्रवृत्तियों से विशेषकर साहित्यिक और श्रमणोपासक की प्रवृत्तियों से जुड़ा। जब वे श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के मंत्री बने तब कई बार उनसे सामाजिक समस्याओं, धार्मिक और साहित्यिक कार्यक्रमों आदि के सम्बन्ध में व्यापक विचार-विमर्श हुआ और उसके फलस्वरूप उन्होंने संघ और समाज में साहित्य और अनुसंधान के क्षेत्र में कई नई प्रवृत्तियों को गतिशील और सक्रिय बनाया।

श्री कांकरियाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के कई आयाम हैं। वे प्रमुख उद्योगपति और व्यवसायी हैं पर अपने चिन्तन में साहित्य और संस्कृति को सदा महत्व देते रहे हैं। उनके निमंत्रण पर मुझे ५ बार किसी न किसी साहित्यिक और वैचारिक कार्यक्रम में कलकत्ता जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनके निवास पर बालीगंज में हर बार उनका आत्मीयतापूर्ण आतिथ्य-सत्कार मिला। विद्वानों के प्रति उनके मन में बड़ा आदर और स्नेह है। उनके साथ विचार-विमर्श करने में उन्हें गहरे आनन्द की अनुभूति होती है और वे घण्टों समाज और राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं पर उनमुक्त चर्चा करते हैं। अपनी बेलाग टिप्पणी भी देते हैं। उनके विचारों में गतानुगतिकता के प्रति तीव्र आक्रोश और रूढ़ मान्यताओं के प्रति विद्रोह का भाव मुझे बराबर देखने को मिला। वे समाज की व्यवस्था में, धार्मिक परम्परा में कुछ नयापन चाहते हैं। रचनात्मक परिवर्तन चाहते हैं, जो मानवीय संवेदनाओं को जगा सके और अपने सरोकार को वर्ण, जाति, मजहब और सम्प्रदाय से ऊपर उठाकर समग्र मानवता से जोड़ सके।

उनका बराबर यह चिन्तन रहा कि परिवर्तन लाने के लए श्रीमंतों को विद्वानों के साथ और विद्वानों को श्रीमंतों के साथ बैठकर कार्यक्रम बनाना होगा। साधु-संतों को भी वर्तमान युग के बढ़ते हुए ज्ञान-विज्ञान से परिचित होकर उसके सन्दर्भ में धर्म-दर्शन की व्याख्या करनी होगी। बालपीढ़ी को नये संस्कार देने होंगे। जन संचार के जो नये माध्यम विकसित हो रहे हैं, उनका उपयोग व्यक्ति-परिवर्तन और व्यवस्था-परिवर्तन में करना होगा। इसी भावना से अ.भा. जैन विद्वत् परिषद की प्रवृत्तियों से कांकरियाजी जुड़े और उसे स्थायित्व प्रदान करने में उन्होंने तन, मन, धन से सहयोग प्रदान किया। यही नहीं, उनकी प्रेरणा से आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य में १९७९ में उनके अजमेर चातुर्मास में बाल संस्कार शिक्षा साहित्य संगोष्ठी अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित की गई जिसमें वे सक्रिय रहे और अपनी वैचारिक सहभागिता निभाई। उसके बाद जैन विद्यालय कलकत्ता के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर जनवरी १९८४ में कांकरियाजी की प्रेरणा से विद्वत् परिषद के सहयोग से अ.भा. जैन पत्रकारिता संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें हिन्दी के अतिरिक्त गुजराती, अंग्रेजी, बंगला, मराठी आदि भाषाओं के पत्रकार भी सम्मिलित हुए। उत्तर और दक्षिण भारत के जैन पत्रकारों का यह सम्मेलन कई दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण रहा।

कांकरियाजी का बराबर यह लक्ष्य रहा है कि जैन आगम, दर्शन, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में गहरा अनुसंधान हो। इसी दृष्टि से वे उदयपुर स्थित आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान से जुड़े और महामंत्री के रूप में उसकी प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाया। साधुमार्गी जैन संघ के आर्थिक अनुदान से उदयपुर विश्वविद्यालय में जैन विद्या और प्राकृत विभाग की स्थापना में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी से भी वे जुड़े और उसके स्वर्ण जयन्ती वर्ष में उन्होंने विद्वानों की एक अ.भा. संगोष्ठी कलकत्ता में आयोजित की, जिसमें जैन साहित्य, साधना और इतिहास के विविध पक्षों पर बिना किसी पूर्वाग्रह के उच्चस्तरीय विचार-मन्थन हुआ।

कांकरियाजी जैन दर्शन में विशेष आस्था रखते हुए भी अपने चिन्तन में व्यापक दृष्टिकोण लिये हुए हैं। भारत के विभिन्न दर्शनों, साधना-पद्धतियों, साहित्यिक परम्पराओं और ऐतिहासिक आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में व्यापक चिन्तन के वे विश्वासी हैं। साहित्य के अतिरिक्त अन्य कलाओं और ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं में भी उनकी गहरी रुचि है। विद्वानों के कल्याण और हित के चिन्तन में उनका विचार-प्रवाह बराबर चलता रहता है। विभिन्न विचार-धाराओं के साहित्यकारों एवं कलासाधकों को एक मंच पर लाने के लिए उन्होंने कलकत्ता में 'विचार मंच' की स्थापना की है। प्रसिद्ध चित्रकार श्री इन्द्र दुगड़ एवं मूक साहित्यसेवी श्री गणेश ललवाणी के विशेष सम्मान समारोह की आयोजना में सक्रिय भूमिका निभाकर तथा मेरे निवेदन पर राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के तत्वावधान में आयोजित भारतीय हिन्दी परिषद के ३२वें राष्ट्रीय अधिवेशन पर प्रकाशित स्मारिका के लिए अपना व अन्य प्रतिष्ठानों से विशेष विज्ञापन भिजवाकर कांकरियाजी ने माँ भारती के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा व्यक्त की है। साधुमार्गी जैन संघ की ओर से प्रतिवर्ष प्रदत्त 'स्वर्गीय श्री प्रदीप कुमार रामपुरिया' एवं 'स्व. श्री चम्पालाल सांड स्मृति पुरस्कार' तथा क्रान्तदर्शी आचार्य, श्री जवाहरलाल जी म. सा. की जन्मशती पर 'श्री जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला' की योजना को क्रियान्वित करने में कांकरियाजी की विशेष भूमिका रही है। साहित्य के साथ-साथ शिक्षा के माध्यम से नई पीढ़ी में संस्कार के बीज वपित हों और उनमें चारित्रिक दृढ़ता आये, इस दृष्टि से कलकत्ता में जैन विद्यालय के संचालन में कांकरियाजी की विशेष सेवाएं रही हैं। कलकत्ता के शैक्षणिक जगत में जैन विद्यालय की अपनी प्रतिष्ठा और अलग पहचान है। इसी विद्यालय की एक शाखा गत वर्ष हावड़ा में आरम्भ की है। इसके मूल में भी कांकरियाजी का पुरुषार्थ और परिश्रम रहा है।

श्री कांकरियाजी के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू उनका सेवाभावी रूप है। संघ के प्रति उनकी अगाध निष्ठा है और संघ की विविध प्रवृत्तियां अधिकाधिक गतिशील और विकासमान हों, इसके

लिए वे सदैव प्रयत्नरत रहते हैं। महिलाएं स्वावलम्बी बनें, युवापीढ़ी रचनात्मक प्रवृत्तियों से जुड़े, समाज के पिछड़ी जाति के लोग व्यसन-मुक्त होकर धार्मिक नियमों का पालन करें, इस उद्देश्य से श्री कांकरियाजी रतलाम में स्थापित उद्योग मंदिर, समता युवासंघ और धर्मपाल प्रवृत्ति के विविध कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में रस लेते रहे हैं। बिखरी हुई शक्तियों को जोड़ने में और किसी भी प्रवृत्ति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उसके वित्त-आधार को मजबूत करने में कांकरियाजी सचमुच सरदार हैं। जब कभी विचारों में बिखराव या उलझाव आता है, कांकरियाजी अपनी सूझबूझ से समस्या का ऐसा समाधान प्रस्तुत करते हैं कि वह सर्वमान्य हो जाता है।

कांकरियाजी अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी विद्वानों के लिए सहज सरल हैं। कलकत्ता में जब-जब विद्वान उनके निमंत्रण पर आये, उन्हें सदैव आत्मीयतापूर्ण स्नेह और उन्मुक्त रूप से विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है। नगर में ही नहीं, गांव में भी जब कभी विद्वानों से मिलने का अवसर आया है, कांकरियाजी बड़ी सहजता के साथ वहां आकर उनसे मिले हैं। अपने गांव कानोड़ का एक प्रसंग मुझे स्मरण आ रहा है। आचार्यश्री नानेश के १९८९ के चातुर्मास में वहां 'समता साधना संगोष्ठी' का आयोजन किया गया। इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी में कांकरियाजी ने पूरे मनोयोग के साथ भाग लिया। पुरानी तथा नई पीढ़ी के विद्वानों के विचारों को ध्यान से सुना, उन पर अपनी टिप्पणियां भी कीं और बड़ा आनन्द लिया। यही नहीं, कलकत्ता से वे अपने साथ उपयोगी सुन्दर, बैग बनाकर लाये और विद्वानों को अपनी आत्मीयता पूर्ण यह स्नेहिल भेंट दी।

इस प्रकार कांकरियाजी साहित्य, शिक्षा, सेवा और संगठन के प्रति सदा निष्ठावान रहे हैं। उनके स्वभाव में मिलनसारिता, सहिष्णुता, संवेदनशीलता और स्नेह का मधु-संचय है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उपर्युक्त गुणों के सरदार श्री कांकरियाजी का अभिनन्दन समारोह कलकत्ता में आयोजित किया जा रहा है। श्री कांकरियाजी के उपर्युक्त गुण पीढ़ी दर पीढ़ी अवतरित होते रहे, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ मैं कांकरियाजी के उत्तम स्वास्थ्य और सुदीर्घ जीवन की कामना करता हूं।

- डॉ० नरेन्द्र भानावत, जयपुर - ३०२००४

सुदूरग्रामांचल की पदयात्रा में अग्रणी होकर पैदल मीलों चलने की बात हो, चाहे दीक्षार्थी वैरागियों के जुलूस के आयोजन का दायित्व हो अथवा विशाल जनमेदनी की सभा का संचालन हो या फिर जैन विद्या के शोध एवं शिक्षण की स्तरीय व्यवस्था करने की जिम्मेवारी हो, भले ही अ.भा. संघ के नेतृत्व की बात हो या फिर विद्वानों, विद्यार्थियों और मित्रों के आतिथ्य की घड़ी हो, हर अवसर और प्रसंग में सौभाग्य से मुझे आदरणीय अग्रज सरदारमलजी कांकरिया का हमसफर होने का अवसर प्राप्त हुआ है और प्रत्येक प्रसंग में मैंने उन्हें बखूबी अपने दायित्व का निर्वाह मुस्कराते हुए करते पाया है। ऐसे सर्वतोभद्र व्यक्तित्व का समागम किसी एक व्यक्ति में पाना दुर्लभ ही है, जिसके धनी भाई श्री कांकरियाजी हैं।

कांकरियाजी ने अपनी सामर्थ्य से आगे बढ़कर श्री साधुमार्गी जैन संघ की अनेक प्रकार से सेवा की है। इस संघ द्वारा सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में जब जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग की स्थापना के लिए आर्थिक अनुदान देने का प्रस्ताव चल रहा था, उन्हीं दिनों मैं व्यक्तिगत रूप से श्री कांकरियाजी के सम्पर्क में आया। संघ के अन्य पदाधिकारियों के साथ कांकरिया सा. के इतने मधुर और निकट के सम्बन्ध रहे हैं कि उन्होंने जब कभी शैक्षणिक और साहित्यिक योजनाएं प्रस्तावित कीं, संघ ने उन्हें सहर्ष साकार किया है। संघ की वार्षिक एवं कार्यकारिणी की बैठकों में भी मैंने श्री कांकरियाजी के संचालन को देखा है। सभी पक्षों के लोगों को सही समाधान देने में आप पारंगत है।

उत्कृष्ट और उपयोगी बात को चुनने में भाई कांकरियाजी कभी नहीं चूकते। किसी एक सम्प्रदाय के श्रद्धालु श्रावक होते हुए भी आप अन्य सम्प्रदायों के विद्वानों, लेखकों और साहित्य से लाभान्वित होते रहते हैं। आपका नीरक्षीर-विवेक उच्च कोटि का है। श्रेष्ठ विद्वानों के आतिथ्य और सम्मान कार्य में आप सदैव अग्रणी रहते हैं। उनके साहित्य का आप स्वयं स्वाध्याय कर यदा-कदा साहित्य चर्चा में भी अपना योगदान करते हैं। संघ से देश के मूर्धन्य विद्वानों और शिक्षाविदों को जोड़ने में कांकरिया सा. की महती भूमिका है। कलकत्ता के बौद्धिक वर्ग में शायद ही कोई ऐसा शिक्षाविद शेष रहा हो जो कांकरियाजी के आतिथ्य और सम्मान का सहभागी न बना हो। कांकरियाजी जैसे शिक्षा एवं साहित्यिक अभिरुचि के श्रावक अब दुर्लभ हो चले हैं।

उदयपुर में जैन विद्या में प्राकृत विभाग के अध्यक्ष पद के दायित्व को सम्हालने के बाद मेरा सम्पर्क और अधिक घनिष्ठ हुआ कांकरियाजी से। उनकी सादगी और निश्छलता सदैव प्रेरणादायक रही है। जो वे बाह्य से हैं, वही भीतर से भी हैं। उनकी कथनी करनी में कहीं विरोध नहीं है। इसलिए सम्पर्क में आनेवालों के साथ वे अधिक निकट हो जाते हैं। हमारी यह निकटता और अधिक बढ़ी जब श्री कांकरियाजी ने उदयपुर के "आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान" के संचालन का दायित्व सम्हाला। चर्चा के दौरान आपकी हमेशा प्रेरणा रहती है कि जैन विद्या का यह आदर्श शोध संस्थान बने। विभाग और संस्थान एक दूसरे के पूरक बनें। दोनों के प्रयत्न से समाज में कुछ जैन विद्या के विद्वान तैयार होकर सेवा करें। इसके लिए कांकरिया सा. निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

श्री कांकरियाजी का शिक्षाप्रेम साकार हो उठा है- कलकत्ता में संचालित श्री जैन विद्यालय की चहुंमुखी प्रगति के रूप में। धर्म-जाति, लिंग-भेद से ऊपर उठकर समन्वित भारतीय संस्कृति की शिक्षा देने वाला यह विद्यालय श्री कांकरियाजी जैसे उत्कट शिक्षा प्रेमी और समर्पित समाज-सेवी के कुशल संचालन में ही वटवृक्ष बन पाया है। इस विद्यालय के होनहार विद्यार्थी ही श्री कांकरिया के निर्मल यशवाहक हैं। ऐसे शिक्षाप्रेमी और साहित्य रसिक, कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री कांकरियाजी का सम्मान करके वास्तव में आयोजक जन/संस्था ही गौरवान्वित हो रहे हैं। शिक्षा और साहित्य के कीर्तिस्तम्भ श्री सरदारमलजी कांकरिया की अनवरत सेवाओं और बहुमुखी व्यक्तित्व को सादर नमन। उनके सुदीर्घ और स्वस्थ जीवन के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं।

- डॉ० प्रेमसुमन जैन, उदयपुर

सेवा-क्षेत्र में रहते हुए विगत पांच दशकों में अनेक प्रखर व्यक्तित्वों एवं समर्पित सेवाकर्मियों का सान्निध्य मुझे मिला। उनके विशिष्ट गुणों से मैंने बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ आत्मसात् किया। श्री सरदारमलजी कांकरिया से यद्यपि मेरा स्नेह-सम्पर्क कुछ वर्षों पूर्व ही हुआ, किन्तु अल्प अवधि में ही उनके विचार, व्यवहार और असाधारण गुणों ने मेरे मन में गहरी छाप छोड़ी है। उनकी सहृदयता, सरलता, विनम्रता, सात्विक और साधु-प्रकृति ने मुझे सदा मुग्ध किया है।

सरदारमलजी के मन में सेवा के प्रति गहरी आस्था है। वे सेवा को भगवान की पूजा मानते हैं। सेवा कार्यों में उनकी लगन और ललक देखकर उनके प्रति अनायास ही श्रद्धा उत्पन्न होती है। समाज के दीन-हीन, दलित वर्ग के दुःख-कष्टों से उनका हृदय द्रवित होता है और वे विपन्न मनुष्यों की सेवा-सहायता का कोई भी अवसर सामने आने पर अपना सहयोग देने के लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं।

हवड़ा जनपद पश्चिम बंगाल के पिछले हुए क्षेत्रों में गिना जाता है। वहां विकास एवं सेवा-कार्यों के लिए अनेक क्षेत्र हैं। वहां बहुत से सर्वजनोपयोगी कार्य किये जा सकते हैं। सरदारमल जी ने वहां अच्छे शिक्षण-संस्थानों का अभाव देखकर श्री जैन विद्यालय की एक शाखा स्थापित करने

का जो स्वप्न देखा था, उसे अन्ततः साकार कर दिखाया। इस कार्य में उनका दृढ़ संकल्प एवं अथक उद्योग कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। अब उनकी इच्छा एक अस्पताल बनवाने की है- ऐसा अस्पताल जो साधन सम्पन्न लोगों के लिए नहीं, बल्कि साधारण जनता के लिये उपयोगी और वरदायी सिद्ध हो। वे श्री विशुद्धानन्द हास्पिटल एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट के स्वरूप एवं सेवाओं के अन्यतम प्रशंसक हैं और चाहते हैं कि हवड़ा में जो अस्पताल बने, वह उसी का प्रतिरूप हो।

सरदारमल जी की मिलनसारिता और मृदुभाषिता उनकी निरभिमानता और हृदय की निर्मलता का आभास कराती है। सम्पन्न होते हुए भी उनकी निर्लिप्तता और साधु-प्रकृति उनके अन्तःकरण में जाग्रत देवत्व का बोध कराती है। परमार्थ-चिन्तन उनके जीवन का ध्येय बन गया है। उनकी मान्यता है कि ईश्वर ने मनुष्य को इस संसार में सत्कर्म करने, दूसरों का दुःख दूर करने और सबके प्रति प्रेम, सद्भाव और सहानुभूति रखने के लिए उत्पन्न किया है। जीवन केवल उपार्जन, उदरपूर्ति, सुख-भोग और स्वार्थ-सिद्धि में लीन रहने क लिए नहीं है। यही है साधु-प्रकृति, जो पवित्र विचारों, सत्प्रवृत्तियों और सत्कर्मों से बनती है।

सरदारमलजी की अतिशय विनम्रता ने मुझे अनेक अवसरों पर अभिभूत किया है। कई बार ऐसे अवसर आये, जब मैने उनसे मिलने के लिये फोन पर सम्पर्क किया और वे स्वयं चलकर मेरे पास आ गये। ऐसी सरलता बिरले लोगों में ही मिलेगी। सामाजिक कार्यों और संस्थाओं में कुशल, निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं का अभाव उनकी चिन्ता का विषय है। वे चाहते हैं, युवा वर्ग उत्साहपूर्वक सेवा-क्षेत्र में आगे आयें, अच्छे कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में रहकर सुयोग्य कार्यकर्त्ता बनने का प्रयास करें। सरदारमलजी निःस्वार्थ भाव से सेवा के कार्यों में अपनी दिनचर्या का अमूल्य समय देने वाले व्यक्ति को अपने मन में बहुत ऊंचा स्थान देते हैं। समाज के अच्छे कार्यकर्त्ताओं का सम्मान-अभिनन्दन करके, उनके प्रति समाज की कृतज्ञता व्यक्त करना उनकी दृष्टि में एक महत् कार्य है। इस दिशा में वे निरन्तर सक्रिय हैं। उनकी यह भी इच्छा है कि कार्यकर्त्ताओं का एक संगठन बने, जो सेवा-कार्यों के विस्तार, संचालन और तत्सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के विषय में मिल-बैठकर विचार करें।

सरदारमलजी के विचार नई पीढ़ी के लिये भी प्रेरक एवं मार्गदर्शक हैं। बच्चों को सच्चरित्र, अनुशासित और कर्त्तव्यपरायण बनाने के लिये किये जाने वाले रचनात्मक प्रयासों में उनकी गहरी रुचि है। वे ऐसे कार्यों को सर्वदा प्रोत्साहन देते हैं। शिक्षण-संस्थाओं से जुड़कर उन्होंने शिक्षा-प्रणाली को उच्चस्तरीय बनाने तथा शिक्षण संस्थाओं को आदर्श बनाने की चेष्टा जारी रखी है। उनसे सम्बद्ध संस्थाएं प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रही हैं।

सरदारमलजी हमारे समाज के गौरव हैं। समाज को उनसे बड़ी आशाएं और अपेक्षाएं हैं। उनका कर्तृत्व कभी भुलाया नहीं जा सकता। मैं उनके दीर्घायु होने की कामना करता हूं और प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वे पूर्ण स्वस्थ रहकर दीर्घकाल तक अपने महत् कार्यों से समाज को उपकृत करते रहें। उनका अभिनन्दन एक सच्चे कर्मयोगी का अभिनन्दन है, जिसमें एक कर्मठ कार्यकर्त्ता, एक निष्काम सेवाभावी और अनन्य शिक्षाप्रेमी तथा एक कुशल संगठनकर्त्ता के गुण सोने में सुगन्ध की भांति समाहित हैं। उनके प्रति मेरी शतशः मंगलकामनाएं।

- पुष्करलाल केडिया, कलकत्ता

जब युरोप की धरती पर स्टालिन-ओ-हिटलर के खूंखार इरादे जवान हो रहे थे, जब अहिंसा के मसीहा महातमागांधी षष्ठी पूर्ति कर रहे थे, जब जवाहरलाल नेहरू जीवन के चालीस हेमन्त-ओ-वसन्त देख चुके थे, उसी साल का एक दिन, जब वृहस्पति मेष राशि और चन्द्रमा सिंह राशि से राजस्थान में स्थित नागौर को धरती बसद नाज निहार रहे थे, तब एक इन्सान का जन्मदिन था।

"वो लम्हा लम्हा-ए-मीलाद ए आदम था"
(वो घड़ी एक मनुष्य के जन्म की घड़ी थी)
"अली सरदार जाफरी"

और वह मनुष्य था जिसे दुनिया सरदारमलजी कांकरिया के नाम से जानती है। बचपन की परवरिश रेगिस्तान की उन लुओं ने की जिसकी आंच में तपकर कई सोने कुन्दन हो गये। बहुत पहले से राजस्थान के लोग "धर कूंचा, धर मजलां" की ध्वनि पर रोजी-रोटी की खातिर बंगाल की उर्वरा शस्य-श्यामला भूमि में आते रहे और अपने शारीरिक एवं बौद्धिक परिश्रम से उत्पादन में वृद्धि करते रहे।

"दूर कूचा ओ दर मंजिलां" फारसी भाषा का वाक्य है जिसका अर्थ है "रास्ते में और मंजिल में"। मुगलों के जमाने से ही राजस्थानी पर फारसी का गहरा प्रभाव है। चूरू जिले में "यहां, वहां" को ईजां ऊंजा कहा जाता है जो खालिस फारसी है। फारसी का दर कूचा ओ दर मंजिलां, राजस्थानी में 'धर कूंचा धर मजलां' हो जाता है। यह ध्वनि चलते रहने अर्थात् गतिशीलता की प्रतीक है। सरदार शब्द भी फारसी भाषा का है, कुछ अन्य शब्दों, गुलजारी और हजारी की तरह यह नाम काफी कुछ प्रयोग में है।
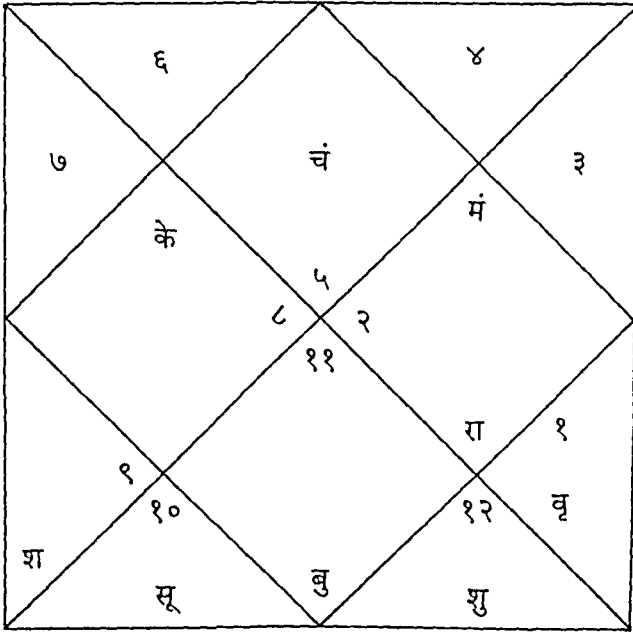
पिता का व्यापार कलकत्ता में होने के कारण सरदारमलजी किशोरावस्था से ही कलकत्ता आते जाते रहे। पैतृक व्यापार तो जूट का था। मगर सरदारमलजी ने कलकत्ता में फिल्म डिस्ट्रिब्यूशन का काम प्रारम्भ किया जिसे आज भी सुचारु रूप से चला रहे हैं।

लोगों की एक धारणा यह है कि टी.वी. और वीडियो के आजाने से सिनेमा के व्यापार को धक्का लगा है। मगर सरदारमलजी का अनुभव कहता है कि इस काम में गिरावट आई है तो इस शक्ल में कि जो वृद्धि होनी चाहिए थी वह नहीं हो पाई है।

जैसा कि पहले जिक्र हो चुका है सरदारमलजी का जन्म १९२९ ई. की २८वीं जनवरी सोमवार

को हुआ, उस दिन माघ कृष्ण तृतीया सम्वत् १९८६ थी। मैं जन्म पत्री के फलादेश की बात नहीं कर रहा, परन्तु उस दिन स्थिति बड़ी दिलचस्प थी जो विरल है। चन्द्रमा से प्रारम्भ करने पर निम्नांकित कुण्डली बनती है। मनुष्य का व्यक्तित्व और कर्तृत्व ही महत्वपूर्ण होता है। आमतौर पर यह सोचा जा सकता है कि किसी के जन्म स्थान और जन्म घड़ी का कोई महत्व नहीं है, परन्तु जन्म स्थान और जन्म घड़ी वास्तव में उस व्यक्ति विशेष को परिभाषित करते हैं। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उस काल और दिशा के बिन्दुओं में अन्तर्निहित रहता है।

सरदारमलजी की शिक्षा केवल कक्षा नौ तक हुई और बकौल बाबूराव पटेल "एक नानमैट्रिकुलेट को डिग्री देना विश्वविद्यालयों की क्षमता के बाहर है"। इस नानमेट्रिकुलेट ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए जितना काम किया है, वह विरल है। हालांकि यह राजस्थान की पुरातन परम्परा है और भागीरथ जी कानोडिया और सीतारामजी सेक्सरिया जैसे व्यक्तित्व आजीवन इस पुनीत परम्परा से जुड़े रहे हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य स्वयं को इतना निखार ले कि साधन स्वयं खिचें चले आये, उसे साधन का मुखापेक्षी न रहना पड़े—

सद नाजिश-ए-मस्ती है अब मेरी बलानोशी,
जब चाहा जहां चाहा मयखाना चला आया।

- युसूफ झुन्झुनवी

शिक्षा के प्रचार-प्रसार का काम अर्थ साध्य है परन्तु समाज को किसी व्यक्ति विशेष की निष्ठा पर आस्था पैदा हो जाये तो अर्थाभाव नहीं रहता है, अर्थ स्वयं उस व्यक्ति के पांव चूमता है। आज सरदारमलजी की स्थिति कुछ ऐसी ही है। वे किसी काम का बीड़ा उठायें तो सही, अर्थ स्वयं चलकर उनकी झोली में आता है वो झोली एक दरवेश की झोली बन जाती है, जिसमें से कितना भी खर्च करो वो खाली नहीं होती।

सामाजिक काम में अर्थ संचय के क्षेत्र में एक मनोवैज्ञानिक अड़चन यह भी रहती है कि मांगने में संकोच होता है। एक सम्पन्न व्यक्ति के लिए भिक्षा पात्र उठा लेना आसान तो नहीं है परन्तु बिना भिक्षा पात्र उठाये कार्य सम्पन्न हो नहीं पाता है। हालांकि हमारे अवतारों ने अढ़ाई हजार साल पहले इस संकोच की दीवार को गिरा कर हमारे लिए एक आदर्श की स्थापना की है। भगवान बुद्ध और महावीर ने राजकुमार होते हुए भिक्षा पात्र उठाये थे और आज भी वह आदर्श हमारा सहारा है। सरदारमलजी निसंकोच भिक्षा पात्र उठा लेते हैं। मगर उस पात्र को भिक्षा तक जाना नहीं पड़ता है स्वयं भिक्षा उस पात्र के कदम चूमती है। सरदारमलजी स्वयं को भिखारी बनाकर सामाजिक संस्था को सम्पन्न करते हैं।

सरदारमलजी ने तीस साल पहले सुकियस लेन स्थित श्री जैन विद्यालय का कार्यभार सम्भाला था उसके सचिव के रूप में और आज भी उसकी देख-रेख में सक्रिय हैं। उनका दृष्टिकोण गणतांत्रिक है। वे चाहते हैं कि पदाधिकारी बदलते रहें ताकि गतिशीलता बनी रहे और विभिन्न व्यक्तियों का लगाव रहे। समस्या को सुलझाने के लिए किसी भी कोने से कोई सुझाव आये उसे वे सहर्ष ग्रहण करते हैं। किसी बात को अपना प्रतिष्ठा बिन्दु नहीं बनाते हैं। अक्सर दिक्कतों का प्रादुर्भाव इस प्रतिष्ठा बिन्दु के बीज से होता है।

पिछले साल उन्होंने हवड़ा में एक नये स्कूल का शुभारम्भ किया है। संकल्प लेने के पश्चात् एक ही वर्ष की अवधि में अर्थ-व्यवस्था करके भवन निर्माण का कार्य सम्पन्न कर दिया और पढ़ाई का काम आरम्भ हो गया, यह बात अपने आप में बड़ी महत्वपूर्ण है और उनके व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य का पुष्ट प्रमाण भी है। इस कार्य की सम्पन्नता में इनके एक सहयोगी साथी का नाम उल्लेखनीय है और वो नाम है श्री अभयसिंह जी सुराणा जिनकी खूबियों के बयान के लिए एक स्वतंत्र लेख

की आवश्यकता है।

इनके विद्यालय की अध्यापिकाओं में एक मुसलमान महिला भी है जो इस विश्वास के साथ आई थी कि विजातीय होने का कारण उसका चुनाव सम्भव नहीं होगा, परन्तु उसे पता नहीं था कि सरदारमलजी के चुनाव का आधार जाति और धर्म नहीं है केवल योग्यता है।

विद्यालय के आरम्भ होते ही उस पर भार न हो अत: वेतन अपेक्षाकृत कम रखा है परन्तु इस संकल्प के साथ कि आने वाले वर्षों में वेतन वृद्धि सुनिश्चित है।

एक वास्तविकता की ओर, वे अक्सर संकेत करते हैं और वह कटु वास्तविकता यह है कि सम्पन्न घरानों के बालक हिन्दी माध्यम से पढ़ना पसन्द नहीं करते। इस तथ्य पर बुद्धिजीवियों को गौर करने की आवश्यकता है।

सामाजिक कार्य में कब नरमी से काम लेना है और कब कड़ाई से, इसका अंदाज उन्हें बखूबी है।

एक व्यक्ति कई गुणों का मालिक हो सकता है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ कलाकारों की यथाशक्ति सहायता, उनका उत्साहवर्द्धन सरदारमलजी की एक और खूबी है। नवोदित कलाकार को सहायता की आवश्यकता होती है। शैशव सुरक्षा का मुखापेक्षी होता है, शबाब स्वयं शक्ति संचय में समर्थ होता है। सरदारमलजी कला के शैशव को सुरक्षा प्रदान करने में तत्पर रहते हैं।

एक तरफ समाज में ऐसे व्यक्ति भी हैं जो कला के प्रेमी होने का दम भरते हैं और कला का सौदा करते हैं, कलाकारों की पेट-लाचारी के सहारे अपनी तोंद और जेब भरते हैं। ये फ़न फरोश प्रदूषण का जबर्दस्त गुनाह करते हैं। दूसरी तरफ सरदारमलजी का व्यक्तित्व है कि कलाकार की सहायता ही उसका लक्ष्य है।

भद्रता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि कोई सीधा चले और सीधा बोले परन्तु इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति, समाज से जो कुछ लेता है, उससे अधिक दे। इस परिभाषा के अनुसार सरदारमलजी एक भद्र व्यक्ति हैं।

- रेवतीलाल शाह, कलकत्ता

लगभग बीस वर्षों पूर्व की बात है, मैं श्री शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर से अवकाश प्राप्त करके श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर की सेवा में संलग्न हुआ और वहां से करीब दस वर्षों के सेवा-काल के पश्चात् आंखों की कमजोरी के कारण निवृत्त हुआ। इस अवधि में पहले मैंने संघ के परीक्षा विभाग को सम्भाला और फिर इसके बाद वहां से प्रकाशित पाक्षिक "श्रमणोपासक" के सम्पादन कार्य में अपनी सेवा समर्पित की।

इस अवधि में मैं संघ के आचार्य श्री नालालजी म. सा. एवं उनके संतों तथा अनुयायी श्रावकों के सम्पर्क में आया। वहां कई समाज सेवी महानुभावों से मेरा अच्छा परिचय हुआ। इन सेवाभावी सज्जनों में श्री जुगराजजी सेठिया, श्री सुन्दरलालजी तातेड़, श्री भंवरलालजी कोठारी, श्री चम्पालालजी डागा, श्री सरदारमलजी कांकरिया आदि महानुभावों की नि:स्वार्थ सेवा भावना एवं अथक श्रमनिष्ठा को देखकर तो मैं चकित ही हो गया। इसी अवधि में श्री भूपराजजी जैन के साथ काम करने का भी मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ, जिनकी माधुर्य पूर्ण आत्मीयता तो अविस्मरणीय ही है।

मुझे अत्यन्त हर्ष है कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कलकत्ता के तत्वावधान में बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, निस्वार्थ सेवाभावी, अथक कर्मनिष्ठ, समाज रत्न श्री सरदारमलजी कांकरिया का अभिनन्दन समारोह आयोजित हो रहा है। स्पष्ट ही यह एक प्रेरणादायक सुअवसर है और साथ ही एक आवश्यक कर्त्तव्य की सम्पूर्ति भी।

श्री सरदारमलजी कांकरिया से मेरा बड़ा सुखद सम्पर्क रहा है। परम पूज्य आचार्य श्री के चातुर्मासों में, संघ की कार्यकारिणी सभा के अधिवेशनों में तथा समाज के अन्य विविध कार्यों के सम्पादन हेतु उनके बीकानेर पधारने पर मैं उनसे बराबर मिलता रहा हूं और सदैव उनके व्यवहार की सौरभ से लाभान्वित हुआ हूं।

श्री सरदारमलजी के स्वभाव में जो कर्त्तव्य-निष्ठा है, वह अन्यत्र कम ही दृष्टिगोचर होती है। आप सदैव सक्रिय और समाज कल्याण की भावना से ओतप्रोत रहते हैं। साथ ही आप में किसी भी विषय की गहराई में उतरने की भी बड़ी लगन और क्षमता है। इसके साथ ही आपके हृदय में उत्साह का भाव भी असाधारण रूप से तरंगित रहता है, जो श्लाध्य है।

मैंने संघ की अनेक सभाओं में देखा है कि श्री कांकरिया महोदय सही अर्थ में सत्याग्रही हैं। सत्याग्रह के अवसर पर आप किसी भी प्रकार के पक्षपात से दूर रहते हैं और व्यक्तिगत आत्मीयता से हटकर अपनी आत्मा की आवाज को ही अडिग रहकर प्रमुखता देते हैं। ऐसा निर्णय किसी सुदृढ़ चारित्र्य से सम्पन्न व्यक्ति का ही हो सकता है।

इसके साथ ही श्री कांकरिया महोदय संस्थान के अन्य सदस्यों के बहुमत का भी बराबर आदर करते हैं और कभी भी अपने आग्रह को हठ का रूप नहीं देते। यही कारण है कि आपको समाज में इतना अधिक आदर प्राप्त है।

श्री सरदारमलजी कांकरिया की सदाशयता तथा सेवा भावना का लाभ मात्र जैन समाज तक ही सीमित नहीं है। इसके साथ-साथ आप लोक कल्याण की भावना से भी ओतप्रोत हैं और जन उत्थान की सभी योजनाओं में सक्रिय रूप से भाग लेकर स्वयं को धन्य समझते हैं।

इस प्रकार के बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, सेवाभावी, कर्मठ कार्यकर्त्ता का अभिनन्दन करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। मैं श्री कांकरियाजी के शतायु होने की कामना करता हूं।

- डॉ० मनोहर शर्मा, बीकानेर

**"फरिश्तों से वेहतर है इन्सान वनना,
मगर इसमें पड़ती है मेहनत जियादा।"**

श्री जैन विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के अवसर पर विद्वत् गोष्ठी का आयोजन किया गया था, उस अवसर पर जयपुर से डॉ. नरेन्द्रजी भानावत के आग्रह/आमंत्रण से उपस्थित रहने का मुझे मौका मिला और तव प्रथम वार श्री सरदारमलजी कांकरिया के सान्निध्य का अप्रतिम लाभ प्राप्त हुआ, जो आज तक किसी-न-किसी तरह अनेक रूपों में प्राप्त होता ही रहता है।

प्रथम मधुरी मुलाकात : आप गीता जी हैं? वम्बई से आई हैं? मैं सरदारमल- आपकी वम्बई की टिकटें आरक्षित हो गई हैं आप निश्चिंत रहें, कलकत्ता प्रवास आनन्द से पूर्ण करें। उनके हृदय की मिठास वाणी में छलक कर मुझे भी छलका गई थी। अपरिचितता का तो कोई आभास ही नहीं प्रकटा। एक संस्कृत सुभाषित याद आ गया था-

"न जार जातस्य ललाटशृंगं कुलंप्रसुतस्य न पाणिपद्मं
यथा यथा मुंचति वाक्यबाणं तथा तथा जातिकुल प्रमाणम्"

प्रथम बार कलकत्ता गई थी, सभी अपरिचित। प्रवास की शुरुआत के प्रथम दिन ही निश्चिंतता जानकर मन तृप्त हो उठा एवं शेष दिन प्रसन्नता में गुजरे।

उन्हीं दिनों होटल पर सुबह उनके घर से सुन्दर, स्वादिष्ट व तरह-तरह के व्यंजनों से बना अल्पाहार आ जाता। दिन की शुरुआत ही बड़ी अच्छी रहती, ऐसी मेहमाननवाजी से वातावरण में सुरभि फैल जाती। सभी प्रतिनिधि आपस में प्रशंसा करते-करते नाश्ते को न्याय देते।

कई बार उनके आवास पर जाने का मौका मिला वहां भी भोजन आदि की उत्तम व्यवस्था। सबसे अच्छी बात यह लगी कि परिवार के सभी लोग आगत के स्वागत के लिए तैयार। यह आतिथ्य सत्कार एवं भारतीय परम्परागत संस्कार की झलक अन्यत्र देखना प्राय: मुश्किल है और वह भी मेट्रोपोलिटन शहर में, जहां सभी अपने में ही मग्न होते हैं, लीन रहते हैं।

एक दिन मुखवास में खट्टी खारेक चखी, बहुत पसंद आई। प्रशंसा की तो तुरन्त सौ० भाभीजी ने एक डिबिया भरकर हाथ में थमा दी। आज तक वह स्वाद खारेक का और भाभीजी के प्यार का मैं भुला नहीं पाई हूं। कितनी सरलता, सहजता। घर से दूर जैसे मैंने घर परिवार ही पा लिया। तुरन्त फरमान छूटा, तुम अकेली हो, होटल में नहीं रहना। आज से घर पर ही आ जाओ। मैंने कहा मैं वहां ठीक हूं और सभी प्रतिनिधियों, विद्वानों का साथ रहने से मेरी ज्ञानवृद्धि हो रही है, सो मुझे होटल में ही रहने दें। तब जाकर मंजूरी मिली, पर साथ में शर्त थी कि दुबारा कलकत्ता आने पर उनके आवास पर ही रहना होगा। पर आज तक उस शर्त को पूरा करने का मौका नहीं मिला, फिर भी लगता है कलकत्ता मेरा घर है। भाई सा. की पारिवारिक भावना समाज के स्तर तक विस्तारित है इसका प्रत्यक्ष दर्शन तो मैंने कर ही लिया था, पर जब चंद दिन बाद मैं बम्बई लौटी, तब स्फटिक-सा उनका पत्र एवं कलकत्ता समारोह की तस्वीरें पाकर उनकी परस्पर आत्मीयता के विस्तार ने मुझे और भी अभिभूत कर दिया।

सवसे बड़ी बात, बम्बई वे स्वयं आये तब पहले से पत्र द्वारा सूचित कर दिया। आते ही फोन से सम्पर्क और वे भाभीजी के साथ मेरे कार्यालय पर पधारे। यह आत्मीयता का भाव मन को छू गया। कहीं असमानता नजर नहीं आई, वर्ना वे कहां और मैं कहां? पर मैंने आज तक देखा है वे जब भी मुझसे अथवा किसी मेरे परिवार जन / परिचितों से मिलते हैं, वही आत्मीयता झलकती है जाने वे बरसों से मुझसे परिचित हों व मेरे सभी अपने उन्हें भी अपने ही लगते हैं। सभी से वे उन्हीं के धरातल पर खड़े होकर मिलते हैं, जैसे कि मेरे वृद्ध पिताजी से उनकी तरह मिले और मेरे बेटे से उसकी तरह। सरदारमलजी का इस तरह मन से मिलना सभी को उनकी ओर आकर्पित करता है।

तब से आज तक समय-समय पर पत्राचार होता है। जब भी बम्बई आते हैं, कभी-कभी फोन से अथवा कभी-कभी प्रत्यक्ष मुलाकात होती ही है वरना आज ऐसी भागदौड़ी, आपाधापी से व्यस्त समय में कौन, किसके लिये समय निकालता है?

एक बार वे बम्बई पधारे। हमारे परिवार में अठाई की तपस्या के पारणे का कार्यक्रम था, मैंने उन्हें फोन पर आमंत्रण दिया। उस दिन गणपति विसर्जन के कारण बम्बई की सड़कें, ट्राफिक जाम की स्थिति में थीं, फिर भी जुहू से माटुंगा तक वे पधारे, एकाध घंटे रुके भी और फिर तीन घंटे की सफर की, यानि ४-५ घंटे बर्बाद करके भी वे आये। ऐसी आत्मीयता, सौजन्य, अपनत्व मैं तो नहीं जता सकती। यानि कि वे द्राक्ष जैसे हैं- ऊपर से मधुर और नरम व अन्दर से भी मधुर व नरम।

एक और बात। पिछले ६ वर्षों से मैं "पर्व-प्रज्ञा" पत्रिका प्रकाशित करती हूं। श्री सरदारमलजी का स्थाई आदेश है "हर साल उनकी ओर से एक पृष्ठ उसमें प्रकाशित किया जाय एवं बिल भेजकर ड्राफ्ट मंगवाया जाय"। हर साल अनुनय पत्र भेजने से मुझे मुक्त करके, उन्होंने अपनी धर्माभिरुचि/साहित्यिक/ज्ञान विनियोग की भावना के साथ उत्तम सहयोगी का दर्शन करवाकर मुझे प्रोत्साहित, उत्साहित किया है। पहले के जमाने में राजा महाराजा हुआ करते थे, जो कलाकारों को प्रोत्साहन देते थे। आज के युग में श्रेष्ठियों का ही धर्म हो गया है। राज्याश्रय न होते हुए भी वे श्रेष्ठियों से प्रेरित हुआ करते हैं। सरदारमलजी के ऐसे कई विविध रंग मैंने इन कुछेक वर्षों में देखे हैं। यहां क्या लिखूं, कितना लिखूं, कहां से आरम्भ, कहां अंत? इसी असमंजस में कुछेक शब्द लिख डाले हैं और बहुत से अध्याहार ही हैं. जो मन के धरातल में पनप रही बातें कलम द्वारा कह नहीं सकती वह बिना कोई स्वार्थ की भूमिका पर, एक भाई की ओर से प्राप्त उपहार मेरा निजी खजाना है और इस न लूटे जाने वाले खजाने से मैं (बहन) सदा के लिए धन्य/आनंदित/समृद्ध/सौभाग्यशाली हूं।

"**विरला: जानन्ति गुणान् विरला: कुर्वन्ति निर्धने स्नेहम्।**
विरला: परकार्यरत: परदु:खेनापि दु:खिता विरला: ॥

मैं व्यक्तिरूप में ऐसे निश्छल प्रेम भरे जीवन से बहुत प्रभावित रही हूं। ऐसा प्रेरणास्रोत व्यक्तित्व, परिवार, समाज, जाति, धर्म, देश से विस्तार करते-करते विश्वव्यापी बने, ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति के साथ वे परम सच्चिदानन्द की तल्लीनता में लीन हो सकें, इन्हीं मंगल कामनाओं के साथ वे... "जीवेम शरद: शतम्" हों। मेरे हार्दिक प्रणाम।

- गीता जैन, बम्बई

प्रसिद्ध उद्योगपति, समाजसेवी श्री सरदारमलजी कांकरिया का सम्मान समारोह कलकत्ता महानगर में आयोजित होने जा रहा है। यह सम्मान किसी व्यक्ति का सम्मान नहीं होकर एक व्यक्तित्व का सम्मान है। श्री कांकरियाजी का व्यक्तित्व बहुमुखी और बहुआयामी रहा है। अपनी प्रबन्ध-पटुता और व्यवसाय-कुशलता से आपने भौतिक समृद्धि भी भरपूर प्राप्त की है तो दूसरी तरफ लक्ष्मी का उपयोग भी स्वधर्मी बन्धुओं के लिये आपने बहुत किया। कलकत्ता के जैन विद्यालय में मंत्री रूप में अपनी सेवाएं, तन, मन, धन से देकर आपने उसे प्रगति के पथ पर बढ़ाया। आपने श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ में मंत्री पद पर रहकर स्वधर्मी बन्धु-बहनों के लिये विभिन्न सेवा-कार्य करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया।

श्री कांकरियाजी के निवास-स्थान पर डॉ. भानावतजी के साथ मुझे दो बार जाने का सुअवसर मिला। एक तो जैन विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती अवसर पर, दूसरा श्री श्वे. स्था. जैन सभा के हीरक जयन्ती के अवसर पर। श्री कांकरियाजी एवं श्रीमती फूलकुमारी जी ने हमें जो स्नेहपूर्ण आतिथ्य-सत्कार दिया, उसकी मधुर स्मृतियां आज भी मन-मस्तिष्क को भाव-विभोर किये रहती हैं। प्रात:काल की चाय से लेकर सांध्यकाल के खाने तक भोजन में जो विविधता मिलती, वह सचमुच मन को प्रफुल्लित करने वाली थी।

श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के अधिवेशन पर कई बार जाने का मौका मिला। इन शुभ प्रसंगों पर श्री कांकरियाजी से मिलना बराबर होता रहता। अधिवेशन के अवसर पर महिला समिति की पदाधिकारी बहनें- माताजी यशोदा देवी, श्रीमती विजयादेवी सुराणा, श्रीमती सूरज देवी चौरड़िया, श्रीमती शान्तादेवी मेहता, श्रीमती प्रेमलता जैन, श्रीमती कमला वैद आदि बहनें भी आतीं। इन बहनों के साथ रहकर मैंने अनुभव किया कि श्री कांकरियाजी के मन में महिला-समाज के विकास व उनके विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों के बारे में विशेष रुचि रहती। वे प्रत्येक बहन से बातचीत

करते, उनके कार्यक्षेत्र की जानकारी लेते और उन कार्यों को और आगे कैसे बढ़ायें, महिलाएं स्वावलम्बी बनें, संस्कारवान बनें, कार्यक्षेत्र में सदैव जागरूक रहें, इन बातों की सदा प्रेरणा देते। महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिये रतलाम की संस्था उद्योग मंदिर को आपके परिवार की ओर से एक अच्छी राशि भेंट भी हुई।

श्रीमती फूलकुमारी जी ने भी महिला समिति के अध्यक्ष पद पर रहकर बहनों को सामाजिक कुरीतियां दूर करने, धर्म को सही रूप में समझने, स्वधर्मी बहनों को आर्थिक सहयोग देने आदि गतिविधियों में गहन रुचि रखते हुए सक्रिय कार्य किया। आप स्वयं अत्यन्त सरल स्वभावी एवं सात्विक-जीवनयापन करने, बाह्याडम्बर में विश्वास नहीं रखने वाली प्रगतिशील विचारों की महिला हैं।

सरलता का गुण लगता है कांकरियाजी के परिवार को विरासत में मिला है। इतने बड़े व्यक्ति होकर भी आप हर व्यक्ति से बड़े स्नेह, सौम्य और प्रसन्न भाव से मिलते हैं। आप जब कभी जयपुर आते हैं, तब भी आपके पधारने की सूचना हमें मिल जाती। आप कभी हमसे बिना मिले जयपुर से नहीं पधारे, यह आपका बड़प्पन है। सामान्य रूप से धनवान व्यक्ति धनवान से मिलने में ही आनन्द की अनुभूति करता है पर कांकरियाजी लक्ष्मी पुत्रों से मिलकर जितने आनन्द की अनुभूति करते हैं उतनी सरस्वती पुत्रों से मिल कर भी करते हैं। डॉ. भानावतजी के प्रति तो उनका इतना स्नेह और आत्मीय भाव है कि उन भावों को जड़ शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना मुश्किल है।

श्री कांकरियाजी सुख समृद्धिमय सुदीर्घ जीवन जीते हुए संघ, समाज और राष्ट्र की निरन्तर सेवा करते रहें, यही परम प्रभु से प्रार्थना है।

– डॉ० शान्ता भानावत, जयपुर

विगत चार दशक से मैं श्री सरदारमलजी कांकरिया के निकट सम्पर्क में रहा हूं। मैंने उनके बहुआयामी जीवन को निकटता से देखा, जाना तथा परखा है। निकष पर कसे हुए स्वर्ण की तरह वे सदैव खरे उतरे हैं। उनके उर्जस्व व्यक्तित्व व कर्तृत्व ने मुझे अनुप्राणित व प्रभावित किया है।

सेवा का मार्ग कंटकाकीर्ण है। उसमें पद-पद पर बाधायें व कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। उस पथ पर सदैव सबको साथ लेकर चलना अपने मृदुल व्यवहार व सौजन्य से सबका प्रिय पात्र बने रहते हुए लक्ष्य प्राप्त कर लेना इनकी अप्रतिम विशेषता है।

प्रारम्भ से ही कांकरिया परिवार सामाजिक धार्मिक सेवा के क्षेत्र में अग्रगण्य रहा है। इनके पूज्य पिताश्री किशनलालजी कांकरिया तथा ज्येष्ठ भ्राता श्री पारसमलजी कांकरिया कलकत्ता के सामाजिक जीवन से जुड़े हुए थे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे। परिवार के इन पुनीत संस्कारों ने ही श्री सरदारमलजी को सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक व शैक्षणिक सेवा के क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित किया और वे कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में उभरे व प्रतिष्ठापित हुए।

मैं कलकत्ता आगमन के साथ ही श्री श्वे. स्थानकवासी जैन सभा, श्री जैन विद्यालय तथा स्थानीय जैन संस्थाओं से जुड़ा रहा हूं। इन सभी मंचों पर मैंने श्री सरदारमलजी को निस्पृह सेवाव्रती, सुलझे हुए विचारों के धनी तथा निर्णायक व्यक्तित्व के रूप में देखा है। जिस किसी भी संस्था से जुड़े, वह फूली फली व पल्लवित हुई।

मेरी आंखों के समक्ष अतीत के वे दृश्य छायाचित्रों की तरह आ रहे हैं, जिसमें श्री कांकरिया ने अपनी संगठनात्मक शक्ति, प्रबन्ध कुशलता तथा वैचारिक दृष्टि से स्थानीय लघु स्थानकवासी जैन समाज को सेवा के क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित किया तथा कलकत्ता महानगर की प्रमुख सेवासंस्था

के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

ऐश्वर्य, यौवन, प्रभुत्व व प्रतिष्ठा व्यक्ति में अहं की भावना भर देते हैं और वह स्व में ही प्रतिष्ठित हो जाता है, पर सरदारमलजी में यह अहं कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। ऐश्वर्यशाली, प्रमुख व्यवसायी तथा उद्योगपति होते हुए भी श्री सरदारमलजी निरभिमानी, संवेदनशील, भ्रातृत्व भावना से ओतप्रोत व्यक्ति हैं। सबको अपनत्व व स्नेह प्रदान कर अपना बना लेते हैं। मैं स्वयं भी उनके इस स्नेह वर्षण से आप्लावित हुआ हूं। मेरे व्यावसायिक विकास में भी उनके सहयोग की प्रमुख भूमिका रही है।

श्री जैन विद्यालय कलकत्ता, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ इनकी सेवाओं के ऋणी हैं। श्री जैन विद्यालय के विकास व निर्माण में उनका प्रमुख हाथ रहा है। श्री साधुमार्गी जैन संघ के वे समर्पित कार्यकर्त्ता रहे हैं। स्थापना काल से ही उसकी प्रवृत्तियों के प्रचार-प्रसार में जीवन का अधिकतम भाग उन्होंने अर्पित किया है।

संक्षिप्त में सरदारमलजी का व्यक्तित्व व कर्तृत्व उत्तुंग शैल शिखर पर स्थित मन्दिर के उस स्वर्ण कलश की तरह है जो अपनी दिव्य आभा व कान्ति से हर पथिक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

आज सरदारमलजी वामन से विराट हैं। सेवा के विविध आयामों में अपने को समर्पित कर वे लोक सेवक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

एक प्रवुद्ध समर्पित व्यक्ति का सम्मान कर समाज स्वयं अपने को गौरवान्वित कर रहा है।

- मदन कुमार मेहता, कलकत्ता

राजस्थान के अमर सेनानी राव अमरसिंह राठौर का गांव नागौर (अब जिला), उसके पास का गांव गोगोलाव जिसकी प्रसिद्धि सिर्फ तीन ओसवाल घरानों के कारण। तीन परिवार-कांकरिया, वोथरा और ललवानी। मैं वचपन से ही यह सुनता आ रहा हूं। इस गांव का रहन-सहन, खान-पान, वीकानेर सदृश्य होने के कारण शादी सम्वन्ध भी वीकानेर ओसवाल परिवारों में प्रारम्भ से ही होते रहे हैं। हालांकि यह गांव जोधपुर रियासत में था। संयोग की वात अलग है, वैसे वीकानेर वाले जोधपुर वेटी व्याहने में संकोच करते थे, न जाने क्यों?

हां, इसी सुप्रसिद्ध गोगोलाव गांव के निवासी हैं श्री सरदारमल कांकरिया। कांकरिया परिवार में जन्मे और अपनी समाज सेवा के कारण उदीयमान "नक्षत्र" हो गये।

कांकरिया परिवार पटसन के व्यापार में कलकत्ते में अग्रणी था। इनकी वीसों दुकानें "वंगलादेश" में थीं। भारत विभाजन के वाद यह परिवार पूरी तरह कलकत्ता में छा गया। यहां अपना उद्योग, व्यवसाय फैलाया और समाज सेवा में अग्रणी होने के कारण समाज के अग्रणी परिवारों में इनकी गिनती होने लगी।

वि. सं. २००२ में जव मैं हाथरस आया तो इन तीनों गोगोलाववासी कांकरिया, वोथरा एवं ललवानी परिवार की दुकानें हाथरस में आढ़त के व्यापार में कार्यरत थीं। कांकरिया परिवार की फर्म का नाम पड़ता था- सूरजमल महावीरचन्द और इसके कर्त्ताधर्त्ता थे- कर्नाटकी रईस सेठ लालचन्दजी सांखला। वे इत्र व सेंट लगाने के इतने शौकीन थे कि जव वे सड़क से गुजरते थे तो महक ही महक फूट पड़ती थी। पता चलता कि श्री सांखलाजी पधार रहे हैं। वे मेरे परम मित्र थे और श्री सरदारमलजी कांकरिया के रिश्ते में वहनोई थे। मेरी ससुराल है मिन्नी परिवार के "काकाजी" नाम से प्रसिद्ध श्री शिखरचन्दजी मिन्नी के यहां जो श्री सरदारमलजी की वहिन श्रीमती शांतिदेवीजी

से व्याहे गये हैं, तो रिश्ता और भी गाढ़ हो गया।

यह तो हुई आपसी रिश्ते की बात किन्तु श्री सरदारमलजी कांकरिया जैसा नाम है अपनी शिक्षा और समाज सेवा के कारण समाज के "सरदार" हैं। जैन समाज का प्रत्येक वर्ग आपको आदर एवं श्रद्धा भाव से देखता है। मैं पिछले कई वर्षों से देख रहा हूं, कलकत्ता की जैन समाज का कोई भी काम हो उसमें श्री सरदारजी अग्रिम पंक्ति में काम करते देखे जाते हैं। राजस्थानी भाषा के प्राण कविवर श्री कन्हैयालालजी सेठिया अक्सर कहा करते हैं, "कलकत्ता की जैन व अन्य सांस्कृतिक संस्था में जहां श्री सरदारमलजी कांकरिया एवं चि. पद्म नाहटा होंगे तो समझ लो कि काम पूरी शान से पार पड़ जावेगा। दोनों में पूरी समरसता है"।

कलकत्ता की सुकियस लेन स्थित श्री जैन विद्यालय श्री कांकरियाजी की सूझ-बूझ, परिश्रम और अपने सहयोगियों को साथ लेकर कार्य करने की क्षमता का परिचायक है। हवड़ा का नूतन जैन विद्यालय इतनी जल्दी पल्लवित हो गया, इसका भी अधिकतर श्रेय श्री कांकरियाजी को है। मैं कई प्रसंगों पर श्री कांकरियाजी से मिला हूं। वही हंसमुख मिलनसारिता और विनम्रता। इन्होंने अब सारा जीवन शिक्षा एवं चिकित्सा क्षेत्र को ही विकसित करने में लगा दिया है। मूक सेवक हैं। संयोग से इनके सहयोगी भी मूक सेवक हैं श्री रिद्धकरणजी बोथरा, श्री रिखबदासजी भंसाली एवं श्री भंवरलालजी कर्नावट आदि। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि चि. तनसुखराज डागा इस समारोह के संयोजक हैं। कभी-कभी वह भी श्री कांकरियाजी की कार्यशैली की आलोचना कर देता था। वह भी अब श्री सरदारमलजी की ठोस कार्य पद्धति से इतना प्रभावित हो गया कि वह श्री सरदारमल कांकरिया अभिनन्दन समिति का संयोजक बना।

सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्व. प्रो. के.डी. वाजपेयी मजाक में कहा करते थे कि "बांठियाजी, मारवाड़ (जोधपुर) वालों से कभी आशीर्वाद मत लेना। वे 'श' को 'ह' बोलते हैं- शतायु को वे हतायु कहते हैं"। किन्तु मैं बीकानेर का हूं, प्रभु से प्रार्थना है श्री सरदारमलजी शतायु हों। शिक्षा एवं चिकित्सा जगत को अपनी सेवा देने में अग्रसर हों- सफलीभूत हों।

- हजारीमल बांठिया, कानपुर

जीवन के ६४ वसंत और वर्षा से भीगे, होली के रंगों से रंगे और दीवाली की ज्योति से ज्योतिर्मय व्यक्तित्व के धनी कांकरियाजी के प्रति प्रथम दर्शन में ही कोई उनका अन्तरंग मित्र बन जाये, यह सहज है। ऊंचा कद, अजानबाहु, हंसमुख चेहरा और निरन्तर व्यापार के साथ समाज एवं धर्म की प्रगति के लिए प्रयत्नशील उन्हें देखा जा सकता है। यद्यपि वे स्थानकवासी सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं पर उनकी विशाल दृष्टि के कारण वे सम्प्रदाय के दायरे में कैद नहीं हैं। जैन धर्म-दर्शन-संस्कृति के विकास के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं। शिक्षा एवं औषधि की सुविधा मध्यम और गरीब वर्ग तक पहुंचे इसके लिए स्कूल, अस्पताल आदि के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। कलकत्ता की शैक्षणिक संस्थाएं व अस्पताल उनकी सेवा के प्रतिबिम्ब हैं। साधु-साध्वी की साधना और विद्वानों की अध्ययन प्रवृत्ति में सदैव सहायक रहते हैं। उनका घर विद्वानों, साधु-संतों के लिए सम्मानपूर्वक खुला ही रहता है। व्यापार को छोड़कर भी वे इन सरस्वती के पुत्रों की सेवा में गौरव का अनुभव करते हैं। लक्ष्मी के वरद वरदानी होते हुए भी स्वयं को सदैव समाज की ईकाई मानकर, भेदभाव को भुलकर सबके साथ समान व्यवहार उनका बड़प्पन है। उनका निरभिमानी स्वभाव अनुकरणीय है।

मुझे बड़ा सुखद अनुभव है कि गतवर्ष उन्होंने मुझ जैसे अल्पज्ञ को बुलाकर 'णमोकार ध्यान' शिविर का आयोजन कराया एवं स्वयं पूरे जिज्ञासु विद्यार्थी की भांति शिविर में बैठे। महावीर जयन्ती का उत्सव सभी आम्नायों को मिलाकर मनाया। वर्षों से पांडुलिपि के रूप में लिखी मेरी पुस्तक

'तन साधो : मन बांधो' के प्रकाशनार्थ तुरन्त आर्थिक मदद की घोषणा की और पुस्तक छप भी गई। इसके प्रकाशन का श्रेय उन्हें ही है। मुझे सादर स्वयं हवाई अड्डे तक विदा कर गये। वे जब ६५वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं तब उन्हें देखकर उन्हें वृद्ध कहना उनके प्रति अन्याय होगा। वे धर्म-समाज-साहित्य की सेवा करते रहें, यही हम सबकी परमेच्छा है। इस मंगल अवसर पर यही प्रार्थना है कि वे शतायु हों। उनका उत्तम स्वास्थ्य बना रहे। उनका मार्गदर्शन हम सबको प्राप्त हो।

- डॉ. शेखर चन्द्र जैन, अहमदाबाद

मुझे श्री सरदारमलजी कांकरिया के साथ रहने का अवसर साधुमार्गी संघ की पद यात्राओं में मिला। मैंने देखा कि आप कर्मठ कार्यकर्त्ता तो हैं ही साथ ही मिलनसार, समाज संगठन कर्त्ता हैं एवं प्रत्येक सेवाकार्य में सहयोग देने को तत्पर रहते हैं। कठिन से कठिन कार्य को अपनी सूझ-बूझ से सरल एवं सुगम बना देना आपके व्यक्तित्व की विशेषता है। अपनी शक्ति का बिना अपव्यय किये अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनवरत पुरुषार्थ करना, दायित्व को सुन्दर ढंग से निभाना आपकी कार्य कुशलता का परिचायक है। आप वीतराग मार्ग पर आगे बढ़ते हुए मानव जीवन को सफल बनायें, इसी शुभ भावना के साथ—

- कन्हैयालाल लोढ़ा, जयपुर

मेरा श्रद्धेय सरदारमल जी सा. कांकरिया से पिछले १० वर्षों से गहरा आत्मीय सम्बन्ध रहा है। श्री कांकरिया सा. ने मेरा हमेशा मार्गदर्शन किया है। उनका हर वाक्य, हर पत्र मुझे जीवन निर्माण एवं जीवन विकास की प्रेरणा देता रहता है। युवा होने के कारण कभी-कभी मुझे आक्रोश या रोष भी आ जाता था, परन्तु आपने मुझे हमेशा शांतचित्त से सुना, मेरा सम्यक् समाधान किया। आज मैं समझ रहा हूं कि उस सबको करने के पीछे आपकी भावना क्या थी? आपका अन्त:करण क्या चाहता था? आपके मानस में हमेशा यह तड़फ रही कि सुभाष का जीवन विकासमान होकर समाज एवं देश के लिए गौरव का विषय बने।

संस्थान के माध्यम से मैंने देखा कि आपमें जो साहित्यिक रुचि है वह शायद ही किसी उद्योगपति या व्यवसायी में रहती होगी। ऐसे निष्काम कर्मयोगी, साहित्य प्रेमी, दानवीर, कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री कांकरिया सा. के अभिनन्दन के अवसर पर मैं तो उनके चरणों में नमन ही कर सकता हूं।

- डॉ. सुभाष कोठारी, उदयपुर

आदरणीय सरदारमलजी कांकरिया सा. से मेरा परिचय वर्ष १९८६ में तब हुआ जब मैं आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर में आगम अनुवाद कार्य करने लगा। आप संस्थान के प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि तक महामंत्री पद भार निष्ठापूर्वक सम्भाले हुए हैं। कुशल व्यवसायी होने के साथ-साथ शिक्षा, चिकित्सा और समाज सेवा से आप जिस आत्मीयता के साथ जुड़े हुए हैं वह सब आपके विराट व्यक्तित्व का ही प्रतिफलन है।

आगम संस्थान तथा श्री गणेश जैन छात्रावास, उदयपुर के प्रति आपकी समर्पित भावना को मैंने प्रत्यक्ष देखा है और उस आधार पर मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूं कि आगम संस्थान तथा श्री गणेश जैन छात्रावास के विकास हेतु जितना कुछ आपने किया है तथा कर रहे हैं उतना शायद ही कोई और व्यक्ति कर सके। विराट व्यक्तित्व के धनी श्रीयुत कांकरिया सा. शतायु हों

तथा उनका स्नेहाशीष हम पर सदैव बना रहे, इसी अभिलाषा के साथ-

- सुरेश सिसोदिया, उदयपुर

व्यक्ति का जीवन पुरुषार्थ करने से महान् बनता है। एकै साधे सब सधे, ऐसे धर्मनिष्ठ क्रान्तिकारी युग पुरुष आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के सिद्धान्तों को गतिशील बनाने वाले वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. सा. के श्रद्धावान सुश्रावक सेवाभावी, मधुरभाषी, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ को सुदृढ़ बनाने वाले वीर पुरुष श्री सरदारमलजी कांकरिया समाज के एक स्तम्भ हैं, जिनकी रचनात्मक कार्यों की दृष्टि स्फटिक-सी स्पष्ट है। संघ की अनेक प्रवृत्तियों में सहभागी बनकर उसे आगे बढ़ाना, यह उनका सदैव ध्येय रहा है।

श्री कांकरियाजी मुनिराजों तथा महासतियांजी की सेवा में सदैव तत्पर रहते हैं। श्री कांकरियाजी ने जैसा कहा वैसा किया, कभी अन्तर भेद नहीं रखा, इसलिए वे सबके हृदय के सरदार बने हुए हैं। सबसे प्रसन्न मुद्रा से मिलना और मोह लेना उनकी यह विशेष कला है।

धर्मपाल प्रवृत्ति एवं श्री प्रेमराज गणपतराज बोहरा धर्मपाल छात्रावास को स्थायित्व प्रदान करने हेतु उनकी सदैव प्रेरणा रही। धर्मपाल छात्रावास अच्छे ढंग से चलना चाहिए, धर्मपाल समाज के नवयुवक शिक्षित बनें, नैतिक संस्कार के साथ उनका धार्मिक अध्ययन भी हो, यही श्री कांकरियाजी का सदैव लक्ष्य रहा है।

जैसे सीता के बिना राम नहीं, राधा के बिना कृष्ण नहीं, श्रीमती फूलकुंवर कांकरिया एवं सरदारमलजी कांकरिया एक दूसरे के पूरक है, सहयोगी हैं। रथ के एक पहिया हो तो रथ चल नहीं सकता, रथ के दो पहिये होंगे तो ही रथ चलेगा। उसी प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। उनका स्वभाव सबके साथ घुलमिल जाने का है जैसे दूध में मिश्री मिल जाती है। श्री कांकरियाजी को जो किसी को कहना है वह मुंह पर ही कह देते हैं। किसी की भी पीठ के पीछे निन्दा बुराई नहीं करते, यह उनका अपना ध्येय है, जो बड़ा गुण है।

उनकी समन्वय भावना को मैंने प्रत्यक्ष कलकत्ता में देखा। वहां चाहे श्वेताम्बर मूर्ति पूजक हों, चाहे तेरापंथी हों, चाहे स्थानकवासी हों, सबके कार्यों में सहभागी बनते हैं इसलिए वे समग्र जैन समाज में प्रतिष्ठित माने जाते हैं। वे श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के गौरव हैं। उन्होंने अपनी सूझबूझ से श्रमणोपासक का संयम साधना विशेषांक अपने संयोजकतत्व में आचार्य श्री की दीक्षा अर्द्धशताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित कर बड़ा पुरुषार्थ किया जो एक ऐतिहासिक धार्मिक ग्रन्थ बन गया।

जिनेश्वर देव से यही प्रार्थना है कि श्री सरदारमलजी कांकरिया स्वस्थ एवं दीर्घायु हों और मानव सेवा के सभी कल्याणकारी कार्यों को सफल बनाने में उन्हें शक्ति व बल प्राप्त हो।

- मानव मुनि, इन्दौर

यह संसार बड़ा विचित्र मंच है। यहां मनुष्य आता है और अपने विविध क्रियाकलापों का सम्पादन करता हुआ अपनी जीवन यात्रा पूरी करता है। किन्तु कुछ ऐसे गुण समन्वित क्रियाकलाप होते हैं जो उनके व्यक्तित्व को समय की शिला पर अमिट बना देते हैं। अदम्य कर्मठता, निष्काम सेवाभाव, अनन्य शिक्षानुराग, दूरदर्शिता आदि ऐसे ही गुण हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व को महानता पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। कवि दिनकर ने ठीक ही लिखा है—

दीपक का निर्वाण बहुत कुछ श्रेय नहीं जीवन का।
है सद्धर्म दीप्त रख उसको हरना तिमिर भुवन का।।

दीपक की सार्थकता तो निरन्तर जल-जल कर संसार के अंधकार को दूर करने में है। मनुष्य जीवन की सार्थकता तो स्वयं झंझावातों को सहकर, अदम्य, कर्मठ बनकर लोगों को मार्गदर्शन और दिशा निर्देशन में है। श्री सरदारमलजी कांकरिया में वही कर्मठता है, जिसकी वजह से श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के जागरूक कार्यकर्त्ता उन्हें अभिनन्दित कर रहे हैं। श्री कांकरियाजी की अदम्य कर्मठता का ही सुपरिणाम है कि दूसरा श्री जैन विद्यालय भी लोगों के सामने हवड़ा अंचल में पल्लवित और पुष्पित हो रहा है। हम उसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि दूसरा श्री जैन विद्यालय उनकी कर्मठता की सहज अभिव्यक्ति है।

कलकत्ते जैसे व्यावसायिक महानगर में प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही बात सोचता है, अपनी ही चिंता करता है, किन्तु इस भौतिकता भरे परिवेश में जो व्यक्ति दूसरों के विषय में कुछ भी सोच ले, चिन्ता कर ले, वह सचमुच महान् है, अनुपम निष्काम कर्मयोगी और सच्चा सेवाभावी है। वासुदेव श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।

हे अर्जुन! जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकार रहित हुआ आचरण करता है, वही शांति को प्राप्त होता है। गीता की इस पावनवाणी के अनुरूप श्री कांकरियाजी का भी जीवन है। वे निष्काम कर्मयोगी और सच्चे सेवाभावी पुरुष हैं जो समाज की सेवा में दूसरों की भलाई में अपने जीवन का क्षण-क्षण व्यतीत करना अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। सर्दी हो या गर्मी, सुबह हो या शाम, वे हर समय समाज सेवा में व्यस्त हैं। उनके पैर थकते नहीं, उनका उत्साह शिथिल नहीं पड़ता। इसका मुख्य कारण उनका निष्काम सेवा-भाव है जो उन्हें प्रेरित करता रहता है।

इस धराधाम पर बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी दृष्टि में स्वार्थ ही मूल मंत्र है, परमार्थ, परसेवा नगण्य एवं उपेक्षित है, किन्तु श्रद्धेय कांकरियाजी ऐसे नहीं हैं। मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने वाले शिष्टता, शीलता, नम्रता, उदारता आदि जितने भी गुण अपेक्षित हैं, वे सभी श्री कांकरियाजी में किसी-न-किसी रूप में वर्तमान हैं, उनमें मणिकांचन की भांति समाहित हैं। जैसा कि कहा भी गया है—

गुणों भूषयते रूपं, गुणों भूषयते कुलम्।
गुणो भूषयते विद्या, गुणो भूषयते धनम्।।

यह कहना अत्युक्ति न होगी कि हम जैन विद्यालय परिवार के सदस्य ऐसे गुणसमन्वित निष्काम कर्मयोगी, अनन्य सेवाभावी श्री कांकरियाजी को प्राप्त कर अपने आपको भाग्यशाली समझते हैं।

जहां तक मैं जानता हूं कि श्री सरदारमलजी कांकरिया शिक्षाविद् या शिक्षाशास्त्री नहीं हैं, किन्तु शिक्षा एवं शिक्षितों के प्रति उनमें जो समर्पण का भाव है, जो अनुराग है, वह अद्वितीय है, अनुपम है। वे एक सच्चे शिक्षानुरागी हैं। उनकी शिक्षानुरागिता श्री जैन विद्यालयों के रूप में विकसित हो

रही है। इन शिक्षण संस्थाओं में छात्रों के बौद्धिक, नैतिक एवं चारित्रिक उन्नयन की सारी व्यवस्थायें सुलभ हैं। वे हर समय किसी भी अभिभावक की कठिनाई को दूर करने का यथासम्भव प्रयास करते रहते हैं। वे पदाधिकारी हैं, किन्तु पदाधिकार में आसक्ति नहीं। यही कारण है कि उनकी अनोखी कार्यशैली को देखकर लोग उनसे संतुष्ट रहते हैं। वे जहां एक ओर छात्रों की शिक्षण सुविधा पर ध्यान देते हैं, वहीं दूसरी ओर मेरे शिक्षक बन्धु भी इस क्षेत्र में उनकी सदाशयता, उदारता से वंचित नहीं रहे, नहीं रहते हैं। डॉ. देवनाथ चतुर्वेदी, डॉ. शोभनाथ तिवारी तथा लेखक स्वयं उनकी उदारता एवं सद्भावना के कारण ही पी-एच.डी. करने में सफल हो सके। उन्हें अपने श्रम का प्रतिफल भी मिला और मिल रहा है। जब मैं अपना शोध ग्रंथ लेकर उनके पास गया था तब उन्होंने कहा था आपकी सफलता ही, मेरी सफलता है और श्री जैन विद्यालय की सफलता है। उनका आशीर्वचन ही मेरे जीवन-पथ का पाथेय बना। शिक्षा के प्रति उनकी अनुरागिता के विषय में मैं जो कुछ कहूं, वह थोड़ा ही है।

श्री कांकरियाजी का बहुआयामी विराट व्यक्तित्व उस महासागर की भांति है, जिसमें सत्संभाषण, विनम्रता, सच्चरित्रता, सुशीलता, मृदुलता आदि अनेक बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, जो किसी को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। उनका आचरण जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर अनुकरणीय है। कहा भी गया है—

वृत्तिं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्तत: क्षीण: वृततस्तु हतोहत: ।।

मनुष्य को चाहिए कि वह यत्नपूर्वक अपने आचरण की रक्षा करे। धन तो आता-जाता रहता है। धनहीन, हीन नहीं है, आचरण-व्यवहार हीन मृतवत् है। ऐसे सच्चरित्र, व्यवहार कुशल श्री कांकरियाजी के लिए दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की मैं परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं और कामना करता हूं कि वे अपने महान् व्यक्तित्व से हम लोगों की कठिनाइयों को दूर करते हुए हमलोगों का मार्ग प्रशस्त करते रहें।

- डॉ० आर.पी. उपाध्याय, श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता

आज चौंतीस वर्ष हो रहे हैं श्री जैन विद्यालय में सेवारत रहते हुए, मैंने यह अनुभव किया है कि मेरे जीवन प्रवाह को प्रशस्त व सुखकर दिशा प्रदान करने वालों में एक ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति है, जिसके प्रति मैं सदा श्रद्धानत रहा हूं, रहता हूं। वह व्यक्ति और कोई नहीं, श्री सरदारमलजी कांकरिया है। उनका सौम्य व्यक्तित्व अपने व्यापक प्रभाव क्षेत्र के साथ हमारे सम्मुख सदा विद्यमान रहता है।

श्री जैन विद्यालय में मेरी नियुक्ति सन् १९५९ में हुई। मैं तब से आज तक श्री कांकरियाजी के सम्पर्क में हूं। मुझे उनको अत्यन्त निकट से देखने, समझने के अनेक अवसर मिले हैं। मैं उन्हें उस समय से देखता आ रहा हूं, जिस समय वे बिल्कुल युवा थे। विद्यालय के मंत्री पद पर सर्वप्रथम उन्हीं को आसीन किया गया। उनकी उस समय की कर्मठता, क्रियाशीलता, अद्‌भुत विनम्रता, मृदुल व्यावहारिकता आज भी उनमें यथावत् है।

श्री कांकरियाजी एक सच्चे कर्मयोगी हैं। उन्होंने अपने को लोक कल्याण हेतु पूर्णरूप से समर्पित कर दिया है। उनकी चेतना धर्म प्रधान है, विमल है। वह जीवन के बीच से अपने लिये सिद्धान्तों की खोज करती है, उन्हें ग्रहण करती है, अपने अनुकूल वातावरण की सृष्टि करती हुई व्यक्ति तथा समाज को विकास मार्ग पर ले जाती है।

मनुष्य को मात्र विद्वता या बल से गरिमा नहीं प्राप्त होती। इसके लिए उसमें चारित्रिक दृढ़ता

का होना अत्यन्त आवश्यक है। श्री सरदारमलजी जैन धर्मानुयायी हैं। उन्होंने जैनधर्म के सिद्धान्तों को अपने चरित्र में उतारने का सफल प्रयास किया है। आज भी वे उन्हीं सिद्धान्तों पर चलते हैं। आपने लोगों को अपने कर्त्तव्य कर्मों द्वारा जैन धर्म के सार्वजनीन व लोक मंगल विधायक पक्षों से अवगत कराया है। आपका यह धर्म-प्राण स्वरूप हमलोगों के लिये ज्योति वाहक एवं शोक-ताप-भंजक है। आप सर्वदा मौन भाव से अपने सेवा कार्यों को सम्पन्न करने वाले रहे हैं। मैंने उन्हें माया-पाश में बंधे मानव से अलग पाया है। आपने अपनी ख्याति के विस्तार हेतु कभी प्रचार का सहारा नहीं लिया, लोगों पर दवदवा बनाये रखने के लिए कभी आत्मस्तुति नहीं की। मैं तो मूक भाव से उनके अम्लान-आकर्षण प्रभाव से बद्ध हूं, उनका अनुगामी बने रहने के लिये प्रयासरत हूं।

आपने जैन धर्म व दर्शन के गूढ़ से गूढ़ सिद्धान्तों को हृदयंगम करने का प्रयास किया है। आप जैन धर्म व दर्शन को लोक ग्राह्य बनाने के लिए जैन मुनियों तथा विद्वानों की सभा का आयोजन करते रहते हैं। इनसे जहां एक ओर जैन धर्म के प्रति जन-चेतना जाग्रत होती है वहीं दूसरी ओर विश्व मानवता को आत्म-विकास के लिए सुदृढ़ भूमि प्राप्त होती है। समाज के हर वर्ग के लोगों द्वारा उनके इन सद्प्रयासों को सराहा गया है, सराहा जा रहा है।

श्री जैन विद्यालय अपने स्थापना काल से लेकर आज तक निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है। यह आज कलकत्ते के श्रेष्ठ कहे जाने वाले विद्यालयों में अपना स्थान बना चुका है। यहां अधिकारियों, अध्यापकों, कर्मचारियों तथा छात्रों के बीच एक सहज आत्मीय सम्बन्ध है। यह किसी भी शिक्षा संस्थान के विकास के लिए आवश्यक है। श्री जैन विद्यालय विविध रूपों में छात्रों के व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास के लिए कार्यरत है। इस दिशा में उसे जो सफलता प्राप्त है, वह दूसरों के लिए प्रेरणा दायक है। इस अपूर्व सफलता का अधिकांश श्रेय भी श्री कांकरियाजी को ही प्राप्त है।

मैं नही कहता कि श्री सरदारमलजी शिक्षा-शास्त्र के विद्वान है, व्याख्याता हैं, पर यह अवश्य कहना चाहूंगा कि उन्होंने अपने आदर्शों और सिद्धान्तों द्वारा जैन सभा की ओर से संचालित शिक्षा संस्थानों को उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। आप एक शिक्षाविद् नहीं, शिक्षा प्रेमी हैं। आप मात्र प्रशासक नहीं बल्कि कर्मठ व निष्ठावान व्यवस्थापक हैं। आपके इस शिक्षा प्रेमी व्यक्तित्व में एक सच्चे बन्धु, सच्चे सखा, निर्देशक व व्यवस्थापक का अपूर्व सामंजस्य प्राप्त होता है। आप में सहिष्णुता, क्षमाशीलता, विनम्रता, सत्यप्रियता, वचनवद्धता तथा चारित्रिक दृढ़ता का मणिकांचन संयोग है। आपकी यह साधना आपकी प्रतिभा को प्रखरता प्रदान करती है। इससे आपकी भावनाओं में उदात्तता आई है। इधर आपमें वक्तृत्व कला का अत्यन्त प्रभविष्णु रूप विकसित हुआ है। हम शिक्षकों के बीच आपकी उपस्थिति एक अधिकारी के रूप में नहीं अपितु आत्मीय जन के रूप में रहती है। हमसे हमेशा व्यंग विनोदपूर्ण शैली में बातें करते हुए हमें अपने भीतर सुधार लाने की प्रेरणा देने में श्री कांकरियाजी सदैव सक्रिय रहते हैं। उनकी प्रत्युत्पन्न मति एवं वाक्पटुता को देखकर दंग रह जाना पड़ता है।

श्री सरदारमलजी श्री जैन विद्यालय को अपना परिवार, कुटुम्ब समझते हैं। इसी से वे हमारे प्रत्येक सुख-दुःख में सहभागी होते हैं। विद्यालयों के अध्यापकों तथा कर्मचारियों के अभावग्रस्त जीवन से वे भलीभांति परिचित हैं। देश में बढ़ती हुई महंगाई से भी वे अपरिचित नहीं हैं। इसीसे आपने विद्यालय समुदाय के शिक्षकों तथा कर्मचारियों को समय-समय पर बदलते हुये वेतन मानों को देकर सभी विद्यालयों (विशेषकर हिन्दी भाषा-भाषी) के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

श्री कांकरियाजी देश-हित चिन्तन की दिशा में निरन्तर लगे रहने वाले एक देश भक्त हैं। आप एक कुशल व उदारचेता उद्योगपति हैं। अपने सहकर्मियों पर अगाध विश्वास करना उनका सहज स्वभाव है। अपने पुरुषार्थ, परिश्रम एवं सतत् प्रयास के बल पर ही उन्होंने अल्पावधि में स्वयं

को देश के उद्योगपतियों के बीच खड़ा कर दिया परन्तु उनके विश्वास को भी धक्का लगा, उन्हें भी उन्हीं के विश्वास पात्र ने धोखा दिया, लेकिन 'कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय' पर विश्वास करने वाला क्या कभी ठगा जा सकता है? कदापि नहीं। यही कारण है कि सरदारमलजी ने अपने परिश्रम तथा ईश्वर कृपा से व्यवसाय के क्षेत्र में पुनः अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

आज अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने की होड़ लगी हुई है। सुयोग्य शिक्षकों द्वारा अंग्रेजी माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा अत्यधिक व्यय साध्य हो गई है। अतः मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के अभिभावक उन निजी विद्यालयों में अपने बच्चों को भेजने का साहस नहीं जुटा पाते, जिनमें उल-जलूल व मनमानी फीस ली जाती है। परिणामस्वरूप आज हमारे समाज का एक बहुत बड़ा भाग ऐसी शिक्षा प्राप्ति से वंचित है, जिससे बच्चों के अस्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकता है। इसी अभाव की पूर्ति हेतु आदरणीय कांकरियाजी ने श्री स्थानकवासी जैन सभा की ओर से हावड़ा में श्री जैन विद्यालय की एक शाखा की स्थापना का शुभ संकल्प लिया। उन्होंने भी स्व. श्री मालवीयजी की भांति झोली उठाई और देखते-देखते वहां श्री जैन विद्यालय की एक नवीन शाखा को खड़ा कर दिया। आज वहां भी लगभग १८०० विद्यार्थी योग्य शिक्षक, शिक्षिकाओं की देखरेख में हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इस प्रकार का महान् कार्य वही महापुरुष कर सकता है, जिसमें असीम साहस, त्याग तथा अध्यवसाय के साथ ही समाज का विश्वास प्राप्त कर लेने की क्षमता हो। श्री सरदारमलजी ऐसे ही क्षमतावान पुरुष हैं।

श्री कांकरियाजी के बहुमुखी व्यक्तित्व का एक ऐसा आकर्षक पक्ष है, जो उन्हें प्रौढ़ लोगों के बीच से हटा कर युवा जनों व बालकों के बीच खड़ा कर देता है। विद्यालयों में छात्रों के बौद्धिक विकास के लिए समस्त आधुनिक साधनों को प्रस्तुत करने की सक्रिय भूमिका निभाने वाले लोगों में श्री सरदारमलजी का स्थान अग्रणी है, किन्तु मात्र इतने से ही छात्रों के व्यक्तित्व-विकास की सभी आवश्यकताएं पूरी नहीं हो जाती। इस दिशा में खेलकूद का अपना अलग महत्व है। श्री कांकरियाजी इससे पूरी तरह भिज्ञ हैं, क्योंकि वे स्वयं क्रिकेट, वालीबाल तथा बैडमिन्टन के अच्छे खिलाड़ी एवं एक कुशल तैराक हैं। प्रायः वे हम शिक्षकों व छात्रों के बीच आकर खेलते रहे हैं। छात्रों को उक्त खेलों में दक्षता प्राप्त हो, इसके लिए उपयुक्त व्यवस्था देते हैं। आप विद्यालय के खेल शिक्षक का सक्रिय सहयोग तो लेते ही हैं, आवश्यकतानुसार अलग-अलग खेलों में प्रवीण लोगों की सहायता भी लेते रहते हैं। आपकी प्रेरणा से ही स्व. सुनील दुगड़ वालीबाल प्रतियोगिता का प्रतिवर्ष आयोजन होता रहता है। इससे छात्रों का खेलों के प्रति उत्साहवर्द्धन तो होता ही है, उन्हें शारीरिक सुघड़ता के साथ-साथ ध्यान की एकाग्रता, नियम-पालन की निष्ठा और सफलता की ओर बढ़ते रहने की शक्ति प्राप्त होती है।

श्री कांकरिया सही अर्थों में एक अपूर्व धर्म प्राण पुरुष, सुव्रती समाज सेवक व अनन्य शिक्षा प्रेमी हैं। उनके महनीय व्यक्तित्व के प्रति हम सभी श्रद्धानत हैं। परमात्मा उन्हें दीर्घायु प्रदान करे, अक्षय शक्ति दे, जिससे वे हम सबका, समाज का, सम्पूर्ण मानवता का सतत् कल्याण करते रहें।

- इन्द्रसेन सिंह, कलकत्ता

गुणों की वन्दना का विधान जिस समाज या समुदाय में समाहित होता है वह समुदाय अथवा संस्था अवश्य ही प्रगति पथ पर अग्रसर होती है।

प्रत्येक सामाजिक संस्था का दायित्व है कि सद्कार्य में लगे कर्त्तव्यनिष्ठ, सच्चे स्वावलम्बी व्यक्तियों के गुणों का, उनके कार्यों का आदर करे, सम्मान करे, तभी समाज में कार्य के प्रति निष्ठा एवं श्रम के प्रति आस्था जाग्रत होगी। व्यक्ति समाज की ईकाई है, व्यक्ति हित से ही सामाजिक हित

एवं सामाजिक हित व उत्थान में व्यक्ति का उत्थान निहित है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए अपना व्यक्तित्व समाज में समाहित कर उसे विशिष्ट मूल्यवान बनावे।

ऐसा ही एक व्यक्ति है- श्री सरदारमलजी कांकरिया। इनकी अपनी पहचान है, अपना व्यक्तित्व है जो अनेक सामाजिक एवं शैक्षिक संस्थाओं से जुड़कर और अधिक देदीप्यमान बन गया है।

श्री कांकरिया अच्छे उद्योगपति तो हैं ही, साथ ही शिक्षा के प्रति भी उनमें विशेष अनुराग है। शिक्षा का ध्येय मात्र श्रेणियां उत्तीर्ण कर लेना नहीं है बल्कि जीवन व्यवहार की उपादेयता को हृदयंगम करना है। यह खूबी श्री कांकरियाजी में विद्यमान है।

ये गहन सूझ-बूझ के धनी हैं। किसी गम्भीर मसले का सही एवं सटीक हल वे तत्काल निकाल लेते हैं। अपनी वाक्पटुता एवं मुक्त हास्य से वे किसी भी महफिल में रंग जमा देते हैं। श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के तो आप नींव के प्रस्तर हैं। इस संघ के बहुआयामी रचनात्मक सेवा कार्यों में आपका अकथनीय सहयोग रहता है।

आज से लगभग २६ वर्ष पूर्व श्री कांकरियाजी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती फूलकंवर बाई से मेरा प्रथम परिचय मन्दसौर में हुआ। मन्दसौर में श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। मंच पर विराजमान श्री कांकरियाजी महिला समिति की अध्यक्षा को कह रहे थे कि अव आप पर्दे (घूंघट) को छोड़कर आगे आओ। समाज सुधार के कार्य में पीछे रहने से काम नहीं चलेगा।

श्रोताओं की पंक्ति में सामने बैठी तरुणाई के जोश में मैं फुसफुसाने लगी कि महिलाएं तो सदैव आगे रही हैं। हां, उन्हें पीछे रखने में पुरुषों का ही हाथ रहा है। देखती हूं थोड़ी ही देर बाद श्री कांकरियाजी उठकर मुझे कहने लगे, 'बाई थें कांई बोलणा चावो हो, आगे आओ, बोलो'। मैं थोड़ी झिझकी और सोचने लगी, अभी-अभी तो ये महाशय किसी सज्जन को कह रहे थे कि अब कार्यवाही समाप्त करनी है, वोलने के लिए समय नहीं है। फिर मुझे विना मांगे ही कैसे समय दे रहे हैं तथा मेरे मन की बात इनको कैसे ज्ञात हुई? लेकिन यह सब उनकी सजग दृष्टि एवं महिलाओं के प्रति समान सहिष्णुता के भाव ही थे।

मंदसौर की घटना के कुछ दिन वाद मेरा नाम पता पूछते श्री कांकरियाजी एवं बीकानेर निवासी श्री सुन्दरलालजी तांतेड़ दोनों भीलवाड़ा मेरे घर आये। मैं घर पर नहीं थी। मेरे पति एवं बच्चों से ये पहली वार ही मिले। वड़ी सरलता एवं सहजता से वोले, बाई कहां है? जल्दी से भोजन बना दे, हमें वापिस रवाना होना है। मेरे पति एवं बच्चों से पहली बार मिले फिर भी कोई औपचारिकता नहीं थी। मेरे पति मुझे पड़ोस में बुलाने आए। कहने लगे कि कोई तुम्हारे पीहर के निकट सम्बन्धी आए हैं, पर मैं नहीं जानता, जल्दी चलो। खैर, मैं घर आई, मिली और भाव-विभोर हो गई कि प्रथम पदार्पण में ही इतनी आत्मीयता, वात्सल्यपूर्ण व्यवहार जो किसी निकट सम्बन्धी से कम नहीं था। आत्मीयता के ये सम्बन्ध जो अनायास ही वन गये आज तक वैसे ही वने हैं। इन्हें घर में बच्चे कभी मामासा और कभी मौसा कहकर पुकारते हैं।

श्री कांकरियाजी को सहधर्मी वन्धुओं से मिलने उनके घर जाकर उनसे वातचीत करने का वड़ा शौक है। चाहे सामने वाला परिवार साधन सम्पन्न हो या नहीं हो परन्तु इनके हृदय में कोई अन्तर नहीं होता। इनका व्यवहार आत्मीयता से ओतप्रोत होता है।

मुझे पदयात्राओं में भी इनके निकट रहने का सौभाग्य मिला। कंटकाकीर्ण उवड़-खावड़ पगडंडियों पर भी यह दम्पत्ति हंसते-हंसाते यात्रा को रसमय वना देते थे। इनकी गाड़ी साथ होती थी, लेकिन फिर भी क्या मजाल कि ये कभी उसमें वैठ जांये। चाहे पांवों में कांटे चुभ गये हों या रक्त निकल रहा है, फफोले हो गये हों, फिर भी अनुशासन व निष्ठा में कोई कमी नहीं।

मानव मूल्यों का आज बड़ा ह्रास हो गया है। लोग कहते कुछ हैं, पर करते कुछ और हैं यानि नापते सौ गज और फाड़ते एक गज, परन्तु ये इसके अपवाद हैं। इनकी करनी कथनी से आगे है, जिसका मुझे प्रत्यक्षतः अनेक बार अनुभव हुआ है। मुझे मेरी पुत्री की शादी कलकत्ता करनी थी। हम कुछ घबड़ा रहे थे। हमने इनको लिखा कि आप हमें शादी हेतु मकान की व्यवस्था करवा देंगे क्या? इनका उत्तर आया आप शादी करने कब आ रहे हैं? आप निश्चिंत होकर आ जाइये, सारी व्यवस्था हो जायेगी। और वास्तव में शादी की सभी व्यवस्था इतनी सुन्दर और इतनी किफायत से की कि हम यह भी भूल गये कि हम मेजमान हैं या मेहमान। वास्तव में श्री कांकरियाजी के ये गुण विरासती हैं। सारा परिवार सरल एवं स्नेही है।

मानव की मृदुभाषिता उसे लोकप्रिय बना देती है। उसे अपने इस परोपकारी जीवन से ही लोकप्रियता मिलती है।

उन्हीं का जीवन धन्य है जो अपने जीवन से अन्य के जीवन का सिंचन करें। अपने प्रकाश से दूसरों के अन्धकार का हरण करें। यही जीवन की उपादेयता एवं सार्थकता है एवं श्री कांकरियाजी का जीवन इस दृष्टि से पूर्ण सार्थक है। मैं इनके स्वस्थ दीर्घायुष्य की हार्दिक कामना करती हूं।

- श्रीमती प्रेमलता जैन, अजमेर

श्री सम्पन्न होते हुए भी विनम्र और निरभिमानी, सफल व्यवसायी होते हुए भी शिक्षा और समाज के उन्नयन में संलग्न, किसी एक समुदाय से पूर्णतः जुड़े हुए होने पर भी साम्प्रदायिकता से मुक्त, अच्छाई जहां से भी मिले उसे वहीं से शुद्ध वायु की तरह निरन्तर ग्रहण करने को उन्मुक्त, सहज हंसमुख और मिलनसार व्यक्तित्व का नाम है श्री सरदारमल जी कांकरिया।

श्री जैन विद्यालय एवं श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा की स्वर्ण जयन्ती के शुभ अवसर पर, जिसका कि वर्षव्यापी विभिन्न कार्यक्रम होता रहा- उन्हें निकट से देखने का मुझे सुअवसर मिला। देखा, वे एक ऐसे कर्मठ उत्साही, लगनशील और दानवीर हैं कि जिस क्षेत्र में कदम रखते हैं, वहां गतिशीलता स्वतः ही तरंगायित हो उठती है। कौन व्यक्ति क्या कार्य कर सकता है, कौन कैसी सेवा दे सकता है, कौन किस पुरस्कारर के योग्य है, किसके सुषुप्त मानस को कैसे जगाया जा सकता है, इस विषय में उनकी दृष्टि अत्यन्त पैनी है। विद्वानों हेतु विशिष्ट सम्मान तो जैसे उनके व्यक्तित्व में घुला-मिला है, क्योंकि वे जानते हैं कुसंस्कार, कुरीतियां, रुढ़िवादिता आदि का उन्मूलन विचारशील विद्वानों द्वारा ही सम्भव है। अतः संस्था के कार्य से आये हुए विद्वानों को भी अपने निवास स्थान पर ठहराकर उनके खान-पान, रहन-सहन, आने-जाने की सुविधाओं का ध्यान रखते हुए उनके अन्तरंग सान्निध्य का लाभ उठाने में वे माहिर हैं। सौभाग्य से आपकी सहधर्मिणी भी इन गुणों में आपसे कहीं आगे हैं। उन्हीं के श्रम, लगन और सूझबूझ के कारण आप उन कार्यों में सफल हो पाते हैं।

आपका सर्वोपरि गुण है शिक्षा से लगाव और समय की नब्ज की पहचान। यही कारण है कि आपने जैन विद्यालय की तन, मन, धन से सेवा करते हुए इस तथ्य को गहराई से समझा कि आज समाज अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा चाहता है और अपनी इस इच्छा पूर्ति के लिए उसे बड़ी कठिनाइयों से जूझना, गुजरना पड़ता है। अतः इस समस्या के हल के लिए आपने विद्यालय में हिन्दी माध्यम की शिक्षा कायम रखते हुए अंग्रेजी माध्यम से भी शिक्षा प्रारम्भ की। आपका विद्यालय टेन प्लस टू की सुन्दर शिक्षा के लिए मशहूर हैं। यद्यपि आप उसमें ७० प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण अधिकांश छात्रों को लेते हैं, फिर भी उनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि उन्हें भी स्थान देना कठिनतम हो जाता है और अब हावड़ा विद्यालय का तो कहना ही क्या? वर्तमान में आवश्यक सभी शैक्षणिक पद्धतियों, अभिनव विद्याओं से भरपूर किसी भी श्रेष्ठ विद्यालय से टक्कर लेने में समर्थ है। आप नारी शिक्षा के भी पूर्ण समर्थक हैं और उसी का परिणाम है कि

आपने हावड़ा में वालिकाओं के लिए भी अंग्रेजी माध्यम का स्कूल खोलकर न केवल नारी के विकास-पथ को प्रशस्त किया है, वल्कि एक बहुत बड़े अभाव को भी समाप्त किया है।

सद्साहित्य में रुचि रखते हुए आप कला मर्मज्ञ भी हैं। विचार मंच के माध्यम से समय-समय पर नारी के कलात्मक व्यक्तित्व को भी वड़े ही सुन्दर ढंग से पुरस्कृत करवाकर संस्था के माध्यम से उन्हें न केवल उत्साहित अपितु समाज के सम्मुख प्रकट होने का भी अवसर देते हैं। इतना ही नहीं समय-समय पर उनके यहां होने वाले विविध कार्यक्रमों में भाग लेने वाले छात्र-छात्राओं, पुरुष-महिलाओं को सुव्यवस्थित ढंग से सम्मानित और पुरस्कृत करते रहते हैं।

हमारा जैन शिक्षालय अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए विख्यात रहा है। कारण मेरी यह सतत अभिलाषा रही कि छात्राओं के मानस की कोमल मिट्टी पर इनके द्वारा यह सद्संस्कार-बीज वपन किया जा सकता है, जिसके अंकुरित होकर पल्लवित पुष्पित होने की अनन्त सम्भावनाएं रहती हैं। इसी विचार को दृष्टिगत रखते हुए समय-समय पर समाज में होने वाले कार्यक्रमों में जैन नाटक एकांकियां, नृत्य-नाटिकाएं, भाषण, कविताओं, कव्वाली, भजन आदि छात्राओं द्वारा प्रस्तुत करवाती रहती हूं। अवश्य ही इसमें पैसा तो उस संस्था का ही लगता है जिसके तत्वावधान में कार्यक्रम होता है, किन्तु क्या उसमें धन से भी अधिक महत्व श्रम और समय का नहीं है। मुझे इस बात की प्राय: शिकायत रही है कि महीनों श्रम कर तैयार किये हुए नाटकों को संस्थाएं भाषणों में लम्वा समय लेकर तव नाटक मंचस्थ करने को कहती हैं, जवकि दर्शक उवकर प्राय: घर जाने को तत्पर हो जाते और छात्राओं का प्रोत्साहन पुरस्कार वह भी कभी दिया तो दिया और अधिकतर तो घोषित करके भी देना ही भूल जाते हैं।

जैन विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के सुअवसर पर आपकी संस्था के तत्वावधान में भी मुझे कई कार्यक्रम प्रस्तुत करने का सुअवसर मिला। पाया कि ठीक समय पर जव कि प्रेक्षागृह प्रवुद्ध लोगों से पूरी उमंग के साथ भरा था तभी हमारा ड्रामा मंचस्थ हुआ। छात्राओं ने भी इससे उत्साहित होकर इतना सुन्दर अभिनय, नृत्य, गायन आदि किया कि उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और रहा छात्राओं का पुरस्कारर। वह तो अलग से एक विशाल सभा का आयोजन कर सुन्दर ढंग से सभी को वितरित किया गया।

धनाढ्य व्यक्तियों का सम्मान तो सभी अन्तरंगता से करते हैं, किन्तु उसी तत्परता से वैदुष्य का सम्मान तो विरल लोग ही करते हैं। इस प्रसंग में एक घटना का उल्लेख अवश्य करूंगी।

मेरे छोटे जामाता के परम मित्र हैं- श्री मिमाणीजी जो कि करोड़पति होने के साथ-साथ वड़ी ही सौम्य प्रकृति के हैं। उन्होंने अपने भतीजे को जैन विद्यालय की उच्चमाध्यमिक कक्षा में प्रवेश दिलाना चाहा, किन्तु वोर्ड सम्वन्धी कुछ गड़वड़ी के कारण वे ऐसा करने में असमर्थ रहे। अन्तत: मेरे जंवाई ने इस कार्य के लिए मुझसे कहा। उस समय कांकरिया साहव से मेरा इतना परिचय नहीं था। अत: मैंने अत्यन्त संकोच के साथ श्री कांकरियाजी को प्रवेश निवेदन हेतु एक पत्र लिखा—डर रही थी कहीं कांकरियाजी इनकार कर गये तो मुझे लज्जित ही होना पड़ेगा। किन्तु नहीं जैसे ही वह लड़का पत्र लेकर उनके सम्मुख पहुंचा, प्रथम तो उससे मेरा सम्वन्ध पूछा और मेरी तारीफ में ऐसा पुल वांधते हुए जिसकी कि मैं पात्र नहीं, तुरन्त फार्म दे दिया। उनके इस कार्य ने मेरे हृदय पर तो अपनी महानता की अमिट छाप छोडी ही एक प्रतिष्ठित जैनेतर व्यक्ति के सम्मुख यह भी उजागर किया कि हम विदुषी नारियों का पूर्ण सम्मान करते हैं।

आज ऐसे व्यक्ति को सम्मानित किया जानकर जो प्रसन्नता हो रही है वह अवर्णनीय है। ईश्वर से करबद्ध प्रार्थना करती हूं कि आपको स्वस्थ और दीर्घायु वनाएं, साथ ही सद्कार्यों के लिए उन्हें प्रेरित करता रहे।

- श्रीमती राजकुमारी वेगानी, कलकत्ता

love and regards, friendship and trust. He has built the house of his life on the firm foundation of personal intergrity and that is the mystery of his strong self-confidence.

I sometimes wonder how he reconciles his open-minded clear thinking and object-oriented reasoning with the orthodoxy of religious cults he is associated with as a respectable sravak but he manages to do so, only because of his ability to put and keep all things in their objective perspectives. That is a great quality. He gives "unto caesar what belongs to caesar, unto God what belongs unto God"- as Christ used to say. He never compromises on the matters of principles, yet extends a helping hand to whom he can, to the extent he can. Not more, not less. This approach to life is really splendid.

Inspite of not being a very well-read person, he is a very well-heard person and participates on religio-philosophical seminars and conferences speaks confidently what he knows and also does not conceal what he does not. This is a touching quality which endears him to scholars. He has a great respect for learning. This is perhaps why he could devote himself to the cause of education, schools and seminars. He knows, perhaps, that "nothing purifies a human being as knowledge does".

To he will remain the head of my house, our dear kakosa as we call him-the emblem of family feeling, love, compassion and care. I offer my regards on his sastipurti his having reached sixty years of his life. May he live a hundred years, nay, a hundred and one.

Bhaniram, Calcutta,
23/2/93

यह एक सामान्य अनुभव है कि प्रत्येक प्रदेश की अपनी-अपनी विशेषताएं होती हैं। किन्तु उसमें भी जिस विशेषता की अधिकता जिस प्रदेश में होती है उस कारण वह प्रदेश उस विशेषता के लिये प्रसिद्ध हो जाता है। इसी सामान्य नियम के तहत मरुधरा भूमि वीर प्रसवा मानी जाती है। इसी प्रदेश ने प्राणपण से अपनी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखने के लिए महाराणा प्रताप जैसे ऐतिहासिक शासक को जन्म दिया और उसी ने महाराणा प्रताप को अपने युद्ध में आर्थिक सहायता करने के लिए अपने सम्पूर्ण कोष को समर्पित कर देने वाले वीर भामाशाह को जन्म दिया। इसी प्रदेश ने विश्व-प्रसिद्ध देलवाड़े (आबू) के जैन मंदिरों के निर्माण में प्रचुर धन का उपयोग करने वाले वस्तुपाल तेजपाल (जो इसी प्रदेश में शासन के मुख्य सूत्रधार या मंत्री) को जन्म दिया। तात्पर्य यह है कि यह मरुधरा वीर प्रसवा, दानवीर प्रसवा तथा शौर्यगाथा सम्पन्न रही। और इन ऐतिहासिक कार्यों का प्रभाव वहां के जनसाधारण में भी पाया जाता है। वहां के निवासी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कष्ट सहन करने के अभ्यस्त हैं। अनजाने सुदूर स्थान (देश विदेशों) तक में व्यापक व्यापार व्यवसाय आदि साहस के साथ जमाने में संलग्न रहे। मरुधरा निवासी ने जब अनजाने, सुदूर प्रदेश में जाकर अपनी आजीविका के लिये कार्य किया तब भी वे अपने रीति रिवाज, भाषा आदि की पहचान अक्षुण्ण रखते हुए स्थानीय जनता में घुल-मिल गये।

मुझे एक बार तमिलनाडु (मद्रास राज्य) की ग्रीष्मकालीन राजधानी (उटकमण्ड) जाना हुआ। वहां की भीषण शीत मेरी क्षीण-काया सहन नहीं कर सकी। परामर्श के पश्चात् वहां से १५०० फीट नीचे कुन्नूर स्थान पर रुकने का तय करना पड़ा। स्थानीय एक मारवाड़ी बंधु ने आतिथ्य का भार लिया। वह चाय, काफी के व्यापारी थे। मैंने देखा कि वह अपने परिवार में मारवाड़ी बोली बोलते। मेरे जैसे व्यक्ति से खड़ी हिन्दी में बात करते। जब उनके व्यवसाय में कोई अंग्रेजीदां आता उससे अंग्रेजी में सम्भाषण करते। इस प्रकार वह अपना कार्य ३ बोलियों में सम्पन्न करने में दक्ष थे। जब मैंने लगभग ३५ वर्ष पूर्व एक विश्व धर्म सम्मेलन में शिरकत के लिये 'जैन धर्म का प्रतिनिधित्व' करने के लिए सुदूर पूर्व की यात्रा की तब जापान (सूर्य का देश) की पुरानी राजधानी

क्योटो, व्यापारिक स्थान ओसाका में भी जाने का सुअवसर मिला। वहां कई मारवाड़ी बंधुओं (व्यापारियों) से भेंट हुई और उनके यहां मारवाड़ी भोजन का स्वाद लिया। तात्पर्य यह कि इन साहसी बंधुओं की विशेषता यह रही कि वह अपना रीति-रिवाज, खान-पान अक्षुण्ण रखते हुए स्थानीय जनता में घुल-मिल गये। उन्होंने अपनी पहचान कायम रखी।

हमारे देश में कलकत्ता महानगरी का विशिष्ट स्थान है। इसकी जनसंख्या लगभग १ करोड़ की संख्या तक पहुंच चुकी है। ३० वर्ष पूर्व भी इसकी जनसंख्या लगभग ६० लाख से अधिक ही थी। ऐसे विशाल जनसमुदाय में रहकर अपने व्यापार व्यवसाय करते हुए अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाना कितना मुश्किल, श्रम साध्य, सूझबूझ की अपेक्षा रखता है, यह कोई भुक्त-भोगी ही जान सकता है। हमारे इन साहसी बंधुओं ने जन-सेवा के माध्यम से अपनी अर्जित सम्पत्ति का प्रचुर मात्रा में व्यय किया और इस प्रकार वहां के जन साधारण को उपकृत भी रखते आये हैं। मैं अपने मित्र, शुभचिंतक श्री सरदारमल जी कांकरिया से वर्षों से परिचित हूं। मैंने उनको साहसी, कर्मठ एवं लगनशील सज्जन पाया है। कलकत्ता के मध्यवर्ती स्थान सुकियस लेन स्थित जैन समाज की प्राणवान संस्था 'जैन सभा' तथा उसके माध्यम से स्थापित विद्यालय के वह एक दीर्घकाल से सचिव के पद पर आसीन हैं, किन्तु उनकी कर्मठता, लगनशीलता केवल सचिव के रूप में नहीं अपितु व्यक्तिगत गुणों, निष्काम साधना, शिक्षाप्रेम का परिणाम है। इनको इसी प्रकार का एक उच्च शिक्षा प्राप्त मित्र जिनसे मैं लगभग ३०-४० वर्षों से परिचित हूं, उक्त सज्जन श्री भूपराज जैन का योग मिला है। यह विद्यालय सन् १९३० के दशक में स्थापित किया गया था। जिसकी स्वर्ण जयंति सन् १९८४ में सम्पन्न हो चुकी है।

निजी रूप से मेरे लिये यह हर्षदायक समाचार है कि 'जैन सभा' श्री सरदारमल जी कांकरिया (कलकत्ता) का दिनांक ४-४-१९९३ ई. को अभिनन्दन करके अपनी भावना व्यक्त कर रही है। मैं तो अपने जीवन की संध्या में जी रहा हूं। दीर्घकालीन रोगग्रस्तता तथा अत्यधिक वृद्धावस्था (८३) के कारण शरीर जर्जर होता जा रहा है। यदि यह क्षीण-काया लम्बी यात्रा के योग्य होती तो सशरीर कलकत्ता उपस्थित होकर भव्य समारोह का रस लेता, किन्तु यह तो अब केवल स्वप्न जैसा लगता है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि भाई श्री सरदारमल जी स्वस्थ, सुखी, दीर्घजीवी होकर समाजोपयोगी कार्यों में और अधिक रस लें। इसीसे उनके महनीय जीवन का सौरभ समाज को प्रेरणादायी हो।

It was a chilly early morning of winter about 6 A.M. of 16th Dec., 1992 at Sealdah Railway platform when some one reached there virtually running to catch the train-Kanchanjanga Express to lead the team of about 20 persons going to Bolpur for registration and measurement of patients- handicaps, to be presented with artificial legs in **'FREE VIKLANG CAMP'** going to be organised by Shree S.S. Jain Seva Sangh at 18D, Sukeas Lane, Calcutta-1 in colloboration with **'MAHAVIR INTERNATIONAL, CALCUTTA CHAPTER'** during the period from 30th Dec., '92 to 3rd Jan. 1993. This person was none else but tall man embedded with high spirit of service to the less fortunate breathern of the society as well as superb dedication to the cause, popularly known as **'SHREE SARDARMAL KANKARIA'** and the said team was consisting of most disciplined, dedicated, selfless members of Shree S.S. Jain Seva Sangh as well as Shree Bijay Agarwal, Member, Mahavir International, Calcutta Chapter all belonging to highly prosperous, elite society of Calcutta but with firm determination, full of zeal and enthuseasm to serve the maximum number of handicaps in the said camp.

I do remember that when I requested my fellow colleague Shree Vijay Agarwal and three other workers of Mahavir International to reach Sealdah Railway Station on 16th Dec. 1992 at 6 A.M. initially there was resentment in view of reporting so early in cold chilly morning but when it was insisted by the team members of Shree S.S. Jain Seva

Sangh, they had accepted but still reluctantly. Later on when I was informed that Shree Sardarmal Kankaria himself was present and actively participated in Registration & Measurement, I had to ask twice to confirm and believe about the presence of Shree Kankaria being a very senior elderly, celebriety, aristrocrat and sophisticated person. Later on while meeting Shree Sardarmalji Kankaria when I congratulated him he remarked, which I still remember that **'One had to act and practice himself before preaching'** and this was my first enduring impression about Sri Kankaria. In fact when Rtn. Shohan Rajji Singhvi, being most devoted promoter and well wisher of our 'PROJECT FOR HANDICAPS' brought Shree Sardarmalji Kankaria on one fine Suday morning in our workshop engaged in manufacture, fitment and free supply of artificial legs at 5 Kabir Road, Calcutta, I took it for granted that Shree Kankaria shall also express lip sympathy for the project and shall announce a donation to have an invitation for dinner at his residence to discuss and finalise about a camp purposed to be organised for free supply of artificial legs with specific object of such services to reach much needy handicaps living far away in remote villages and townships who are either not aware of such existing facility or it is beyond their reach to afford fitting of such artificial legs from commercial centres. In fact all such broad out lines and programme were discussed and finalised at his dinner meeting and Shree Ashok Mini was introduced to me as commander-in-chief being convenor of such purposed camp. Later on I was also made aware by his team members and other distinguished persons of the society about Shree Kankariaji's immense contributions in the field of education also. In fact I gathered that Shree Kankaria was closely and actively associated since last several years with the management of Shree Jain Vidyalaya known for its strict discipline in students, high standard of education, brilliant results in examinations and above all for illustrious character among the teachers and the taught and the credit for this goes to the stewardness of Shree Kankaria. Moreover, when Shree Kankaria realised that there is serious necessity of such an Institution-School on the pattern of Shree Jain Viidyalaya in overcrowded & thickly populated township of Howrah, he took the cudgel and the mission, discussed with his fellow collegues and team members and announced about a purposed unit of Shree Jain Vidyalaya also at Howrah. It is to be seen to believe that under the stewardship and leadership of Shri Kankaria within about one year of laying foundation stone at Bon Behari Bose Road, Howrah, a school building was constructed and school actually started functioning. Recently on 26th Jan. '93 on the occasion of flag hoisting ceremony at such newly set up school at Howrah I had the priviledge to witness the functioning of the school, meeing with the teaching staff, Head Mistress and I was highly impressed with the discipline infused and injected in the students. At present there are about 1800 students- boys and girls and good number of qualified and experienced teaching staff.

Shree Sardarmalji Kankaria hails from an aminent affluent, prosperous and wealthy family of Kankarias, well established in several fields of business but equally holding high reputation in the field of service to the society as well as for generous donation to the cause of poor and suffering humanity and also for active participation in the managements of social service institutions. Shree Sardarmalji Kankaria has therefore emerged at the top with a superb blend of all the inherent qualities of such illustrious family. He is also known for his business acuemanship, his inform talents for leadership, his aptitude for social service and undoubtedly possess towering personality.

While meeting Shri Kankaria, I have always found him a living legend of old maxim **'Simple living and high thinking'**. He possess most cheerful and smiling disposition but carries mental weight of such purposition which reveals bubbling confidence, firm determination and powerful instinct that inspires and motivates others too. No doubt he has staunch faith in religion as I understand but he is far away from orthodox fundamentalism and truely speaking he adores religion in the sense which preaches to practice **'Love all, serve all'** and **'malice for none but service to all irrespective of cast and creed'**.

Shree Kankaria is an eloguent orator, embedded with convincing power by his versatile interest as well as clear conception about today's burning problems as well as its remedial necessities. He believes that right education, ardent discipline and good character in the incoming generation can be inculcated by ideal educational institutions and which is the only panacea and therefore Shree Kankaria endeavours his best to deliver the same from the institutions where he has the say and holding.

- J.S. Mehta, M.A., M.S.W., LL.B., Calcutta

श्री सरदारमलजी कांकरिया समाज के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा. के अनन्य भक्त हैं एवं समय-समय पर सेवा में पधारकर दर्शनों का लाभ लेते हैं तथा स्थानकवासी जैन समाज को अपने सुझाव भी देते रहते हैं। श्री कांकरियाजी शिक्षा प्रेमी व कुशल संगठनकर्त्ता हैं। उनका समाज के प्रति महत्वपूर्ण योगदान है और उनकी विशिष्ट जनकल्याण सेवाएं प्रशंसनीय व अनुकरणीय हैं।

श्रीमान् कांकरियाजी से मेरा परिचय बहुत पुराना है और उनके परिवार से हमारे पारिवारिक सम्बन्ध भी होने से यह सम्बन्ध और प्रगाढ़ हो गये। बहुत बड़ा व्यवसाय होने पर भी ये सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी लेकर सदैव समाज सेवा करते हैं।

श्री अखिल भारतीवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में आप एक हैं। उन्होंने समाज की सेवा तन, मन, धन से की है। आपने कलकत्ते में श्री जैन विद्यालय को आगे बढ़ाया है। श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा व जैन विद्यालय के विकास हेतु अद्भुत योगदान दिया जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अभी इन्होंने पुष्कल धनराशि एकत्रित करके जैन विद्यालय की एक शाखा हवड़ा में प्रारम्भ कर अपने स्वप्न को साकार किया है। यह उनके अथक प्रयास व मेहनत का ही प्रमाण है और मैं आशा करता हूं कि वे इन सामाजिक कार्यों में निरन्तर अग्रणी रहेंगे।

इन सेवाओं एवं लगन की वजह से उन्हें समाज के एक लौह पुरुष की संज्ञा दे सकते हैं। श्री कांकरियाजी आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान उदयपुर के भी अग्रणी कार्यकर्त्ता हैं। वास्तव में ऐसे व्यक्ति ही समाज, देश व राष्ट्र को सफलता की सीढ़ियों की ओर अग्रसर कर सकते हैं। अन्त में अपनी तथा अपने भंसाली परिवार की ओर से आपके दीर्घायु होने की शुभकामना करते हुए आपका अभिनन्दन करता हूं।

- भीखमचन्द भंसाली, कलकत्ता

समाज-सेवा और धर्म-सेवा के रंग में रंगे हुए उत्साही और कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री सरदारमलजी कांकरिया को कौन नहीं जानता? कौन नहीं पहचानता? ये अपने लम्बे कद और रोवदार विशिष्ट व्यक्तित्व से जाने जाते हैं। यशस्वी जीवन जीने वाले श्री कांकरियाजी वर्षों से समाजोत्थान के कार्य में लगे हैं।

श्री कांकरियाजी चतुर्विध संघ के जाने-माने-पहिचाने गौरवशाली पुरुष हैं। आपके व्यक्तित्व का निर्माण धैर्य, विवेक, सद्भाव, मैत्री, सेवा और कर्त्तव्य के अनन्त अनुपम उपादनों से हुआ है।

आपके सम्मुख समाज और धर्म सम्बन्धी जो भी समस्याएं आईं, आपने वड़े धैर्य और विवेक के साथ उन समस्याओं का समाधान किया है। आप साहसी और निर्भीक व्यक्ति हैं। कठिन परिस्थितियों में भी आपने कभी हिम्मत नहीं हारी है। अपनी दृढ़ता की, निष्ठा की और कुशलता की सभी पर अमिट छाप छोड़ी है।

वर्षों से आप समाज और धर्म सेवा के कार्य में लगे हैं। युवकों को आगे लाना, उन्हें उत्साहित करना, उनमें कर्त्तव्य और निष्काम सेवा के भाव भरना आपके जीवन का प्रमुख ध्येय रहा है। आप सदा प्रसन्न और मुस्कराते हुए देखे गये हैं।

यद्यपि श्री कांकरियाजी की उम्र में और मेरी उम्र में अधिक अन्तर नहीं है। किन्तु मेरे से कई वर्षों पूर्व ही आप चतुर्विध संघ की सेवा में लग गये।

मेरे पिताजी का आपके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वे कहा करते थे कि कम उम्र में ही श्री कांकरियाजी समाज-कल्याण के काम में लग गये। यह उनके पूर्व संस्कारों का फल है, माता-पिता और गुरु के प्रति भक्ति का ही प्रताप है। आप आचार्य श्री नानालालजी म. सा. के अनन्य भक्त हैं।

आप स्वतंत्र विचारक हैं। स्पष्टवक्ता हैं। आप सदा कहा करते हैं कि काम क़रो, पैसों की चिन्ता न करो। पैसों की व्यवस्था हो जायेगी। संघ का कार्य होना चाहिए।

श्री सरदारमलजी कांकरिया सुखी हों, स्वस्थ हों, दीर्घायु हों और वीतराग पथ में आगे बढ़ते हुए, वीरशासन को गौरवान्वित करें, यही मेरी मंगल कामना है।

- सोहनलाल सिपानी, बेंगलोर

श्री सरदारमलजी कांकरिया की सामाजिक उपलब्धियां चाहे वे समाज सेवा के सन्दर्भ में हों, मानव कल्याण के लिए हों या शिक्षा के क्षेत्र में, उन पर कुछ भी कहना या बोलना उनके व्यक्तित्व को सिर्फ बौना करने के प्रयत्न के अलावा कुछ भी नहीं होगा। फिर भी कुछ शब्दों में यदि कहा जाय तो वे निश्चित रूप से एक कर्मठ कार्यकर्त्ता, निष्काम सेवा-भावी, अनन्य शिक्षा प्रेमी व कुशल संचालक हैं। यह कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के तो वे हृदय हैं। आने वाले समय में यह सभा इनके योगदान को इतिहास के रूप में देखेगी।

मुझे इनके साथ सिर्फ चंद घंटे रहने का अवसर प्राप्त हुआ। दिनांक २ जुलाई, १९९१ को जयपुर से बीकानेर की यात्रा के दौरान मानव कल्याण व समाज सेवाओं की विभिन्न परिकल्पनाओं के बारे में श्री कांकरियाजी अपने विचार विस्तार से मुझे बता रहे थे जिनमें विद्यालय, अस्पताल, पुस्तकालय एवं शोध संस्थाओं का निर्माण करना प्रमुख विषय था। मुझे वे मानव कल्याण एवं समाज सेवाओं के प्रति सफल चिन्तक व समर्पित व्यक्ति प्रतीत हो रहे थे। अनेक अभिलाषाएं तथा कुछ कर गुजरने की तमन्नाएं उनके हृदय में लहरा रही थी। इरादे भी इतने बुलन्द कि आसमान को छू लेने वाले। समाज सेवाओं के लिए उनके नश-नश में जोश उमड़ता दृष्टिगत हो रहा था। वृद्ध होते हुए भी एक नवयुवक से ज्यादा सक्रिय लगते थे। बात के दौरान एक छोटी-सी समस्या का उल्लेख किया "आयकर की धारा ८०जी में प्रमाण पत्र के नवीनीकरण की", जिसका प्रार्थना पत्र श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा ने आयकर विभाग में दाखिल कर रखा था और तभी हम अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गये एवं यात्रा एवं यात्रा के वार्तालाप का समापन भी हो गया।

कुछ दिनों के बाद अक्टूबर १९९१ में उनसे इसी सभा भवन में भेंट हुई तब तक आयकर विभाग ने उस प्रमाणपत्र का नवीनीकरण नहीं किया था। आपने अपने इरादे व दृढ़ संकल्प को फिर दोहराया और बोले कि जैन विद्यालय, हावड़ा का आरम्भ अगले वर्ष सन् १९९२ में कर देंगे, जबकि उस समय उस विद्यालय की नींव भी पड़नी बाकी थी। मैं एक आयकर सलाहकार होने के नाते यह जानता था कि इस सभा का उस प्रमाण पत्र का नवीनीकरण सिर्फ एक औपचारिक कार्यवाही मात्र है, जिसका आयकर विभाग समय आने पर स्वत: नवीनीकरण करेगा तथा इसी

विचार से मैंने उनकी इस बात को ज्यादा महत्व नहीं दिया। मगर उनकी अभिलाषा इतनी प्रबल थी कि वे इस प्रमाण पत्र को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करें ताकि उनका अर्थ संग्रह एवं भवन निर्माण का कार्य सुचारु रूप से सही समय पर सम्पन्न हो सके।

प्रमाण पत्र का उन्हें इन्तजार था। मैंने प्रयत्न करके उन्हें प्रमाण पत्र उपलब्ध करा दिया। उन्होंने विद्यालय का निर्माण कार्य नवम्बर, १९९१ में आरम्भ किया तथा इसके साथ ही राशि संग्रह का कार्य भी तेज कर दिया। इस राशि संग्रह अभियान के दौरान समाज के लिए उन्हें भिक्षार्थी बनना पड़ा। समाज सेवा के लिए इन्होंने कहां-कहां भिक्षा नहीं मांगी। समाज के वास्ते समाज से भिक्षा मांगना निश्चित रूप से एक साधारण व्यक्ति का कार्य नहीं हो सकता तथा न ही साधारण व्यक्ति समाज के लिए भिक्षा प्राप्त कर सकता है। भिक्षा निस्सन्देह दीक्षार्थी (साधु) प्राप्त कर सकता है मगर इस व्यक्ति ने उन सब दिक्षार्थियों (साधुओं) के सामने उदाहरण रख दिया है कि एक सामाजिक प्राणी भी भिक्षा प्राप्त कर सकता है। उनकी इसी भिक्षा प्रवृत्ति ने आज समाज को, इस सभा को, जैन विद्यालय हवड़ा के रूप में- पांच मंजिली भव्य इमारत का एक वर्ष की अल्पावधि में निर्माण कराके, प्रदान कर दी है। इस छोटी-सी अवधि में इस विद्यालय का सिर्फ निर्माण ही नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने देखते-ही-देखते सुयोग्य शिक्षकों का चयन करके मई, १९९२ में १८०० विद्यार्थियों के साथ कक्षा एक से कक्षा ८ तक विद्यालय प्रारम्भ कर दिया। आज यह विद्यालय हवड़ा जिले की उच्चकोटि के विद्यालयों में एक है तथा इसका सुचारु रूप से संचालन भी हो रहा है। एक असम्भव लगने वाले कार्य को सम्पन्न करने या यह चमत्कार श्री कांकरियाजी का ही है। श्री कांकरियाजी का कार्यकाल स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से पहले आरम्भ हुआ तथा इनके कार्यकाल के दौरान श्री गुलजारीलाल नंदा, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री मोरारजी देसाई, श्री चरण सिंह, श्री राजीव गांधी, श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह व श्री चन्द्रशेखर जैसे नेता समय-समय पर देश के प्रधानमंत्री बने व चले गये मगर इनकी निष्काम सेवाओं से सभा, समाज एवं राष्ट्र सतत लाभान्वित हैं एवं होते रहेंगे।

इस व्यक्ति ने नये विद्यालय के निर्माण की परिकल्पना तो निश्चित रूप से निश्चित अवधि में परिणित कर दी। अन्य परिकल्पनाओं को मूर्त्त रूप देने के लिए इस सभा को इनकी ऐसी ही अविश्रान्त सेवाओं की अत्यन्त आवश्यकता है। अन्य परिकल्पनाओं के बारे में गम्भीरता से सोचें तथा अपने ही कर कमलों से आरम्भ करें, यह हम सबकी हार्दिक अभिलाषा है। उनकी इस यात्रा के दौरान भी यह समाज, यह सभा तथा इसके सभी कार्यकर्त्ता उनको पूर्ण सहयोग देंगे, इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। समाज के लिए समाज का यह निमंत्रण वे सहर्ष स्वीकार कर कृतार्थ करेंगे।

यह मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य जन्म पाकर इसका उपयोग किस तरह करते हैं, यह व्यक्ति की चेतना पर निर्भर है। प्रत्येक व्यक्ति एवं संस्था अपने कार्य का लेखाजोखा करते हैं और यह देखते हैं कि उसने क्या खोया एवं क्या पाया। बहुत से व्यक्ति अपने स्वार्थों की पूर्ति में ही संलग्न रहकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो इस दुर्लभ जीवन का उपयोग परहित के लिए करते हैं। श्री कांकरियाजी ऐसे ही व्यक्ति हैं। वे अपने जीवन का प्रत्येक क्षण परहित चिन्तन में लगाते हैं। उनको व्यक्तिशः इसमें क्या मिलता है। शायद कुछ भी नहीं। वे अपने जीवन का अमूल्य समय लगाकर जो संस्थाएं खड़ी कर रहे हैं, उसका लाभ तो अन्यों को ही मिलेगा। उनका संचालन भी वे नहीं करेंगे। युवापीढ़ी के अन्य व्यक्ति ही करेंगे फिर यह सब किस लिए? आत्मसंतोष के लिए, अपने सत्कर्मों से मानव जीवन को सफल बनाने के लिए। वह मां धन्य है जो ऐसे नवरत्न पैदा करती है। उसको हमारे शतशः प्रणाम। श्री कांकरियाजी के कार्यकलापों का मूल्यांकन मेरे जैसे व्यक्ति से सम्भव नहीं है फिर भी उन्होंने जिस तरह अपने मन को वश में कर सेवाकार्यों के लिए अपने को समर्पित किया है, वह

निश्चित ही अभिनन्दनीय एवं अनुकरणीय है। आत्म विश्वास, आत्मबल एवं आत्म जागरण के द्वारा व्यक्ति जहां अपनी आत्मा का उत्थान कर आत्म कल्याण करता है वहां वह समाज एवं राष्ट्र का कल्याण कर यशस्वी बनता है और समाज तथा देश गौरवान्वित होता है। यही जैन धर्म का सार है, प्रभावना है। श्री कांकरियाजी इसी हेतु समर्पित हैं। वे दीर्घायु हों एवं अपने जीवन के साथ राष्ट्र जीवन को भी सुवासित करते रहें, यही कामना है, यही प्रार्थना है, किमूअधिकम् ?

- शिखरचन्द वैद, एडवोकेट, कलकत्ता

सरदारमलजी कांकरिया का अभिनन्दन मानवीय मूल्यों का सम्मान है।

अभिनंदित होने वाले से भी अधिक गौरवान्वित वह संस्था होती है, जो ऐसी विभूतियों का सम्मान करती है। आदरणीय कांकरिया जी के व्यक्तित्व को शब्दों में आबद्ध या रेखांकित करना सम्भव नहीं है।

अभिनन्दन किसी अभिनन्दित व्यक्ति का चर्मोत्कर्ष नहीं है, बल्कि मील का पत्थर है, जहां से उसे नई ऊर्जा के साथ पुन: प्रारम्भ करना है, अग्रसर होना है।

आदरणीय सरदारमलजी के सान्निध्य का सौभाग्य तो बहुत ही कम मिला, लेकिन वे क्षण मेरे जीवन की अमूल्य निधि हैं, अविस्मरणीय एवं अनमोल हैं।

अजातशत्रु, निश्छल, निस्वार्थ, स्वाभाविक एवं मौलिक विचारों की अभिव्यक्ति आदरणीय कांकरियाजी की कार्यशैली की विशिष्टता है, उनके जीवन का सशक्त पहलू है।

धार्मिक संस्कारों से पल्लवित उनका जीवनदर्शन सामाजिक परिवेश की पृष्ठभूमि है।

रुढ़िवादी परम्पराओं, मान्यताओं को वर्तमान सन्दर्भ में देशकाल-भाव के अनुरूप ढालने की क्षमता लक्ष्य प्राप्ति हेतु समर्पण की भावना, दूर-दृष्टि तथा एक सुदृढ़ विचारधारा के आलोक से एक संगठित टीम का संचालन, अनुशासित आचार संहिता के दायरे में अपने सहयोगियों का विश्वास अर्जित करना उनकी कुशल संगठन शक्ति का परिचायक है।

आदरणीय कांकरिया जी नई पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत हैं, ज्योतिपुंज हैं उनका कार्यकाल अपनी संस्था के इतिहास का स्वर्णिम काल माना जायेगा।

ऐसी तपस्वी, यशस्वी विभूति के अभिनन्दन को मेरा भी शत्-शत् अभिनन्दन।

- पद्मचन्द धारीवाल, जयपुर

श्रीयुत सरदारमलजी कांकरिया से मेरे दो प्रकार के सम्बन्ध हैं एक सामाजिक और दूसरा पारिवारिक। पिछले कई वर्षों से दोनों ही रिश्तों के धरातल पर मैंने इन्हें काफी निकट से देखा है।

सामाजिक क्षेत्र में वे अत्यन्त साहसी, समर्पित और निष्ठावान श्रावक के रूप में जाने जाते हैं। समाज के जिस कार्य को करने का बीड़ा उठा लेंगे, पूरी लगन, निष्ठा और कर्त्तव्य-भावना से उसे पूरा करके ही दम लेते हैं। किसी की गांठ से पैसा कैसे निकलवाना, इसकी उनके पास अद्वितीय कला है। संघ में मैं काफी वर्षों से देख रहा हूं अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी कोई भी योजना हो श्री कांकरियाजी को आगे कर दिया जाता है। व्यक्ति पैसा तभी देता है जब उसके सदुपयोग के बारे में वह आश्वस्त हो जाता है और कांकरियाजी में वह कला है कि थोड़े ही शब्दों में वे उसे ऐसा प्रभावित कर देते हैं कि वह सोच से भी अधिक देने को तत्पर हो जाता है। इनके मार्ग दर्शन में रतलाम के उद्योग मंदिर की भवन योजना जितनी तत्परता से पूर्ण हुई वह आज भी मेरी स्मृति

में है। हावड़ा में नये जैन विद्यालय भवन के निर्माण की एक करोड़ की विशाल योजना इतने अल्प समय में पूर्ण कर विद्यालय प्रारम्भ करवा देना उन्हीं के अदम्य उत्साह और सामर्थ्य की बात है। वर्षों से जैन विद्यालय कलकत्ता के मंत्री पद पर रहते हुए उसका जिस तरह चहुंमुखी विकास किया है, यह उनके अनन्य शिक्षा प्रेम का प्रतीक है। उदयपुर में स्थापित प्राकृत शोध संस्थान भी उन्हीं की प्रेरणा और ज्ञान के प्रति प्रेम का द्योतक है।

श्री साधुमार्गी जैन संघ के आप संस्थापक सदस्यों में हैं। संघ के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित और श्रद्धासम्पन्न हैं, लेकिन इस क्षेत्र में भी आप कुछ विशिष्टता लिये हुए हैं। श्रावक श्रद्धावान तो अनेक होते हैं, लेकिन अंध श्रद्धा और चारित्रिक सद्गुणों के प्रति अंतरंग श्रद्धा में काफी अंतर होता है। चरित्र के प्रति थोड़ी भी स्खलना दृष्टिगोचर होने पर उसे स्पष्टतया लेकिन विनम्रता पूर्वक दिग्दर्शन करा देना काफी साहस का कार्य है। कुछ वर्षों पूर्व ऐसे श्रावक थे यह सुना जाता है, लेकिन आजकल तो अच्छे-अच्छे श्रावक केवल मुखापेक्षी रह गये हैं। श्री कांकरिया जी ऐसे ही स्पष्टवादी व्यक्ति हैं। सत्यनिष्ठ और स्पष्टवादी होना विद्वानों की दृष्टि में अद्वितीय गुण माना जाता है, लेकिन कभी-कभी यह गुण स्वयं के लिए पीड़ाकारक भी हो जाता है। यही कारण है कि श्री कांकरिया जी संघ के वरिष्ठतम, योग्य और निष्ठावान श्रावक होते हुए भी श्री साधुमार्गी संघ के अध्यक्ष पद को स्वीकार करने से कतराते रहे हैं। सत्य कहने, सुनने और उसे पचा जाने की क्षमता विरले व्यक्तियों में ही होती है। मुझे आज भी पूर्ण विश्वास है कि श्री कांकरियाजी यदि संघ के एक बार अध्यक्ष बन जावें तो समाज को एक नई दिशा प्राप्त हो सकेगी और संघ अधिक गौरवान्वित होगा।

समाज में किस व्यक्ति से किस तरह का काम, कैसे लेना इस कला में वे सिद्धहस्त हैं। व्यक्ति के गुणों की पहचान करना और तदनुरूप उससे कार्य लेना उनके लिये सहज है।

पारिवारिक सम्बन्ध से वे मेरे बहनोई हैं। काफी निकट का हमारा सम्बन्ध आज भी है। जिन्दगी को अत्यन्त सहजता से और प्रसन्नतापूर्वक कैसे जीना यह वे अच्छी तरह जानते हैं। किसी के भी प्रति ऊंच-नीच का, छोटे-बड़े का भेद उनमें तनिक भी नहीं है। बालकों के साथ बालक और बड़ों के साथ समय के अनुरूप गम्भीरता का व्यवहार उनकी विशेषता है।

श्री कांकरियाजी और श्रीमती फूलकुंवर बहन दीर्घायु हों और वे इसी समर्पण भाव से अधिक से अधिक मानव सेवा कार्य में संलग्न रहें, यही मेरी मंगलकामना है।

- मगललाल मेहता, रतलाम

श्री सरदारमलजी कांकरिया का अभिनन्दन श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा की तरफ से हो रहा है, अति प्रसन्नता है। ये समाज के रत्न हैं। समाज को इनकी व इनके परिवार की बहुत सेवा मिली है। मेरा तो इनके परिवार से ५०-६० वर्षों से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। श्री सरदारमल जी यथा नाम तथा गुण हैं। ये समाज के उत्थान के कार्यों में सदैव अग्रणी रहे हैं।

मुझे सम्वत् २०१९ का उदयपुर का संस्मरण याद है, इनके नेतृत्व में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ का गठन हुआ। उस समय आप पूर्ण युवा थे, लेकिन सूझबूझ बुजुर्गों जैसी थी। संघ को आपने नई दिशा प्रदान की। आज इस संघ की गरिमा उच्च शिखर पर है। इसमें श्री कांकरियाजी की मेहनत व लगन को बहुत बड़ा श्रेय है। संघ प्रवास बंगाल, आसाम व राजस्थान में मैं आपके साथ था। हमलोग जहां भी गये, समाज ने अति आदर दिया, संघ को हर प्रकार से सहयोग दिया व आपको संघ की रीढ़ व रिजर्व बैंक की उपमा से लोगों ने सम्मानित किया।

श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता के विकास व उन्नयन हेतु जो काम आपने किये, वे अविस्मरणीय

रहेंगे। श्री जैन विद्यालय हवड़ा यूनिट के निर्माण एवं संचालन का सारा श्रेय आपके कुशल नेतृत्व को ही है। आपकी ही अथक लगन से धन संग्रह व अल्प समय में ही भवन तैयार कर स्कूल का कार्य शुरू करना सम्भव हुआ है। यह अपने आप में श्री कांकरियाजी की कार्य क्षमता व तत्परता का आभास कराता है।

आप दीर्घायु हों, समाज को हर वक्त आपकी सद्प्रेरणा, सेवा व सलाह मिलती रहे यही शुभ कामना है। आपके जीवन का प्रत्येक क्षण रचनात्मक सर्जन को अर्पित हो। मैं शासन देव से आपके शतायु होने की मंगल कामना करता हूं।

- जसकरण बोथरा, गंगाशहर

श्री सरदारमलजी कांकरिया से मेरा लगभग ३५ वर्षों से सम्बन्ध रहा है और मैंने उन्हें अपने बड़े भाई के रूप में ही देखा है। उनके प्रति मेरे मन में अपार सम्मान सदैव रहा और आज भी विद्यमान है। स्व. गणेशाचार्य के सम्वत् २०१५ जावरा चातुर्मास के समय श्री कांकरियाजी से मेरी अधिक निकटता बढ़ी। स्व. श्री महावीरचंदजी धाड़ीवाल रायपुर और श्री कांकरियाजी उस समय युवा पंक्ति के अग्रणी कार्यकर्त्ता थे। समाजोत्थान हेतु घंटों चर्चाओं का दौर चलता और तब यह निकटता निरन्तर बढ़ती गई। यदि मैं यह कहूं कि मुझे और मेरे जैसे अनेक कार्यकर्त्ताओं को संघ और समाज सेवा में आगे लाने में मुख्य भूमिका भाई श्री कांकरियाजी की ही रही तो अन्यथा न होगा।

वर्तमान आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा. जब मालवा के ग्रामीण अंचलों में विचरण कर रहे थे। उन दिनों मालवा के ग्रामीण अंचलों में बसे हरिजन (बलाई) समाज को आचार्य प्रवर के उपदेशों के श्रवण करने का सुलभ अवसर मिला और इस जाति में व्यसन मुक्त होकर अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा जागी। हजारों परिवारों ने व्यसन मुक्त होकर धर्मपाल के रूप में अपनी अलग पहचान बनाई। श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ ने इस योजना को मूर्त्त रूप दिया और यह रचनात्मक कार्य आज मालवा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस सबके पीछे यदि किसी व्यक्ति की अहम् भूमिका रही तो वह श्री सरदारमलजी कांकरिया की है।

श्री कांकरियाजी ने अनेक बार इन ग्रामीण अंचलों में पदयात्राएं आयोजित होने पर बड़े उत्साहपूर्वक भाग लिया और कलकत्ता में प्रेरणा देकर समाज प्रमुखों को आमंत्रित कर मालवा की इस प्रवृत्ति को गौरवमंडित किया। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में जिस लगन और निष्ठा से श्री कांकरियाजी जुड़े रहे और जुड़े हुए हैं, उससे हम सभी को प्रेरणा मिलती है। श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ एवं उससे जुड़ी हुई अनेक प्रवृत्तियों को ऊंचाइयों और शिखर तक पहुंचाने में प्रथम स्थान श्री कांकरियाजी का रहा है। ईश्वर उनको दीर्घायु करें ताकि समाज सेवा के नये-नये आयाम सम्पादित होते रहें, यही मेरी कामना है।

- समीरमल कांठेड़, जावरा (रतलाम)

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के सरदार श्री सरदारमलजी कांकरिया के इस अभिनन्दन के अवसर पर अभाणी परिवार हार्दिक आनन्द की अनुभूति करता है। श्री कांकरियाजी से मेरा गत पचीस वर्षों से विशेष परिचय रहा है और इस लम्बी अवधि में मैने उन्हें लगातार विभिन्न संस्थाओं से जुड़े रहते, इस सभा और समाज की सेवा में तन-मन-धन से समर्पित पाया है। प्रारम्भ से ही आप श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ से विशेष रूप से जुड़े हुए हैं। अन्य धर्मों के प्रति समभाव रखते हुए आपने स्थानकवासी संघ को विशेष सेवायें अर्पित की हैं। भारत के

किसी भी भाग में जब तक जहां-तहां हमारे आचार्य व प्रमुख संत सतियाजी विराजते हैं, वहां ये पधारते रहते हैं एवं उनके दर्शन व ज्ञानोपार्जन का लाभ लेते रहते हैं।

मध्य प्रदेश में बलाई जाति के मांसाहारी व दुर्व्यसनी भाइयों को मांस भक्षण से छुटकारा दिलाकर उनको शाकाहारी व शुद्ध चरित्र सम्पन्न बनाने के गुरुदेव के आह्वान को सफल बनाने हेतु आपने समय-समय पर पद-यात्राओं में भाग लिया है। दूसरों के सद्‌कार्यों को देखकर हर्षित होना और उनको अपनाना आपका स्वभाव है। आपने मद्रास में बुक बैंक की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर हमारी सभा द्वारा संचालित बुक बैंक में भी जोश भर दिया और निःशुल्क पुस्तक वितरण का अति आकर्षक आयोजन करवाकर संस्था की शोभा बढ़ाई है।

आपके भाषण, भावयुक्त वास्तविक और उत्साहवर्द्धक होते हैं। मनुष्य के लिए अपनी गलती स्वीकार करना बड़ा कठिन कार्य है। श्री कांकरियाजी किसी शुभ कार्य को करने व अनुशासन रखने हेतु कभी-कभी नरम-गरम शब्दों का प्रयोग कर लेते हैं या कठोरता से काम लेते हैं। किन्तु नम्रता पूर्वक अपनी भूल स्वीकार कर क्षमा याचना कर लेना भी आप का विशेष गुण है।

समय पर सिद्धान्त की रक्षा व सही फैसले ले लेना आपकी विशेषता है। समाज के कठिन-से-कठिन कार्यों का बेड़ा उठाकर साहस से सामना करना और अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से उसे आसान बना लेने की अद्‌भुत कला आप में है। अपने जन्म स्थान व राजस्थान के लोगों की सेवा के अलावा बंगाल के स्थानीय समाज के सुख-दुख में भी आप विशेष रुचि रखते हैं। यह आपकी गहन सूझबूझ और दूरदर्शिता का परिणाम है।

६५ वर्ष की आयु में भी आप बिल्कुल युवा लगते हैं और आपके कार्य करने की शक्ति, उमंग व शैली अद्‌भुत है। आप जो भी कार्य हाथ में लेते हैं, पूर्ण समर्पित होकर करते हैं। जहां जाते हैं, अपने आपमें संस्था बन जाते हैं और संस्था के लिए स्वयं व अन्य समाज से भी तन-मन-धन से सहयोग करते कराते रहते हैं। श्री जैन विद्यालय इसका ज्वलन्त प्रमाण है। जैसा नाम वैसा काम। स्थानकवासी समाज को ऐसे सुयोग्य सरदार पर गर्व है। समाज को आपकी सेवायें सुलभ रहें, आप स्वस्थ एवं शतायु हों, यही प्रभु से प्रार्थना है।

- बच्छराज अभानी, कलकत्ता

श्री सरदारमलजी कांकरिया, समाज के उन कर्मठ, साहसी, उत्साही, सेवाभावी आदर्श व्यक्तियों में से हैं जिन्हें धर्म प्रचार में अनुराग है, समाज सेवा में रुचि है, युवकों के चरित्र निर्माण में लगन है। चतुर्विध संघ को स्वस्थ और उन्नत देखने की उनकी उत्कट अभिलाषा है। इन्होंने बिखरी कड़ियां जोड़ते हुए सदैव बिगड़े कार्यों को बनाया है। ऐसे अनूठे और गौरवशाली व्यक्ति को धन्य है।

वर्तमान में श्री कांकरियाजी समाज कि उन विरल विभूतियों में से हैं, जिन्होंने श्री भैरूदानजी सेठिया, श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, श्री दुर्लभजी जौहरी, श्री सतीदासजी तातेड़ और श्री हीरालालजी नांदेचा की धार्मिक भावनाओं को ससम्मान आगे बढ़ाते हुए अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है एवं अपने विचार वैभव को कलात्मक बनाया है। श्री कांकरिया जी सरल स्वभाव के उदार व्यक्तियों में से हैं। उनका मानस दया, करुणा और सद्‌भावनाओं से परिपूर्ण है। प्रेम और एकता के आप अनन्य उपासक हैं। सेवा और कर्तव्य आपके जीवन का प्रभावशाली महामंत्र है। आत्मीयता और सौजन्यता आपके रग-रग में भरी हुई है। आप जिससे एक बार मिल लेते हैं, उसे अपना बनाते हुए उसमें अपनत्व की महक छोड़ देते हैं। आप अपनी बात किसी पर थोपते नहीं, सुझाव के रूप में प्रस्तुत करते हैं ताकि पारस्परिक माधुर्य में अन्तर नहीं आवे।

आचार्य श्री नानालालजी म.सा. के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा भक्ति है। साधुमार्गी जैन संघ

और चतुर्विध संघ के आप गणमान्य और लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। कर्त्तव्य और सेवा के माध्यम से आपने संघ का गौरव बढ़ाते हुए कीर्ति पताका फहराई है। कुशल व्यापारी होते हुए भी आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपने सदा जागरूक रहकर समाज की सेवा की है।

समाज में शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा दीन दुखीजनों की चिकित्सा के लिए आप सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में आपने वर्तमान में जो बीड़ा उठाया है वह सराहनीय व अभिनन्दनीय कदम है। स्पष्टवादिता आपके व्यक्तित्व का आभूषण है। गत २७ वर्षों से मेरा आपसे निकट का परिचय रहा है। मेरी मंगल कामना है कि आप दीर्घायु हों और अपनी सेवाओं से वीर शासन की शोभा बढ़ाते रहें।

- शांतिलाल सांड, बैंगलोर

यों तो श्री सरदारमलजी कांकरिया के सम्पर्क में मैं काफी वर्षों से हूं, लेकिन जब श्री दीपचन्दजी भूरा संघ अध्यक्ष थे तब मेरे ही आग्रह पर संघ का पूर्वांचल प्रवास हुआ था। चातुर्मास का समय था। तब इस प्रवास के समय मैं आपके विशेष सम्पर्क में आया। आपकी बहुमुखी प्रतिभा की 'मैंने इस प्रवास में कई दिन रहकर प्रत्यक्ष अनुभूति की। आपका दृष्टिकोण विशाल है एवं आपमें सबको मिलाकर चलने की तथा नेतृत्व देने की एक उत्कट प्रतिभा देखी।

जिस बात से मैं विशेष प्रभावित हुआ हूं, वह है उनकी 'प्रत्युत्पन्नमति'। घटना तो घट जाती है मगर घटना कभी-कभी अमिट छाप भी छोड़ जाती है। हमलोग (मैं, श्री सरदारमलजी, श्री दीपचन्दजी भूरा, भंवरलालजी बैद, जसकरणजी बोथरा एवं केशरीचंदजी गोलछा) गोहाटी से रवाना हुए तो प्रोग्राम मैंने बनाया कि कहां-कहां चलना है। मेरे द्वारा जो सूची बनाई गई थी, उसमें कोकड़ाझाड़ जाना भी शामिल था। मगर हम में से ही किसी सदस्य को कोकड़ाझाड़ जाने की इस बिना पर आपत्ति थी कि वहां मुनिश्री सुमेरमलजी बिराज रहे हैं। (चूंकि वे संघ से बाहर हैं)। लेकिन मैं इस बात कर अड़ा था कि कोकड़ाझाड़ अगर बाद देते हैं तो मैं साथ में नहीं रहूंगा। बात जरा खींचतान में आ रही थी एवं मैं लगभग निर्णय ले चुका था कि मुझे इनके साथ नहीं जाना है। मगर तभी श्री सरदारमलजी ने हंसते हुए बात का सूत्र अपने हाथ में लिया एवं सबको शान्त किया कि नहीं यह प्रवास भूराजी के अनुरोध पर हुआ है, अतएव उनके द्वारा जो प्रोग्राम होगा वहीं हमें मान्य है।

अत्यधिक गम्भीर वातावरण में हाथ से बाहर निकलते सूत्र को हाथ में पकड़कर उनके द्वारा जो प्रत्युत्पन्नमति प्रदर्शित की उससे मैंने एक शिक्षा ग्रहण की कि जिन्दगी में विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी हंसते-हंसते कैसे समस्या सुलझाई जा सकती है।

- कन्हैयालाल भूरा, कूचबिहार

आदरणीय सरदारमलजी कांकरिया का अत्यधिक मृदुल व्यवहार, सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के साथ आत्मीयता एवं समाज सेवा में सदा तत्परता प्रत्येक के लिए अनुकरणीय है। प्रायः यह देखा गया है कि जब कभी किसी महत्वपूर्ण उत्सव में आदरणीय कांकरियाजी किसी कार्यवश नहीं पहुंचते या देर से पहुंच पाते हैं तो उपस्थित लोगों की आंखें उन्हें तलाशने में लगी रहती हैं, हरपल उनकी उपस्थिति देखने को तत्पर रहती हैं। कांकरिया सा. की अपनी कितनी भी व्यस्तता क्यों न हो प्रत्येक आगन्तुक को देखते ही मुस्करा कर अभिवादन कर उसे भाव विभोर कर देते हैं जिससे आगन्तुक को ऐसा अहसास होता है कि वे कांकरियाजी के परिवारजन की तरह ही हैं। किसी भी प्रकार के मान-गुमान से दूर आदरणीय कांकरियाजी सदा समाज सेवा में समर्पित हैं। वे स्पष्टभाषी एवं दूरदर्शी हैं। किसी भी कार्य को विवेक की कसौटी पर कस कर ही करते हैं। मैं उनके उज्ज्वल भविष्य एवं दीर्घायु की कामना करता हूं।

- हस्तीमल नाहटा, अजमेर

श्री श्वे. स्था. जैन सभा, कलकत्ता को उन्नति के शिखर पर ले जाने में श्री सरदारमलजी कांकरिया का विशेष योग रहा है। कांकरिया सा. की समाज सेवा व कार्य करने की क्षमता आदर्श व निराली है। जिस काम में आप हाथ डालते हैं उसे पूरा किये बिना चैन नहीं लेते। जन कल्याणकारी प्रवृत्तियों के लिए धन-राशि एकत्रित करने की आप में जो शक्ति है, वह विरले ही व्यक्तियों में मिलती है। आपका व्यक्तित्व ऐसा है कि जहां भी आप जाते हैं, खाली हाथ नहीं लौटते। श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के तो आप प्राण हैं। संघ की सभी महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों में आपका विशेष योगदान रहा है। श्री गणेश जैन छात्रावास उदयपुर की उन्नति में आपकी विशेष भूमिका रही है। जन कल्याणकारी कार्यों में अमूल्य समय लगाने के कारण आपका जैन समाज में विशिष्ट स्थान है। आप स्पष्टवादी हैं। इस मामले में किसी का लिहाज नहीं रखते। सन्त मुनिवरों में भी यदि कोई कमी आपको दृष्टिगत होती है तो आप निःसंकोच बिना किसी हिचकिचाहट के कह देते हैं। स्वर्गीय गणेशाचार्य का जब गोगोलाव चातुर्मास था तब आपने आचार्य देव व समाज की सेवा का विशेष लाभ प्राप्त किया था। आचार्य श्री नानालालजी म. सा. व युवाचार्य श्री रामलालजी म. सा. के प्रति आपकी प्रगाढ़ श्रद्धा है। आप दीर्घायु होकर समाज की अधिक से अधिक सेवा करें, यही कामना है।

- लूणकरण हीरावत, देशनोक

आदरणीय समाज सेवक श्री सरदारमलजी कांकरिया एक विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी हैं। आपने अपने जीवन के अल्पकाल में ही कलकत्ता ही नहीं सारे भारतवर्ष में समग्र समाज को लेकर चलने में अपना विशेष योगदान दिया है। आपने अपने जीवन में कलकत्ता में सभी समाज वालों को लेकर बड़ी संस्थाओं का निर्माण कर शिक्षा व अन्य क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया है। आप श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के संरक्षक हैं। इस संघ में भी आप एवं आपका कांकरिया परिवार अपनी अमूल्य सेवाओं के लिए याद किया जाता है। आपने अन्य संस्थाओं को भी बगैर पद पर रहते हुए विशेष मार्गदर्शन दिया है। ऐसे अनूठे व्यक्तित्व के धनी का आप अभिनन्दन कर रहे हैं, अतः इस अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार करें।

- अशोक सुराना, रायपुर

राजस्थान में नागौर जिले के ग्राम गोगोलाव के मूल निवासी श्रीमान् सरदारमलजी साहब कांकरिया आत्मज स्वर्गीय किसनलालजी साहब कांकरिया की कर्मस्थली भले ही कलकत्ता रही हो, किन्तु

उद्योग व्यवसाय के साथ-साथ समाज-सेवा और संगठन के क्षेत्र में उनकी कर्मजा ऊर्जा ने भारत के कोने-कोने में बहुआयामी विस्तार दिया है। वे मृदुभाषी, अति मिलनसार एवं व्यवहार कुशल व्यक्तित्व के धनी हैं।

समाज के हित में चिन्तन-मनन कर सर्वसम्मति से उसका क्रियान्वयन करना एवं अर्थ के साथ समय का भी विसर्जन करना समाज एवं संगठन की सच्ची सेवा है और अपनी इन्हीं विशेषताओं के अनुरूप श्री कांकरियाजी ने हावड़ा में समाज के छात्र-छात्राओं के लिये जैन विद्यालय के निर्माण में अथक प्रयास कर उसे मूर्त्त रूप दिया है, जो भावी पीढ़ी के लिये सदैव प्रेरणा स्रोत बना रहेगा।

श्री कांकरियाजी साहब से मेरा घनिष्ठ पारिवारिक एवं आत्मीय सम्बन्ध विगत ५५ वर्षों से हैं, किन्तु मात्र इसी कारण से नहीं अपितु उनकी समाज सेवाओं के निष्पक्ष मूल्यांकन से मैं उन्हें बारम्बार साधुवाद देता हूं और उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। साथ ही उनके दीर्घायु एवं यशस्वी जीवन की मंगलमकामना करता हूं।

- मंगलचंद लूंकड़, रायपुर

Sri Sardarmalji Kankaria is a hard and dedicated worker, but above that he has capacity to motivate others to work for the cause. His services to the Sthanakvasi Community in particular and the overall community in general are commendable.

I have all the regards and appreciation for Shri Kankariaji and I am proud that a person like him is being honoured.

- M. MAHENDRA DADHA

मेरा औपचारिक सम्पर्क कब और कैसे घनिष्ठता में परिणित हुआ, यह बता पाना बहुत कठिन है। जीवन डगर में पड़ाव आनन्द और स्फूर्ति के संदेश प्रेषित करते हैं। सरदार जी से घनिष्ठता मेरे लिये एक ऐसी ही अनुभूति का द्योतक है। उनकी सहृदयता, सदाशयता, औदार्य और स्नेह ने मेरे जीवनाकाश को आन्दानुभूति से अभिभूत किया, जो मेरे स्मृति कोष का एक अक्षुण्ण नगीना बनकर दमक रहा है।

अक्षुण्ण मैत्री सहज प्राप्य नहीं है। यह उदात्त भाव की उपलब्धि है, जो मित्र के सरल सद्व्यवहार, निरअहंकार और वाक-पटुता का प्रसाद है। इसमें दु:ख छिपाव का स्थान न होकर स्पष्ट भावाभिव्यक्ति की श्रेष्ठता है, जो स्वाद में कितनी ही कटु क्यों नहीं हो। ये ही सद्भाव प्रिय मित्र सरदार जी की स्वाभाविक थाती है, चाहे इसके लिए गुरू भाव या कि मैत्री भाव अथच प्रथम परिचय की क्षीण रेखा ही क्यों न हो। मैत्री भाव की घनिष्ठता में सम्पन्नता या विपन्नता आड़े नहीं आती यही निरहंकार है। यह है कृष्णा-सुदामा का मैत्री भाव। जिसको अपना लिया- सम्पूर्ण अपनत्व से आत्मसात् कर लिया अन्यथा 'का बापुरो सुदामा कृष्ण मिताई जोग'।

अपने भावों एवं विचारों की इतनी स्पष्टता अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती, जैसी सरदार जी के भावों एवं विचारों की एकता में परिलक्षित है। बाहर और भीतर से समरस। ऐसा नहीं कि भीतर कुछ और बाहर कुछ। यह स्पष्टता उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। इसके अनेक उदाहरण समय-समय पर सामने आते रहे हैं, जिससे संतों पर भी चुटियाते पाया। सरदार जी अपनी बात की चोट अवसर पर कर ही जाते हैं। अभी हाल ही की बात है कतिपय कारण से एक संत आवेशित हो गये। सरदारजी उन्हें भी यह कहने से नहीं चूके कि 'हम गृहस्थ तो मोह और आवेग की स्वाभाविक सांसारिक वृति से आवेष्ठित हैं ही, परन्तु संत जिन्होंने आत्मोत्थान हेतु सांसारिकता त्यागी है, उनमें आवेश की प्रवृति शोभा नहीं देती'। वस्तुत: मोह-आवेश-क्रोध-कषाय का दुश्चक्र विवेक-हनन

एवं आत्मिक-विकास के ह्रास का कारण है।

सरदार जी की वाक्-पटुता एवं विनोदी स्वभाव की झलक का एक दृष्टांत यहां उपस्थित किये विना उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना अधूरा रहेगा। वात यूं हुई कि आचार्य प्रवर अपने प्रवचन के दौरान तम्वाकू सेवन एवं धूम्रपान से व्यक्ति और समाज के अहित के प्रति उद्वोधन दे रहे थे कि प्रसंगवश सरदार जी बोल पड़े कि 'तम्वाकू सेवन और धूम्रपान से व्यक्ति ही नहीं उसका कुटुम्ब भी लाभान्वित होता है'। इस उल्टी मति से श्रावक वृंद चौंक पड़े कि तम्वाकू सेवन और धूम्रपान के सम्बन्ध में कांकरिया जी कैसे कुविचार रखते हैं। आचार्यवर की उद्वोधना में कैसा व्यवधान उत्पन्न कर दिया है। परन्तु गुरुवर ने प्रशांत मुद्रा में पूछा कि कांकरिया जी आपकी इस मान्यता के लिये अपने विचार श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करें। सरदार जी ने अपनी सहज मौज मस्ती में कहा, 'कृपावर तम्वाकू एवं धूम्रपान से व्यक्ति एवं परिवार को तीन लाभ हैं- प्रथमत: इसके सेवन से अजनबी से भी अनौपचारिक परिचय सहज है। सेवन करने वाला तम्वाकू या सिगरेट माचिस अजनवी से वेहिचक मांगने में भी झिझक नहीं रखता। दूसरे, इसके सेवन वाला व्यक्ति वृद्धावस्था के एकाकीपन का कष्ट नहीं भोगता क्योंकि प्राय: उसकी जीवन-यात्रा युवावस्था या कि प्रौढ़ावस्था में ही अधूरी रह जाती है। तीसरे कफ दोष से रात्रि जागरण अवश्यम्भावी है, जिससे चोर रात्रि में गृह प्रवेश नहीं पा सकता'। इस विनोदी व्याख्या से श्रोताओं में हंसी की फुहार छूट पड़ी।

सरदारजी के जीवन में घटित एक महती घटना के उल्लेख विना इनकी लोकप्रियता हृदयंगम नहीं हो पायेगी। अपने सन्निकट प्रियजन की अपेक्षित उपस्थिति के विना मन: स्थिति एवं हृदय संशय के घेरे में स्पन्दन करता है। इसे भले ही मानव हृदय की कमजोरी कहा जाये, परन्तु यह है स्वाभाविक प्रक्रिया। वात है यह वर्ष १९९१ के प्रारम्भ की। उदयपुर नगर में आयोजित दीक्षा समारोह की भव्यता के सुअवसर पर साधुमार्गी समाज के अग्रणी कार्यकारी सदस्यों की वैठक का आयोजन भी था, जिसमें सरदार जी की उपस्थिति प्रतीक्षित थी। यकायक अनपेक्षित समाचार से वज्रपात हुआ। 'सरदार जी नहीं रहे', दिल्ली से उदयपुर के लिए कार द्वारा प्रस्थान के पूर्व ही सरदार जी आकस्मिक दुर्घटना के शिकार हो गए। इस दु:खद समाचार से उपस्थित सभासदों में 'काटो तो खून नहीं' की स्थिति उत्पन्न हो गई। सव सकते की हालत में आ गये। उपस्थित सभासदों एवं श्रोताओं में शायद ही कोई विरल हो जो शोक मग्न नहीं हुआ हो, या कि आंखें छलछला नहीं गई हों। सायंकाल औपचारिक शोक सभा का आयोजन रखा गया। शोक सभा हेतु लोग उपस्थित होने लगे कि सरदार जी के सशरीर आगमन से सभाजन आश्चर्य-मिश्रित आह्लाद से अभिभूत हो गये। लोग सरदारजी से गले मिल बधाइयां बांटने लगे। इस वार हक्का-वक्का होने की सरदार जी की वारी थी, परन्तु स्थिति का ज्ञान होने पर सरदारजी ने, जैसा कि उनका स्वभाव है, वड़े जोरों का ठहाका लगाया। सभा में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। अवधारणा है कि ऐसी अघटित घटना से व्यक्ति दीर्घायु होता है। उपस्थित जन द्वारा उनकी दीर्घायु की कामना करते हुए सभा विसर्जित हुई। अपने उद्गारों को विराम दे रहा हूं कि सरदारजी अपने श्रद्धेय भाई साहव श्री पारसमल जी कांकरिया के चरण चिन्हों पर चलते हुए अपनी सम्पन्नता का जनहितार्थ सदुपयोग करें। इनका नि:स्वार्थ सेवानुराग, कर्मठ समाज-सेवा, शिक्षा प्रेम एवं कुशल संगठन संरचना आदि गुण-अर्जित लोकप्रियता एवं यश को अक्षुण्ण वनाये रखें।

- गौतममल भंडारी, जोधपुर

श्री सरदारमलजी कांकरिया का अभिनन्दन निश्चय ही एक उच्च व्यक्तित्व का अभिनन्दन है। एक उद्योगपति एवं समाज सेवी श्री कांकरियाजी को मैं जवसे और जितना जानता हूं, वह एक

उत्तम व्यक्तित्व से पहचान होने की प्रक्रिया मात्र है। अपने विशाल उद्योग की व्यस्तता से समय निकाल कर समाज सेवा में सन्नद्ध रहना उनके सदाशयी व्यक्तित्व की देन है। श्री कांकरियाजी श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के ट्रस्टी तथा 'विचार मंच' कलकत्ता के मंत्री के रूप में समाज सेवा बराबर करते आ रहे हैं। आप शिक्षा एवं सेवा के जीते जागते प्रतीक रूप में हमारे सामने हैं। उनकी शिक्षाप्रियता ने ही उन्हें श्री जैन विद्यालय के विकास एवं उन्नयन के लिये प्रेरित किया और इस कार्य को वे बड़ी लगन से पूरा कर रहे हैं।

मैं श्री कांकरियाजी के समाजसेवी, शिक्षाप्रेमी एवं प्रेरक व्यक्तित्व से हमेशा प्रभावित रहा हूं। मूलत: वे ही मेरे जीवन के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। पथ भूले व्यक्ति को उसके जीवन पथ पर लाने की सलाह श्री कांकरियाजी के मन और जबान पर छायी रहती है। अपने असाधारण व्यक्तित्व से दूसरे को प्रेरित करना और उसमें साहस, शक्ति तथा उत्साह पैदा करना इनका स्वभाव ही है। निश्चय ही श्री कांकरियाजी का व्यक्तित्व बहुआयामी है।

मैं इस उदात्त व्यक्तित्व को प्रणाम करता हूं एवं शतायु होने की कामना करता हूं।

- रतनलाल सुराना, बोलपुर, वीरभूम (प. बं.)

उन्हीं का जीवन है धन्य जग में, जो सेवाव्रत में लगे हैं। इसी पंक्ति में कलकत्ता के जैन समाज में एक नाम आता है- श्री सरदारमलजी कांकरिया का।

श्री कांकरियाजी सरल स्वभावी, मिलनसार एवं मिष्टभाषी सज्जन हैं। वाणिज्य-व्यवसाय में व्यस्त रहते हुए भी समाजोपयोगी कार्यों में निरन्तर अपना समय देते हैं। समाज के नवयुवकों को प्रोत्साहित कर अपने साथ सदैव कार्य करने के लिए उन्हें अग्रिम पंक्ति में खड़ा करते हैं।

विगत अनेक वर्षों से श्री जैन विद्यालय कलकत्ता के विकास एवं उन्नयन में वे अहर्निश लगे रहे हैं फलत: कलकत्ता के शिक्षण संस्थानों में यह अग्रणी स्थान रखता है। शिक्षा के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण अवदान है। हावड़ा में एक अच्छे शिक्षण संस्थान का अभाव था, उसकी पूर्ति में अपने सहयोगियों के साथ जुट गये एवं अथक अध्यवसाय तथा गहन सूझबूझ से नवीन विद्यालय का निर्माण कर उसे प्रारम्भ कर दिया, यह इनके उत्कट शिक्षा प्रेम का ही परिणाम है।

आप विचार मंच के मंत्री हैं, जिसकी स्थापना श्री कन्हैयालालजी सेठिया की प्रेरणा से हुई है। इस मंच के माध्यम से नवोदित कार्यकर्त्ताओं, कलाकारों एवं साहित्यकारों को पुरस्कृत एवं सम्मानित कर न केवल इन्हें प्रोत्साहित करते हैं, अपितु उनकी प्रतिभा का सही मूल्यांकन कर उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देते हैं।

पीड़ित मानव की सेवा के लिए भी ये हरदम तत्पर रहते हैं। साधनहीन रोगियों की सेवा के लिए एक अस्पताल के निर्माण की योजना ये हाथ में लेने वाले हैं। विश्वास है कि समग्र जैन समाज इसकी क्रियान्विति में सम्पूर्ण सहयोग प्रदान कर इस योजना को सफल बनायेंगे एवं आधुनिक संसाधनों से इसे युक्त बनाकर भावी पीढ़ी के लिए एक आदर्श स्थापित करेंगे।

श्री कांकरियाजी स्वस्थ हों, दीर्घायु हों एवं समाज सेवा में तत्पर रहकर युवकों का मार्गदर्शन करें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

- एम.एल. लूनिया, कलकत्ता

कलकत्ता के श्री सरदारमलजी कांकरिया नागौर के पास के गांव गोगोलाव के हैं, जिन्होंने अपने वाणिज्य व्यवसाय में तो अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की ही पर धर्म समाज की बहुमुखी सेवा में अपना

निस्वार्थ निष्काम योग देने की दृष्टि से लोकमान प्रतिष्ठा धारण किये हुए हैं। वे स्वभाव से बड़े शांत पर विचारों से धर्मक्रांत हैं। परम्परा के श्रेष्ठत्व को सामयिकता की कसौटी देने वाले समताधारी हैं। कुवेर हैं पर किसी से बैर नहीं है। कांकर की तरह कर्मठ होकर अपने चहुंओर स्नेह सहृदयता और शिष्टाचार की धार लिये हैं।

कांकरियाजी अपने व्यवसाय को परिष्कृत रुचि और सामाजिक स्टेट्स देने वालों में अपनी ओलखाण दिये हैं। फिल्मों के फाइनेंसर रहे तो काजल, वक्त और लव इन टोकियो जैसी फिल्में दी और डिस्ट्रीब्यूटर का कार्य हाथ में लिया तो कयामत से कयामत तक की रजत जयंती मनीं। कलकत्ता में ओरियन्टल सिनेमा इन्हीं का है।

प्रारम्भ में ऊन के व्यवसाय में इनका सिक्का खूब खनखनाया। भारत जनरल टेक्सटाइल्स तथा बंगाल पोलीमर कम्पनियों के माध्यम से इन्होंने बड़ी ख्याति अर्जित की। अब कन्स्ट्रक्शन का कार्य भी हाथ में लिया है। हावड़ा में अपनी पहचान देती नौ बिल्डिंग बनाई है।

वहां का जैन विद्यालय बड़ा आदर्श शिक्षा संस्थान है। शिक्षकों का बड़ा मान है यहां। सरकार से अधिक सेलेरी। अनुदान नहीं और परिणाम सर्वश्रेष्ठ। कांकरियाजी इसमें प्रणप्राण एक किये हैं। इस विद्यालय की अविस्मरणीय स्वर्ण जयंती मनाई। पत्रकारों, सम्पादकों का बड़ा भव्य सम्मेलन किया।

धर्म, अध्यात्म, साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास, पुरातत्व आदि का कोई क्षेत्र हो, कांकरियाजी का एक बड़ा मन निरन्तर अपनी प्यास बुझाता मिलेगा। साधु-संतों का सान्निध्य और विद्वानों का मान इनकी संजीवनी है। कलाकारों, साहित्यकारों, संस्कृतिविज्ञों के साथ मिलबैठ बातचीत करने, उन्हें अपना आवास देने और कलकत्ता दर्शन कराने में इन्हें आत्मीय सुख की अनुभूति होती है। सभी प्रकार का सु-साहित्य पढ़ने और संवार कर रखने में आपकी दिचलस्पी बड़ी अनोखी है।

अच्छे कार्य करने वाले व्यक्तियों और संगठनों के प्रति आप बड़े उदार और उनके बड़े हितैषी हैं। राजस्थानी के कविश्रेष्ठ कन्हैयालालजी सेठिया की प्रेरणा से इन्होंने विचार मंच को मूर्त्त रूप दिया और विभिन्न क्षेत्रों में साधनारत मनीषियों का सम्मान किया। भंवरलालजी नाहटा, कमलकुमार जैन ऐसे ही सुजनों में हैं। प्रसिद्ध चित्रकार इन्द्र दुगड़ की स्मृति में तो एक कोष ही स्थपित किया जिससे उनकी स्मृति में प्रति वर्ष एक चित्रकार सम्मानित किया जायेगा।

गत दो-ढाई दशकों से कलकत्ता में रह रहे राजस्थान के साहित्यनिष्ठ भूपराजजी जैन ने बताया कि कांकरियाजी जैनाचार्य हुक्मीचन्दजी की सम्प्रदाय से जुड़े हैं। जैन कांफ्रेंस की कार्यसमिति के वरेण्य सदस्य रहे। अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ की संस्थापना में नींव के पत्थर बने और आज भी इस संघ को पल्लवित-पुष्पित करने में पतंगीडोर अथवा पुतली सूत्र बने हुए हैं।

इस सम्प्रदाय के आचार्य श्री नानेश हैं। आज संघ की जो धार्मिक, साहित्यिक एवं शैक्षिक बहुविध प्रवृत्तियां चल रही हैं, उनमें कांकरियाजी का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष योग बड़ा जबर्दस्त है। वे रूट भी हैं और फ्रूट भी। वे सब जगह होते हुए भी कहीं नहीं हैं, वे सबकी बात रखते हैं और उनकी कोई बात नहीं टाली जाती। वे किंग नहीं हैं पर किंगडम उनका है। किंग मेकर ऐसे हैं, निस्पृह भाव लिये होते हैं।

गौरव उनको छूता है, जिनको तनिक भी गर्वगुमान नहीं छू गया होता है। उनसे मेरा एक डेढ़ बार, आधा पौवा देखना भर हुआ। मगर जो उनसे निरन्तर मिलते रहते हैं, उनसे मिलकर मैंने पाया कि एक ऐसा व्यक्ति जो सरदार नहीं होते हुए भी असरदार होता है वह जहां भी होता है, सरदारमल कांकरिया ही होता है।

- डॉ. महेन्द्र भानावत, उदयपुर

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा ने श्री सरदारमलजी कांकरिया का अभिनन्दन करने का निश्चय किया है, यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है।

श्री कांकरियाजी अत्यन्त सुलझे हुए व्यक्ति हैं एवं रचनात्मक तथा सेवाकार्य करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। किसी भी सेवाकार्य में धनराशि लगा देना महत्वपूर्ण कार्य है, किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है धन के साथ समय लगाना एवं मनोयोगपूर्वक कार्य करना। श्री सरदारमलजी ऐसे ही तन-मन-धन से समर्पित बेजोड़ कार्यकर्त्ता हैं। इनकी निष्काम सेवा, अथक अध्यवसाय तथा अपूर्व कर्मठता के कारण ही श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, श्री जैन विद्यालय आदि संस्थाएं अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। नवनिर्मित हवड़ा जैन विद्यालय श्री कांकरियाजी की निष्काम सेवा तथा अद्भुत कार्य क्षमता का जीता जागता नमूना है।

सफल व्यवसायी एवं अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी श्री कांकरियाजी सेवा के किसी कार्य में कभी पीछे नहीं रहते हैं एवं दूसरों को भी सदैव उत्साहित करते रहते हैं। उनकी कथनी एवं करनी में कोई अन्तर नहीं है। कथनी और करनी की इस एकरूपता ने ही उन्हें कार्यकर्त्ताओं के साथ-साथ विद्वानों में भी आदरणीय एवं लोकप्रिय बनाया है।

श्री कांकरियाजी से मेरे पारिवारिक सम्बन्ध हैं एवं मुझे भी सेवाकार्यों में पूर्ण सहयोग देने एवं रुचि रखने के लिए ये सदैव प्रेरित करते रहते हैं। उनकी प्रेरणा से ही मैं अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यों से जुड़ा हुआ हूं।

सामाजिक कार्यों में अनेक बार श्री कांकरियाजी के साथ मैं आता-जाता रहा हूं। मैंने श्री कांकरियाजी की विलक्षण कार्यशैली को निकटता से देखा है एवं महसूस किया है उनकी मिलनसारिता, विनोदप्रियता, गहन सूझबूझ एवं पैनी दृष्टि को।

श्री कांकरियाजी स्वस्थ रहें, शतायु हों एवं इसी प्रकार समाज सेवा में अग्रणी रहें, यही मेरी एवं मेरे परिवार की हार्दिक कामना है।

- शिखरचन्द मिन्नी, कलकत्ता

कलकत्ते की प्रसिद्ध संस्था श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के द्वारा श्री कांकरियाजी के सम्मान किये जाने का समाचार सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ। वस्तुत: आदरणीय श्री सरदारमलजी कांकरिया जैसे व्यक्तियों को सम्मानित कर संस्था स्वयं सम्मानित होती है।

विख्यात समाजसेवी श्री पारसमलजी के अनुज श्री सरदारमलजी को लोकोपकार की भावना विरासत में ही मिली है। आपके अग्रज श्री पारसमलजी, जिन्हें अपना पथ प्रदर्शक मानते हैं, वे भी ताउम्र इसी प्रकार की रचनात्मक गतिविधियों में संलग्न रहे थे। अपने बड़े भाई की उसी परम्परा को और शालीन एवं परिष्कृत विधिपूर्वक आगे बढ़ाया श्री सरदारमलजी ने।

श्रमण शास्त्रों के अनुसार, विद्यादान सभी दानों में श्रेष्ठ है, क्योंकि विद्या मुक्ति की हेतु है, 'सा विद्या-या विमुक्तये', इसी सूत्र वाक्य को अपने जीवन से परिभाषित किया है- सरदारमलजी ने, जिनकी प्रेरणा से स्थापित जैन विद्यालय, कलकत्ता एवं जैन विद्यालय, हावड़ा में न केवल हजारों विद्यार्थी विद्या ग्रहण करते हैं, बल्कि यह दोनों विद्यालय देश के श्रेष्ठ शिक्षा संस्थानों में से एक है, जहां से निकला विद्यार्थी के अलावा विद्यालय से संस्कार भी अर्जित करता है।

आप जूट व्यवसाय, फिल्म उद्योग, निर्माण उद्योग एवं रसायन उद्योग से जुड़े हैं और इन सभी

उद्योगों से सम्बन्धित संस्थाओं में सर्वोच्च पदों पर हैं, जो आपकी श्रेष्ठ सांगठनिक क्षमता, सामंजस्य पूर्ण व्यवहार एवं नीति कुशलता का जीवन्त उदाहरण है। फिल्म जगत में भी आप अग्रणी हैं। बड़े-बड़े शहरों और ग्रामों में भी आपकी व्यावसायिक फिल्में चलती रहती हैं। फिल्म उद्योग के बड़े-बड़े कलाकार भी सदा आपके सम्पर्क में रहते हैं। इतनी संस्थाओं एवं व्यापार का संचालन केवल तीक्ष्ण बुद्धि एवं मृदुल व्यवहार से ही सम्भव है। इनके अलावा आपकी एक और खूबी आपको अन्य उद्योगपतियों से अलग करती है, वह है परिवार पालक की। अपने परिवार में आपने प्रत्येक सदस्यों को जो व्यावसायिक दौड़ में पिछड़ गये थे, उन्हें पुन: स्थापित किया।

श्री सरदारमलजी केवल व्यावसायिक गतिविधियों में ही अग्रणी नहीं हैं, वरन् धार्मिक, सामाजिक गतिविधियों में भी नेतृत्व करते हैं समाज का। आप साधुमार्गी जैन संघ के विभिन्न पदों पर रहे हैं। साहित्य, संगीत एवं अध्यात्म में आपकी सूक्ष्म पकड़ जग जाहिर है। संस्कृत की एक सूक्ति से मैं अपनी बात को विराम दूंगा—

' विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धन सम्पत्तिर्धनाद्धर्म ततःसुखम्।।

अर्थात् विद्या मनुष्य को विनय देती है, विनय से पात्रता मिलती है, पात्रता होने से उसमें धन सम्पत्ति प्रवेश करती है, उससे धर्म मिलता है और धर्म से सुख मिलता है।

- डूंगरमल सुराणा, दिल्ली

हजारों की भीड़ में भी अपनी उपस्थिति एवं अहम् स्थिति का अहसास कराने में सक्षम श्रीयुत् सरदारमलजी कांकरिया समाज के प्रभावी नेता व वास्तविक 'सरदार' हैं। विलक्षण प्रतिभा एवं नेतृत्व कुशलता उनमें जन्मजात है।

सन् १९६०-६१ से मैं उनके निकट सम्पर्क में हूं। व्यवसाय के साथ-साथ सदैव सामाजिक क्षेत्र में सक्रियता से कार्यरत हैं। श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कार्यनिष्ठा व लक्ष्य के प्रति सतत् संलग्नता उनकी विशेष पहिचान है। हवड़ा में एक वर्ष की अल्पावधि में व्यापक जनसहयोग से भव्य भवन का निर्माण करवाकर १८०० छात्रों के बहुआयामी उच्चस्तरीय विद्यालय का शुभारम्भ करवा देना उनके उदात्त व्यक्तित्व का परिचायक है।

वे मेरे अग्रज हैं। विचारों व कार्यशैली में कुछ भिन्नता रहते हुए भी मैं सदा उनके प्रति श्रद्धावनत रहा हूं।

अभिनन्दन समारोह की शुभाभिनव वेला में मेरी आत्मीय शुभेच्छाएं।

- भंवरलाल कोठारी, बीकानेर

श्री सरदारमलजी कांकरिया केवल स्थानकवासी समाज ही नहीं अपितु समग्र जैन समाज के विख्यात सेवाभावी, कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं संगठन प्रेमी हैं।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के संस्थापकों में से आप प्रमुख हैं एवं तबसे अब तक उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति से पूर्णतया जुड़े हुए हैं एवं अपनी व्यस्तता के बावजूद वे काफी समय उसके रचनात्मक एवं सेवाकार्यों में लगाते हैं। श्री कांकरियाजी अत्यन्त उत्साही एवं कर्मनिष्ठ हैं। युवा कार्यकर्ताओं को निष्काम सेवा के लिए ये सदैव प्रेरणा देते रहते हैं एवं युवा कार्यकर्त्ता भी इनको अपने बीच उत्साहपूर्वक सेवाकार्य करते देखकर अत्यन्त उल्लसित एवं प्रेरित होते हैं।

श्री श्वे. स्थानकवासी जैन सभा द्वारा संचालित सभी प्रवृत्तियों को श्री कांकरियाजी अपने बहुमूल्य योगदान से निरन्तर आगे बढ़ाते रहते हैं एवं नई-नई योजनाओं को क्रियान्वित कर सभा को यशस्वी एवं गौरवान्वित करते हैं।

श्री जैन विद्यालय की उन्नति आपके उत्कट शिक्षाप्रेम का ही परिणाम है। आपके अपूर्व मार्गदर्शन से यह विद्यालय कलकत्ता की शिक्षण संस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। श्री जैन विद्यालय हवड़ा का निर्माण एवं प्रारम्भ आपके अथक अध्यवसाय का कीर्ति स्तम्भ है।

आपकी विनम्रता, उदारता एवं कर्मठता आज नई पीढ़ी के लिए नितान्त अनुकरणीय है। मैं आपके इस महान् व्यक्तित्व का अभिनन्दन करता हू एवं शतायु होने की प्रार्थना करता हूं।

- **भंवरलाल दस्साणी**, कलकत्ता

श्री सरदारमलजी कांकरिया की एक बहुत बड़ी विशेषता मुझे यह लगी कि वे सार्वजनिक समारोहों आदि के अवसर पर अपनी धर्मपत्नी श्रीमती फूलकुंवर कांकरिया को भी सदैव साथ रखते हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह के समय जब सात फेरे होते हैं, तो प्रत्येक पति अपनी पत्नी को वचन देता है कि सभाओं, समारोहों में सदैव आदर से अपने साथ रखूंगा किन्तु इस वचन का पालन करने वाले बहुत ही कम पति होते हैं। भारतीय संस्कृति में शिव पार्वती को आदर्श युगल माना गया है। शिवजी सदा पार्वती को साथ रखते हैं।

मैंने जितना श्री कांकरियाजी और आदरणीया श्रीमती फूलकुंवरजी को देखा है वे समारोहों में सदैव साथ-साथ रहते हैं। इन दोनों का स्नेह और इनकी आतमीयता हमारे परिवार की अक्षय स्मृति निधि है।

मैं श्री कांकरियाजी और श्रीमती फूलकुंवर की शिव पार्वती की इस जोड़ी के जुग-जुग जीने को प्रभु से प्रार्थना करती हूं।

- **कमला श्रीमाली**, बीकानेर

श्री सरदारमलजी कांकरिया से मेरा प्रथम परिचय सन् १९७५ में हुआ था और मैं पहली बार उनके साथ ही ब्यावर क्षेत्र में श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के प्रवास में गया था। तीन दिन निरन्तर साथ रहने और घूमने-फिरने सभाओं में सम्मिलित होने का वह सुअवसर मेरे संघ प्रवेश का भी स्वर्णिम सुयोग था।

इन तीन दिनों में मैंने अनुभव किया कि श्री कांकरियाजी न संघ अध्यक्ष थे, न ही संघ मंत्री किन्तु सदैव सभी समारोहों में वे सर्वोच्च सम्मान प्राप्त करते थे और श्रोताओं की जिज्ञासा उनका भाषण सुनने के लिए और युवा-प्रौढ़-वृद्ध की इच्छा उनसे सम्पर्क करने की बनी रहती थी।

सन् १९७५ से आज सन् ९३ तक की विगत सहयात्राओं में मुझे श्री कांकरियाजी की यशस्वी काल-यात्रा का दृष्टा बनने का सौभाग्य मिला। मैंने श्री कांकरियाजी में युवकोचित उद्दाम साहस, प्रौढ़ोचित दूरदृष्टि और बालकोचित सरलता को समय-समय पर प्रत्यक्ष अनुभव किया।

श्री कांकरियाजी की सबसे बड़ी जिस विशेषता ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया, वह है, संघ हित में आवश्यक होने पर कटु सत्य को निर्भीकता से प्रकट कर देना और इससे उत्पन्न होने वाले उग्र रोष के विष को सहज ही पी जाना। समाज जीवन में यह सर्वाधिक कठिन कार्य है। स्वयं भगवान श्री राम ने कहा था, "लोकोपवादो बलवान्मतो मे" अर्थात् मेरे मत में लोक निन्दा या लोक अपवाद सबसे बलवान वस्तु है, किन्तु यदि अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना से आज तक के विषम विकट कठिन क्षणों पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि प्रबल जनविरोध के बीच भी संघ के दूरगामी हित को पहिचान कर उस पर अडिग भाव से डट जाना और धीरे-धीरे पूरे समाज को अपने साथ लेते हुए कालान्तर में सबको सत्य की अनुभूति करा देना श्री कांकरियाजी जैसे सक्षम व्यक्ति का ही कमाल था। मद्रास में संघ सम्पत्ति का प्रकरण इस विशेषता की जीती जागती मिसाल है। इस प्रकार कह सकते हैं कि नियमन की पात्रता, अनुशासन की स्थापना और आवश्यकता होने पर विक्षोभकारी तत्वों को नियंत्रित करने की तत्परता प्रदर्शित करने में श्री कांकरियाजी ने कभी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। जैसे प्रकृति के सुसंचालन हेतु ब्रह्मा (सृजन), विष्णु (पालन) और शिव (संहारक-नियामक) की त्रयी कार्य करती है वैसे ही संघ जीवन में श्री कांकरियाजी को एक साथ सर्जक, पालक व नियामक के रूप में देखा जा सकता है।

वे नये कार्यकर्त्ताओं की प्रोत्साहनपूर्वक सर्जना करते हैं। संघ की अभिनव प्रवृत्तियों में उन्हें जुटाकर व प्रोत्साहित कर पालक की भूमिका निभाते हैं, किन्तु व्यवस्थित विकास के लिए उन्हें नियंत्रित रखते हुए नियामक की भूमिका का निर्वाह भी करते हैं।

जब श्री कांकरियाजी नियामक की कठोर भूमिका निभाते हैं, तब राजस्थानी की यही कहावत याद आती है 'खारा बोली मावड़ी, मीठा बोला लोग' अर्थात् मां अपनी संतान के हित में कठोर बनती है। श्री कांकरियाजी ने संघ हित में अनेक बार मां की भूमिका निभाई है और इसके लिए लोकनिन्दा के विष को अपने कंठ में धारण किया है।

विद्वानों का आदर : श्री कांकरियाजी के जीवन के इस पक्ष को निकट से देख-देखकर मेरा मन उनके प्रति श्रद्धा और आदर से भर उठता है। शिक्षाप्रेमी कांकरिया परिवार में श्री सरदारमलजी एक ज्योतित रत्न की भांति प्रकाशमान हैं। बहुधा लक्ष्मीपुत्रों की सभा में सरस्वती पुत्रों को उतना आदर नहीं मिलता, जितने के वे हकदार होते हैं, किन्तु जिस सभा में श्री कांकरियाजी उपस्थित होते हैं, वहां धनिकों पर विद्वानों को वरेण्यता प्रदान करने में वे सर्वाधिक सजग रहते हैं।

उन्होंने श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ में और अपने प्रभाव के अन्य संगठनों में विद्वत सम्मेलनों की एक ऐसी पवित्र और प्रेरक परम्परा प्रारम्भ करने की पहल की है, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। संघ के अजमेर, अहमदाबाद एवं कानोड अधिवेशन में विराट विद्वत सम्मेलन, जयपुर में डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी का जवाहर व्याख्यान माला में मंत्रमुग्ध कर देने वाला भाषण और इस व्याख्यानमाला के माध्यम से वृहत्तर समाज को विद्वानों से जोड़ने में श्री कांकरियाजी का जो योगदान रहा है वह अकेला प्रसंग ही उनके अभिनन्दन का सक्षम हेतु है।

पुराने जमाने के राजा-महाराजाओं के विद्यानुराग और विद्वानों के प्रेम की कहानियां सुनी हैं। उन कहानियों की श्री कांकरियाजी के विनम्र विद्वत्वरेण्य व्यवहार से तुलना करके देखने पर श्री कांकरियाजी का पलड़ा ही भारी नजर आता है।

कलकत्ते में श्री श्वे. स्था. जैन सभा और सभा द्वारा संचालित विद्यालय के क्रमशः हीरक एवं स्वर्ण जयन्ती महोत्सव में श्री कांकरियाजी ने देशभर के विद्वानों को आमंत्रित किया था और साथ ही उनकी सुख-सुविधा और सुव्यवस्था का स्वयं इतनी तत्परता से आयोजन किया था कि सभी प्रसन्न हो उठे।

वाराणसी के पार्श्वनाथ शोध संस्थान में स्वतः प्रेरणा से जाने और विद्वानों के सुख-दुःख में

एकात्म होने वाले कितने संघ प्रमुखों को हम गिना सकते हैं। श्री कांकरियाजी ही वह विरल व्यक्तित्व हैं कि जो ज्ञान की प्रत्येक पीठ पर अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्त करने पहुंचते हैं।

वे श्री कांकरियाजी ही हैं जिन्होंने आगम अहिंसा समता व प्राकृत शोध संस्थान और जैनोलाजी विभाग की स्थापना में आने वाली शताब्दी में जैनत्व के आलोक को प्रभावान बनाए रखने का स्वप्न देखा। और उस स्वप्न को साकार किया।

इस गुणपूजक संघ के एक वरेण्य सदस्य के रूप में वे सच्चे अर्थों में गुणपूजा करते रहे हैं। "गुणा गुणेपु वर्त्तन्ते" की सुभाषित को उन्होंने अपने कर्तृत्व से साकार स्वरूप प्रदान किया है।

जैन विद्यालय के संचालन में जिस शैक्षिक दृष्टि का आप ने परिचय दिया है, वैसी दृष्टि उन्हें एक प्रतिभावान प्रशासक सिद्ध करती है। शत-शत शिक्षकों और सहस्र-सहस्र छात्रों, अभिभावकों को प्रेरित कर सकने के अद्भुत सामर्थ्य के धनी श्री सरदारमलजी कांकरिया के इस अभिनन्दन पर मेरी अनन्त शुभकामनाएं। उनकी मेरे प्रति असीम स्नेहदृष्टि के लिए कोटि-कोटि आभार।

- जानकी नारायण श्रीमाली, बीकानेर

जिस प्रकार हर भारतीय को गांधीजी अथवा नेहरूजी के भारतीय होने पर गर्व है, उसी प्रकार मुझे एवं हम सबको श्री सरदारमलजी कांकरिया के राजस्थानी जैन होने पर गर्व है। वैसे तो मैं उन्हें अपने छोटे साले होने के नाते पिछले पचास से भी अधिक वर्षों से प्यार करता आया हूं। मगर गर्व एवं संतोष का एहसास इसलिए करता हूं कि उन्होंने अपने आप को जीवन के हर क्षेत्र में श्रेष्ठ साबित किया है। सरदार बाबू या सिर्फ बाबू कहकर मैं उन्हें सम्बोधित करता आया हूं।

तन-मन की स्वस्थता : बाबू स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मन के एक आदर्श हिमायती हैं। उन्होंने कसरत से कभी अपना नाता नहीं तोड़ा। तैराकी, बैडमिंटन, बालीबाल, क्रिकेट, फुटबाल, मालिश व पैदल घूमने का शौक बाबू को अरसे से रहा है एवं आज भी है। शरीर तो साधते ही हैं, साथ-साथ बाबू अपने सरल एवं मजाकिया स्वभाव से न केवल अपना ही, किन्तु अपने साथियों का भी मन हल्का कर देते हैं। जीने की यह सुलभ कला न जाने किससे और कब उन्होंने सीखी? बाबू के दोस्तों की तादाद न केवल बड़ी है, किन्तु स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान, बूढ़े सभी से भरी पड़ी है। जो भी बाबू से मिला कायल हो गया, यह मेरा अनुभव है।

परिवार : बाबू का परिवार से लगाव, प्रेरणीय एवं अमल में लाने योग्य है। भाभीजी फूलकुंवर जी ही को लीजिये, अत्यन्त प्रेम, शरारत, सहयोग एवं आदर सहित बाबू ने उन्हें अपनाया एवं पूर्ण स्नेह व विश्वास के साथ इतना आगे बढ़ाया कि फूलजी आज परिवार की सबसे अधिक चहेती बहू बन गई हैं। फूलजी हैं यू भी इन सबके काबिल, मगर बाबू का सहयोग सोने में सुगन्ध का काम कर गया। इसी तरह अपने पिताश्री, बड़े भाई साहब एवं परिवार के अन्य सब बड़ों से बाबू ने जो आदरभरा बर्ताव किया, उससे कोई शख्स अनजान नहीं। मेरे स्वयं के जीवन में, कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि मैं कहूं कि बाबू ने प्राण फूंक दिये। उन्होंने मुझे मेरे अत्यन्त तकलीफ के दिनों में तन, मन और धन से मदद दी और संवारा, इसे मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा। बाबू ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को जरूरतानुसार प्यार भरा अथवा कड़ा व्यवहार देकर उनके जीवन को सुधारने में कोई कसर न रखी। आज इसी कारणवश बाबू अपने आप को समाज के अनन्य कार्यकलापों में अर्पित कर पा रहे हैं। अत्यन्त व्यस्त लगते हुए भी, बाबू की व्यक्तिगत [illegible] परिवार के बन्धन में [illegible] हैं, यह मेरा अपना खास अनुभव है।

समाज एवं संघसेवा : अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के प्राण हैं बाबू, मैं यदि यह कहूं तो आप अन्यथा मत लेना। श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा ने तो आज का आयोजन

वावू की वहुमुखी समाजसेवा से प्रेरित होकर ही तो किया है। श्री जैन विद्यालय में वावू की सेवाएं प्रशंसनीय है। हावड़ा में खुले नये विद्यालय में उनके सुनहरे योगदान के वारे में सुनकर मेरा हृदय गद्गद् हो गया। वावू नागौर में पिताश्री के नाम से चलने वाली हायर सेकेण्ड्री स्कूल से भी इसी प्रकार जुड़े हुए हैं। वावू की हार्दिक अभिलाषा है कि एक अस्पताल गरीव वर्ग के लिए कलकत्ते में स्थापित करें। समाज सेवा, यदि मैं ठीक से समझता हूं तो यही है कि मानव अपने जीवन काल में अपने तन, मन व धन का, स्वशक्तिनुसार अर्पण औरों के लिए करे और वदले में कुछ भी न पाने की भावना को लेकर। वावू इसमें खरे उतरे हैं।

वावू का राजनीति से तो नहीं, मगर नेताओं से वहुत ही आदर्श व प्रेमभाव भीने सम्वन्ध रहे हैं। उनके घर में मेहमानवाजी का सौभाग्य कई नेताओं को प्राप्त हुआ। वावू और फूलजी मेजवानी में लाजवाव हैं।

व्यवसाय : वावू का व्यावसाय से घना सम्वन्ध, ४५ वर्षो से तो मैं जानता हूं- १९४७ में जूट का देशीय व अन्तर्देशीय व्यापार उनकी व्यवसायिक शुरुआत थी। तत्पश्चात् दिल्ली, कलकत्ता, जोधपुर में ऊन, गवारगम और व्लीचिंग पाऊडर का व्यवसाय, कलकत्ता में फिल्म वितरण, भवन निर्माण, पोलिमर आदि उद्योग वावू द्वारा प्रारम्भ किये गये। वावू की संचालन शक्ति एवं सहनशक्ति का मैं खासरूप से कायल हूं। वावू ने हर व्यवसाय में अपना पूरा-पूरा योगदान दिया एवं उन्हें सफल व समृद्ध वनाने में कोई कोशिश वाकी नहीं रखी। सफलता तो वहुत मिली और कभी-कभी असफलता भी हाथ लगी पर वावू का संयम, समत्व और धैर्य उनका साथ छोड़कर कभी न गया, यह वहुत वड़ी वात मानता हूं मैं। वावू की निर्लिप्तता शायद उनके होनहार होने का राज है, मेरी समझ में। वावू वालक समान चपलता के ही सिर्फ मालिक नहीं, आशावादिता से भरपूर, जैन समाज के अग्रणी सदस्य एवं कार्यकर्त्ता हैं। मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे वावू जैसे छोटे साले, पारसमलजी साहव जैसे वड़े साले एवं श्री किशनलालजी साहव जैसे पाक स्वसूरजी के संग जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सरदार वावू आज के अभिनन्दन के आयोजन के उपयुक्त चुनाव हैं, निस्सन्देह मैं यह कह सकता हूं। और मुझसे ज्यादा शायद ही कोई प्रसन्न होगा, आज के दिन। अपने एवं अपने परिवार के सम्पूर्ण स्नेह के साथ समाज एवं वावू को वधाइयां।

-महावीरचन्द गेलड़ा, हैदरावाद

निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का समाज सम्मान करे, यह प्रसन्नता की वात है। श्री सरदारमलजी कांकरिया परहित की दृष्टि से जो कार्य कर रहे हैं, जैन समाज के लिए यह गर्व की वात होनी चाहिए। इनकी कार्यनिष्ठा और सामाजिक कर्त्तव्य वोध की भावना और विराट रूप ले, मेरी यही शुभकामना है।

- श्री हर्ष, कलकत्ता

श्री सरदारमलजी कांकरिया के व्यक्तित्व में इतना आकर्षण है कि एक या दो वार मिलने से ही ऐसा आभास होता है कि वर्षो पुराना परिचय हो। सन् १९८६ में पूज्य पिताजी के अभिनन्दन के समय आपसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उसके वाद उन्होंने मेरा परिचय लोगों को अपने छोटे भाई के रूप में कराया। सिर्फ जुवान से ही नहीं वरन् व्यवहार में तथा हृदय से मुझे छोटे भाई का दर्जा दिया और सामाजिक कार्यो में रुचि लेने के लिए प्रोत्साहित किया। आज जो कुछ सामाजिक कार्य मैं कर पा रहा हूं, आपही की प्रेरणा का फल है।

- पद्मचन्द नाहटा, कलकत्ता

श्री सरदारमलजी कांकरिया श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के प्राण हैं। वे एक कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं तथा महिला समाज को आगे आकर कार्य करने हेतु आपने सदैव प्रेरणा दी है। महिला समाज के लिए वे एक प्रेरणा स्रोत है।

श्री एवं श्रीमती कांकरिया की जोड़ी स्वस्थ एवं दीर्घायु होकर अहर्निश समाज एवं संघ की सेवा करते रहे एवं इनका यश दिन-दूना रात-चौगुना चतुर्दिक फैलता रहे, यही मेरी एवं सुराना परिवार की शासनदेव से प्रार्थना है।

- विजया देवी सुराणा, रायपुर
पूर्व अध्यक्ष, साधुमार्गी जैन महिला समिति

मुझे उपनिषद का वह मंत्र याद आ रहा है जहां यह प्रार्थना की गई है- 'ओम् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै'। इस प्रार्थना में 'सह' की जो भावना व्यक्त की गई है उसका साकार रूप हमें श्री सरदारमलजी कांकरियाजी में परिदृष्ट होता है। वे खुद कुशल कार्यकर्त्ता तो हैं ही पर उनमें यह भावना भी बखूबी है कि समाज में और भी कार्यकर्त्ता बनें, सामने आएं। सामान्यत: यह देखा जाता है कि जो पद पर आसीन हो जाता है वह पद स्वेच्छया छोड़ना नहीं चाहता, पर सरदारमलजी इसके विपरीत दृष्टिगोचर होते हैं। वे अच्छे कार्यकर्त्ता को सम्मानित करने की भावना को ही लेकर केवल नहीं चलते, वे उसको भी जो कार्य करने की इच्छा रखता है अपने पद पर लाकर हर प्रकार की मदद करते रहते हैं ताकि वह भी एक समर्थ कार्यकर्त्ता बन जाए। ऐसा स्वयं 'तेजस्वी' नहीं होने से सम्भव ही नहीं होता। सरदारमलजी तेजस्वी भी हैं, स्नेहिल भी। इस प्रकार के विपरीत गुणों का समावेश श्रेष्ठ पुरुषों में ही देखा जाता है। आप साथ-साथ उदार भी हैं। उदार नहीं होने से अन्य को बढ़ावा नहीं दे सकते थे। उपरोक्त प्रार्थना में जो 'मा विद्विषावहै'- हम परस्पर द्वेष नहीं करें की जो भावना देखी जाती है वही भावना आपका जीवन दर्शन है। और इसी कारण आप शिक्षाविद् नहीं होते हुए भी शिक्षाप्रेमी, कलाविद नहीं होते हुए भी कलाप्रेमी, साहित्य सर्जन न करते हुए भी साहित्यप्रेमी और मानव सेवा में संलग्न होकर मानव प्रेमी हो गए हैं। उनके शतायु की प्रार्थना करते हुए-

गणेश ललवानी

Sir,

We need you most. Ours is an age of destabilisation, disruption and demoralisation. We are fast losing our faith in everything. We are disillusioned, and a disjointed lot watching passively and helplessly our fast deterioration. Only Poet T.S. Eliot can best represet us-

"We are the hallow men
We are the stuff men."

Is there any regeneration? May be, if we find you with us. We have many a mile to go before we sleep, so please be with us. I find it quite relevant to quote wordsworth. "Milton I thou should be living at this hour- England hath need of thee.

It is true, Bengal has left her days, her days of glory, achievements, sacrifices. There was no dearth of social reformers, politicians, patriots, educationists and enlightened personalities. They thought for us, they worked for us and they attained martydom for us. Nothing remains at present. We simply reminiscence.

Mr. Kankaria, you are a class by yourself. You are an Instiution by yourself. Your

persistent endeavour, indomitable energy and appropriate decision and unique foresightedness have contributed a lot not only to the growth and development of this institutions but also to others. Your dream, another Shree Jain Vidyalaya for boys and girls, has been transformed into reality. You are going to do many other things to bring about a Renaissance in a shpere where we seem to be wandering aimlessly without a custodian to steer us through several odds and encumbrances a total resurrection. Mr. Kankaria, we vie for your association, yearn for your guidance and assistence. We stand confused and perplexed in the assembly of psudo leaders, Politicians and elites. You are a colossus to us not that you bestride over us, you are a colossus since you give us a rght direction and show us a right path. Hence we hath need of thee.

- T.K. Roy, Shree Jain Vidyalaya, Calcutta

श्रेष्ठिवर्य श्री सरदारमलजी कांकरिया से सर्वप्रथम कब कहां साक्षात्कार हुआ, स्मृति पटल पर नहीं। यों हमारे परिवार के साथ उनके परिवार से घनिष्ठ घरेलू सम्बन्ध रहा है। श्री कांकरियाजी को मैंने निकट से देखा है।

जब मैं स्थाई रूप से कलकत्ता में रहता था, उसी समय से निकटतम सम्पर्क रहा है। श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा की गतिविधियों में ये सक्रिय उत्साही युवा कार्यकर्त्ता थे। सभा भवन के निर्माण, उसकी प्रगति में इनका एवं इनके परिवार का प्रशंसनीय योगदान रहा है। छोटे-से रूप में प्रारम्भ किये गये श्री जैन विद्यालय ने आज कॉलेज का रूप ग्रहण कर लिया। कलकत्ता की स्कूलों में खासकर बड़ाबाजार में यह विद्यालय अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ये इसके वर्षों से मंत्री हैं। इनके प्रयत्नों से इसका चतुर्मुखी विकास हुआ है।

सन् १९८४ में श्री जैन विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती के सुअवसर पर मैं कलकत्ता गया था। दिन-रात एक करके जिस भव्य रूप से इस समारोह को सफल बनाया उस समय इनकी कार्य क्षमता देखकर बड़ी प्रसन्नता और संतोष हुआ।

अभी-अभी कलकत्ता के उपनगर हवड़ा क्षेत्र में हाईस्कूल का निर्माण व प्रारम्भ जिस तीव्रगति से हुआ, उसमें इनकी लगन, पुरुषार्थ व सक्रियता विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रत्येक रविवार को जैन सभा के सभागार में बिना किसी भेदभाव के धर्म गुरुओं, सरस्वती पुत्रों का स्वागत सम्मान, विचार गोष्ठी, व्याख्यानमाला का आयोजन समय-समय पर होता रहता है। इन सबका संयोजन करने में ये हमेशा प्रेरणास्रोत रहे हैं।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर के ये जाने माने एक सफल कर्मठ, निष्ठावान कार्यकर्ता हैं। वर्षों तक इसके मानद् मंत्री रहे हैं। इनके कार्यकाल में अनेक महत्वपूर्ण योजनाएं बनीं और क्रियान्वित हुईं। जनसम्पर्क, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि क्षेत्रों में रचनात्मक कार्यक्रम उन्होंने किये। संघ ने कीर्तिमान बनाया और यश प्राप्त किया।

किसी भी योजना के लिए अर्थ की आवश्यकता रहती है, लेकिन आर्थिक अभाव के कारण किसी योजना को प्रारम्भ करने में बाधा नहीं आई। आर्थिक रूप से संघ को सुदृढ़ बनाने में ये प्रयत्नशील ही नहीं, बल्कि सफल भी रहे। हर अच्छी महत्वपूर्ण योजना को सहयोग, समर्थन देने की भावना सबकी रहती है पर पहल कौन करे। उसके लिए धन जुटाना उससे भी अधिक कठिन कार्य है। अपनी लोकप्रियता के कारण इन्होंने संघ को आर्थिक कमी कभी महसूस नहीं होने दी। कार्यकारिणी, विषय निर्धारिणी या आम सभा में जिस सहजता, समन्वय और सूझबूझ से सदस्यों की शंकाओं का समाधान व पेचीदा समस्याओं को हल करते हैं, वह इनकी कार्यकुशलता का परिचायक है।

श्री कांकरियाजी श्री गणेश जैन छात्रावास उदयपुर के संयोजक, [illegible]

शोध संस्थान उदयपुर के मानद् मंत्री व संघ के विश्वस्त मंडल के ट्रस्टी हैं। यत्र-तत्र-सर्वत्र ये संघ के कार्यों में सदैव दृष्टिगोचर होते हैं।

जब भी इनका मद्रास आना होता है, चाहे अपने घरेलू कार्य से या संघ के कार्य से, मुझसे अवश्य मिलते हैं। संघ समाज की चर्चा विशेषकर श्री अ.भा.सा. जैन संघ की गतिविधियों पर होती रहती है। आर्थिक रूप से संघ को अतमनिर्भर बनाने में मद्रास फ्लैट लेने में इनका मुझे सतत सहयोग रहा।

एक बार जब ये मद्रास आये तो मैं इन्हें राजस्थान यूथ एसोसियेशन के 'बुक बैंक' के समारोह में ले गया। उसकी उपयोगिता व लोकप्रियता को देखते ही इन्होंने कहा, इसे हम कलकत्ता में भी प्रारम्भ करेंगे। इससे पता चलता है कि ये जहां भी जाते हैं, वहां के समाज की उन्नति का हमेशा ख्याल रखते हैं एवं उपयोगी चीज को अपनाने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि कलकत्ता में भी सैकड़ों जरूरतमंद छात्र इस स्कीम से लाभान्वित हो रहे हैं।

इनके यशस्वी जीवन को सफल बनाने में इनके धर्म निष्ठ सरलमना अग्रज स्व. श्री पारसमलजी कांकरिया व इनकी प्रतिभाशाली धर्मपत्नी श्रीमती फूलकुंवरजी का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। ये भी श्री अ.भा.सा. जैन महिला समिति की अध्यक्षा रही हैं।

भाई कांकरियाजी के साथ वर्षों तक कार्य किया है, कर रहे हैं। मेरे अच्छे मित्रों, हितैषियों की श्रेणी में वे हैं। मैं उनके दीप्तिमान उज्ज्वल यशस्वी स्वस्थ दीर्घजीवन की मंगल कामना करता हूं। लोकोपकारी कार्यों से इसी तरह समाज को लाभान्वित करते रहें, इसी शुभेच्छा के साथ।

- केशरीचन्द सेठिया, मद्रास

मुझे श्री सरदारमलजी सा. से अनेकों धार्मिक, सामाजिक मंचों एवं अवसरों पर मिलने तथा विचार-विमर्श करने का सुअवसर मिला है। मैंने उनमें मानवीय समस्याओं के प्रति जहां गहरी तड़प तथा उसकी अस्मिता के प्रति सम्मान की पूर्णभावना पाई है, वहीं समाधान हेतु ईमानदार प्रयासों तथा सदाशयता की झलक भी। वैभव-समृद्धि ने उनकी निरभिमानता में वृद्धि की है तो ज्ञान ने गम्भीरता में। आप ने अपने सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की पूर्ति हेतु शिक्षा, राजनीति, धर्म, समाज एवं क्रीड़ा आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपने यथेष्ट योगदान द्वारा सोद्देश्य प्रयासों को सार्थकता तथा पूर्णता प्रदान की है। उनका यशस्वी जीवन अपने कालखंड का सुनहरा दस्तावेज है तो युवा पीढ़ी के लिए आदर्श भी।

श्री सरदारमलजी सा. जैसे कर्मठ व्यक्तित्व का सम्मान करना वास्तव में मानवीय उच्चादर्शों के मापदंडों की स्वीकारोक्ति भी है व वंदन भी। मैं जिनेश्वर देव से प्रार्थना करता हूं कि वे आपको शतायुधिक करें, जिससे कि समाज व राष्ट्र आपकी सेवाओं से निरन्तर लाभान्वित होता रहे।

- हरखचन्द नाहटा,
अध्यक्ष, अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासंघ, दिल्ली

विचित्र संयोग है कि वर्षों से महानगर कलकत्ता में प्रवास करते और यहां के हिन्दी भाषी समाज से सक्रिय रूप से युक्त होने के कारण समाज विशिष्ट श्री सरदारमल कांकरिया से मेरा परिचय कुछ माह पूर्व हुआ। कांकरियाजी दीर्घकाल से शिक्षा व्यवस्था से युक्त हैं और मैं अध्यापना से, तथापि हम एक दूसरे से अभी-अभी परिचित हो पाये। मेरे परिचय का क्षेत्र यों भी बड़ा क्षीण है, जो मेरे स्वभाव का सहज परिणाम है। आगे बढ़कर किसी से परिचय करने में मुझे बराबर संकोच होता रहा है। अपने समानधर्मी साहित्यिक आंगन के भी बहुत थोड़े लोगों से मेरा अन्तरंग सम्बन्ध बन पाया है। व्यवसाय जगत के कुछेक विद्याप्रेमी का मेरे प्रति स्नेह रहता है पर धर्म भिन्न होने के कारण मिलना-जुलना कम ही हो पाता है। सभा गोष्ठी में ही यदाकदा सरदारमलजी से भेंट होती है।

अपने उन्नत चरित्र के कारण सरदारमलजी का अपने अर्थ-समृद्ध जैन समाज पर इतना प्रभाव है कि बड़ी से बड़ी योजना, समाज की धन शक्ति के बलपर बात की बात में रूपायित कर लेते हैं। लोगों को इनके चरित्र और विवेक पर आस्था है कि शक्ति का विधायक दिशा में नियोजन करने की कला कांकरियाजी को सिद्ध है। हावड़ा अंचल में जैन विद्यालय का भव्य भवन इनके शिक्षा प्रेम, कर्म कुशलता का ताजा प्रमाण है। विद्यालय के उद्‌घाटन पर्व के अवसर पर कांकरियाजी ने एक विचार गोष्ठी आयोजित की थी जो न केवल उनकी विद्या-निष्ठा बल्कि जागरूक विवेक का परिचायक है। अपने मित्र श्री अभयसिंहजी सुराणा और श्री रेवतीलाल शाह के साथ मंत्रणा करके विचार गोष्ठी के लिए विषय तय किया था- "हिन्दी शिक्षा और कलकत्ता"। प्रो. कल्याणमल लोढ़ा और श्री सुभाष मुखोपाध्याय जैसे विशिष्ट व्यक्तियों के साथ मुझे उन्होंने वक्ता के रूप में आहूत किया था। और मेरी बातों ने उन्हें स्पर्श किया था यद्यपि व्यवसायी वर्ग के शिक्षा जगत सम्बन्धी अवदान को रेखांकित करते हुए मैंने वर्तमान स्थिति पर तीखा कटाक्ष किया था। बड़ी सदाशयता के साथ सरदारमल जी ने मेरी टिप्पण को लिया था। इसी व्याज से उनसे मेरा सम्पर्क बना और उनकी समाज विशिष्टता का आधार उनका व्यक्तित्व एक अंश तक समझ सका कि वाणिज्य व्यापार से घनिष्ठ रूप में जुड़े सरदारमल कांकरिया की जीवन चर्या समान रूप से लोककल्याण मूलक परिकल्पनाओं के प्रति सुमुख, सक्रिय रहती है। कांकरियाजी मुमुक्षु नहीं, गृहस्थ हैं और वह भी कुशल व्यवसायी जो अपने पैसे से कम मूल्यवान अपने समय को नहीं मानता। सामान्य व्यवसायी निजी प्रयोजन को ही वरीयता देकर कर्मचर्या विषयक कोई निर्णय लेता है, बचे समय को आमोद-प्रमोद में खर्च करता है, उसकी परिधि स्व-सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाती। कांकरियाजी दूसरी जाति के व्यवसायी हैं। ऐसे कृति पुरुष जो पूरी जागरूकता-दक्षता से व्यवसाय भी करते हैं और लोकसेवा की प्रेरणा से सदा स्फूर्त रहते हैं। यह लोक सम्पृक्त संवेदना ही कांकरियाजी को समाज विशिष्ट बनाती है।

समष्टि का सम्मान अर्जित करने की शर्त बड़ी कठोर है। न तो अर्थ शक्ति से, न रूप से और न विद्या उपाधि से इसे उपलब्ध किया जा सकता है। इसके लिए बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। अपने धवल आचरण और तपस्या द्वारा अपनी लोक हितैषिता का पुष्ट प्रमाण देकर ही समाज का विश्वास और सम्मान उपलब्ध किया जा सकता है। जैन समाज में विद्या विशिष्ट, पद विशिष्ट, अर्थ विशिष्ट और रूप विशिष्ट लोगों का अभाव नहीं है, किन्तु सरदारमल कांकरिया सबसे अलग और ऊंचे दिखाई पड़ते हैं महज अपनी चारित्रिक पूंजी के बल पर, उस जीवन चर्या के बल पर जो वृहत्तर समाज के मंगल पर केन्द्रित है। एक अनौपचारिक बैठक में एक दिन कांकरियाजी [illegible] कह रहे थे, महात्मागण कहते हैं कि मोह, माया, ममता दुःख का कारण है। [illegible] जैन। पर बात गलत लगती है। मोह, माया, ममता न हो तो आदमी [illegible] से [illegible] और शायद वह आदमी होने [illegible] [illegible]

की है, जिसकी विद्या-सम्पदा बहुत क्षीण है और जो विद्या व्यापार का यशस्वी उद्योक्ता है। यह सम्वेदना आश्वस्त करती है कि ढहते-ढहते भी मानव समाज में मत्स्य न्याय का प्रभुत्व नहीं स्थापित हो सकता। पूरी शक्तिमता से मानवीय सम्वेदना-ऊष्मा उस अशुभ शक्ति का प्रतिरोध करेगी जो मानुष-सत्य को लील जाने को उद्यत है।

भावना के आग्रह ने ही सरदारमलजी को समाज संसक्त बनाया। मगर मैंने सुना है कांकरियाजी सामाजिक कार्य व्यापार के विषय में, शिक्षण संस्थान के विषय में कोई भी निर्णय भावना और संस्तुति के दवाव से नहीं, व्यावहारिक विवेक से लेते हैं। औचित्य का पक्षधर प्रयोजन-सजग समाज में लोकप्रिय नहीं हो पाता। अस्वाभाविक नहीं उनका असंतोष, जिनकी संस्तुति को कांकरियाजी के विवेक ने अस्वीकार कर दिया होगा और ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं होगी, तथापि समाज उनकी जीवन-साधना को सम्मान देने का आयोजन कर रहा है तो स्पष्ट है कि समाज विवेक-अनुशासित कार्य-व्यापार और प्रज्ञा-प्रसूत निर्णय को ही विधायक मानता है। भावना और विवेक का संतुलन जव कमजोर हो जाता है तभी लोक मांगल्य क्षत होता है। इस विन्दु पर सरदारमलजी सजग हैं। कदाचित तभी वे समाज सम्मान्य हैं और मेरा अनुमान है कांकरियाजी इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर भी सजग हैं कि विद्या प्रतिष्ठान से जुड़े अधिकारी में प्रशासक की मानसिकता नहीं होनी चाहिए। अध्यापकों की चर्या में अनावश्यक हस्तक्षेप उनकी रचनात्मक ऊर्जा को क्षत कर करता है। बड़ी भूमिका के लिए उदारता अनिवार्य शर्त है जिनमें उदारता थी वे ही बड़ी भूमिका में कृतकार्य हुए।

सामान्य प्रवाह यही है कि 'घर का जोगी जोगड़ा' मान लिया जाता है। समाज के मंगल के लिए यह बड़ी बात है कि आंगन के देवता को हम समय से पहचान लें। गुण के सम्वर्द्धन और प्रसार के लिए जरूरी है कि हम गुणी व्यक्ति का सम्मान करना सीखें। सरदारमलजी कांकरिया गुण का सम्मान करना जानते हैं। और कांकरियाजी का अभिनन्दन गुणज्ञ और गुणसम्पन्न व्यक्ति का अभिनन्दन है जो समाज के मंगल के लिए सम्भावनापूर्ण।

– डॉ. कृष्णविहारी मिश्र

श्री सरदारमल सा. कांकरिया से मेरा परिचय करीव ४० वर्षो से है। वे उस समय अत्यधिक तेज-तर्राट नवयुवक थे। संक्षिप्त में मैं यदि कहूं तो यह राजस्थानी मुहावरा, 'भरी जवानी पीसौ पल्ले, राम चलावे तो सीधी चल्ले' उन पर अक्षरश: चरितार्थ होता था।

दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व हमलोग पारिवारिक सम्वन्ध से भी जुड़े एवं उनका और मेरा पारस्परिक सम्बन्ध एक मित्र जैसा है। एक भाई जैसा है। प्रति सप्ताह में यदि दो-चार बार आपस में मिलना या बातचीत करना नहीं हुआ तो बड़ा अटपटा-सा लगता है।

हम दोनों के जीवन का एक पड़ाव ऐसे धर्मान्धता के युग से गुजरा जव हम दोनों तीन और छ: थे। श्री कांकरियाजी साधुमार्गी जैन संघ के कट्टर व प्रवल समर्थक थे। उसके मंत्री भी रहे। मैं एक सतपीढ़िया कट्टर तेरापंथी था एवं आचार्य श्री तुलसी का अनन्य भक्त। आचार्य तुलसी की अग्नि परीक्षा पुस्तक को लेकर चुरू में भयानक उन्माद, झगड़ा व झंझट हुआ। उस समय तेरापंथ श्रावक समुदाय का नेतृत्व भी मैने ही किया। कहने का तात्पर्य यह कि हम दोनों जैन थे, किन्तु मनों में एक दूसरे के प्रति घृणा लिये हुए। अपनी-अपनी धार्मिक दुकानों की साज सम्भाल में लगे एक-दूसरे पर कटाक्ष एवं निन्दा कर प्रसन्नता का अनुभव करने वाले किन्तु ऊपर से ऐसे मानो हम देवता हों, एक प्राण हों। आज हम दोनों को अपनी ढलती उम्र में ऐसा महसूस होता है कि धर्म अच्छा है पर धर्मान्धता बुरी है। यह एक दुखद विषय है कि भगवान महावीर के अनुयायी एक-दूसरे के नाम पर बुरा-भला कहते हैं, मामला-मुकदमा लड़ते हैं एवं व्यक्ति या समुदाय विशेष को नीचा दिखाने में गौरव का अनुभव करते हैं।

श्री सरदारमलजी में अनेक विशेषताएं हैं। वे समय के बड़े पावन्द हैं। जिस कार्य में संलग्न हो जाते हैं प्राणपण से पूरा करने में लीन रहते हैं। न दिन देखते हैं न रात। हाल ही में हावड़ा में श्री जैन विद्यालय भवन का निर्माण एवं उसका प्रारम्भ होना इसका एक जीवन्त उदाहरण है। उनके साथी भी ऐसे हैं जो उन्हें सहयोग करने में कोई कसर नहीं रखते और यही कारण है कि उनकी सफलता का।

श्री कांकरियाजी की यह विशेषता रही है कि वे जिन्हें चाहते हैं उन्हें साथ लेकर चलते हैं। उनका सुख-दुःख इनका अपना हो जाता है। कोई भी छलांग या यों कहूं कोई भी ऊंचाई वे अपने सहयोगियों या अपने चहेतों के नाम मढ़ स्वयं अनजान बने रहते हैं। स्वार्थ या महत्वाकांक्षा इनके लम्बे कद को कभी छोटा नहीं कर पाई।

व्यावसायिक रूप में फिल्म लाइन के ये पुराने और यों कहूं तो पूर्वी भारत के सबसे बड़े खिलाड़ी हैं, किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि फिल्मी दुनिया की ताम-झाम में रहते हुए भी ये मदिरा आदि दुर्व्यसनों एवं तत्सम्बन्धी बीमारियों से अछूते के अछूते रह गये हैं। उन्हें किसी की निन्दा करते नहीं सुना। यदि कोई किसी की निन्दा करता भी है तो ये दूसरी बात करने लग जायेंगे। यदि कोई इनकी निन्दा करता है या नाराज है तो वे उसके पास या उसके घर जाकर खमत खामणा करने में अपने को नीचा नहीं समझते। जैनत्व का यह सबसे बड़ा लक्षण है—

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे,
मित्ति मे सव्व भुएसु, वेरं मज्झं न केणई।

अपनी सहजता में अपनी गम्भीरता को छिपाने की इनमें अद्भुत क्षमता है, कुछ कर गुजरने की तमन्ना है। हावड़ा में बने जैन विद्यालय के पश्चात् हावड़ा में जैन अस्पताल बनाने हेतु प्रयत्न कर रहे हैं, यदि प्रभु कृपा हुई तो वे इस कार्य में अवश्य सफल होंगे।

श्री स्थानकवासी जैन सभा श्री सरदारमलजी सा. कांकरिया का अभिनन्दन कर रही है, यह प्रसन्नता का विषय है, किन्तु श्री सरदारमलजी सा. के लिए यह लटकती दुधारी तलवार है। वे अभिनन्दित हों पर अभिवादन में न फंसे बल्कि एक कार्यकर्ता बने रहें, दीर्घायु हों और समाज-सेवा के क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान स्थापित करें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

– अभयसिंह सुराणा, कलकत्ता

अन्धकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है
मुर्दा है वह देश, जहां साहित्य नहीं है।

स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उक्त पंक्तियों को अक्सर याद किया जाता रहा है। न मालूम हममें से कितने व्यक्ति इन पंक्तियों को दुहरा कर साहित्य सृजन अथवा शिक्षार्जन के क्षेत्र में अग्रसर हो चुके हैं और कितनों की साधना निरन्तर चल रही है। मेरी मान्यता है कि साहित्य सृजन, शिक्षार्जन और सेवा ये तीनों हमारे जीवन में [illegible] की उपलब्धि के ऐसे साधन हैं जिन पर चलकर हम आत्मानन्द तक भी सफर तय कर सकते हैं। जिस प्रकार साहित्य सृजन भी [illegible] स्वतः [illegible] का हेतु है उसी प्रकार शिक्षार्जन भी [illegible] के साथ [illegible] पहुंचने का सेतु है। [illegible] साहित्य का और सेवा का [illegible] कर सकते हैं।

[illegible]

उन्होंने अपने आपको देखा है, समाज को जाना है और यह माना है कि इसको निरन्तर जलाये ाकर वहुत कुछ किया जा सकता है। और वे वहुत कुछ कर रहे हैं। समाज की भावी पीढ़ी शिक्षा का प्रकाश भर रहे हैं। वड़ावाजार अंचल में अवस्थित श्री जैन विद्यालय से अनेक वर्षो जुड़े हुए हैं और आन्तरिकता से जुड़े हुए हैं कि सब कुछ बड़ी सहजता से चल रहा है। शिक्षकगण र्तव्यनिष्ठ हैं, छात्र वर्ग अनुशासित और शिष्ट है। अन्यान्य स्कूल कालेजों की तरह यहां पर प्रथम झमेलावाजी होती ही नहीं है और कभी कभार अगर होती भी है तो उसे सहजता से समाप्त र दिया जाता है और इस सबके पीछे रहता है सरदारमलजी का सरल नेतृत्व, अपनत्वपूर्ण व्यवहार। कूल के छात्र मनोयोगपूर्वक पढ़ रहे हैं। श्री सरदारमलजी आगे बढ़ रहे हैं चतुर्दिक दृष्टि फैलाये ए।

उनका दृष्टि विस्तार ही हवड़ा में जैन विद्यालय की द्वितीय शाखा का सृजक है। उनकी अथक मशीलता, शालीनता और साथी कार्यकर्त्ताओं के साथ स्नेह व्यवहार उनका सहायक है। एक र्ष की अल्प अवधि में एक स्कूल भवन का निर्माण इनकी तत्परता का प्रतीक है। आठवीं क्लास क ही शिक्षा योजना से संचालित इस स्कूल का यह द्वितीय वर्ष है। नवमी क्लास चालू करने ी योजना बन गई है, यह उपलब्धि भी अपने आपमें कम नहीं है।

यह माना कि इनके सभी साथी कार्यकर्त्ता परम उत्साही हैं परन्तु उनके उत्साह को वरावर बनाये खना, सबको स्नेह देना और सबका प्यार पाना जिस क्षमता शीलता की कामना करता है उस ामना की कसौटी पर खरा उतरना कांकरियाजी जैसे सदय हृदय व्यक्ति से ही अपेक्षित और सम्भव ै।

अपने साथी कार्यकर्त्ताओं के साथ ये अत्यन्त प्रसन्न मन से एक अविच्छिन्न तालमेल बनाये ए हैं, बनाये हुए चलते रहेंगे इसी मनोकामना के साथ मैं श्री सरदारमलजी की दीर्घायु की कामना रता हुआ अपना यह निवन्ध निम्नस्थ काव्याभिव्यक्ति के साथ समाप्त कर रहा हूं—

फूल हंसे कलियां वसे
लसे वसन्त बहार।
असरदार कर्तृत्व से
सजे रहें "सरदार"।

- **श्री चन्द नाहटा**, कलकत्ता

हर व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे महानुभाव आते हैं कि उन्हें वह जीवन पर्यन्त भुला नहीं ता है। ऐसे व्यक्ति सामने वाले की जिन्दगी में अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं। ऐसी ही अमिट ाप कांकरियाजी ने मेरी जिन्दगी में छोड़ी है। कांकरियाजी के सम्पर्क में आने से पूर्व मैं जिन्दगी ी आपाधापी में ही व्यस्त था। संघ और समाज के प्रति अपने दायित्वों से मैं विमुख प्रायः ही ा। कांकरियाजी ने ही मुझे संघ-सेवा से जोड़ा और तब से ही मेरे जीवन की दिशा ही परिवर्तित ा गई। संघ सेवा से जुड़ने के बाद ही मैं अपने जीवन में कुछ कर पाया हूं। श्री कांकरियाजी ा यह उपकार मैं जीवन पर्यन्त भुला नहीं सकता हूं। श्रीमान कांकरियाजी की पूज्य गुरुदेव के ति जो निष्ठा है वह सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

जहां कांकरियाजी पूज्य गुरुदेव नानालालजी म. सा. की सेवा में समर्पित हैं वहीं संघ की विभिन्न तिविधियों यथा *सुरेन्द्रकुमार सांड शिक्षा सोसायटी, गणेश जैन छात्रावास* आदि विभिन्न कार्यों में न-मन-धन से अपना विशेष योगदान दे रहे हैं। अलावा इसके कलकत्ता में जैन विद्यालय की थापना में इनका अविस्मरणीय योगदान रहा है। हाल ही में इसी विद्यालय की हावड़ा में एक

और शाखा खोली गई है उसके लिए करीब एक करोड़ रुपया इकट्ठा किया गया है जो कि कांकरियाजी के सुप्रयत्नों से ही सम्भव हो सका है।

व्यावसायिक क्षेत्र में भी आप दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति कर रहे हैं। हम सभी के लिए, पूरे जैन समाज के लिए आप गौरव हैं। मेरी ख्वाहिश है कि आप शतायु होकर समाज को सदैव मार्गदर्शन प्रदान करते रहें। मैं इस सुअवसर पर आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं।

- दीपचन्द भूरा, देशनोक

श्री सरदारमलजी कांकरिया निःसन्देह अभिनन्दन योग्य समाजसेवी व कार्यकर्ता हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इनकी विशेष रुचि है एवं इन्हीं के अथक प्रयासों से श्री जैन विद्यालय आज कलकत्ता की अग्रणी शिक्षण संस्थाओं में आ गई तथा इन्हीं के प्रयास से हावड़ा में इस विद्यालय की शाखा खोली गई।

श्री कांकरियाजी से मेरा पारिवारिक सम्बन्ध है तथा विगत ४५ वर्षों से इनके साथ रहने का अवसर मिला एवं आगे भी मिलेगा। आप शुरू से ही स्पष्टवादी विचारों के हैं एवं आपकी यह विशेषता रही है कि चाहे कोई भी व्यक्ति रिश्तेदार ही क्यों न हो यदि वह भी कोई गलत काम करता है तो आप उसका विरोध करते हैं एवं उसके समाधन की चेष्टा करते हैं और अपना समय देते हैं।

मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि जिस तरह से इन्होंने अपना दायित्व अभी तक निभाया है उसी तरह आगे भी निभाते रहें। मेरी शुभकामना हमेशा इनके साथ है और रहेगी। इनके यशस्वी जीवन की ईश्वर से प्रार्थना करता हूं।

- छत्तरसिंह बैद, कलकत्ता

"व्यक्ति समाज का ऋणी है यह कथन अक्षरशः सत्य है। मगर कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि समाज व्यक्ति का ऋणी हो जाता है। ऐसे व्यक्ति विरले ही पैदा होते हैं। इन्हीं व्यक्तियों में से एक हैं श्री सरदारमलजी कांकरिया। मुझे गर्व है ऐसे व्यक्ति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने का। सरल हृदय, उदार व्यक्तित्व वाले श्री कांकरियाजी अपने साथियों, सहयोगियों एवं कार्यकर्ताओं के साथ घुल-मिलकर काम करने के अभ्यस्त हैं। जो कोई काम अपने हाथ में लेते हैं उसे निर्विघ्न पूर्ण करके ही छोड़ते हैं। अदम्य साहस, कुशल नेतृत्व और अद्भुत कार्यक्षमता इनके व्यक्तित्व में चार चांद लगा देती है।

जब कभी कोई विषम परिस्थिति हम लोगों के सामने आती है तब हम लोग समाधान हेतु इनके पास आते हैं। कांकरियाजी बिना किसी परेशानी के समस्याओं का [illegible] हल ढूंढ निकालते हैं। समाज के मध्यमवर्गीय और निम्न आय वाले व्यक्तियों के दर्द में भी यह [illegible] होते हैं। श्री जैन भोजनालय की स्थापना और इसके उत्थान में श्री कांकरियाजी का अभूतपूर्व योगदान रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में तो इन्होंने अपना जीवन ही पूर्ण समर्पित कर दिया है। [illegible] से श्री जैन विद्यालय, श्री जैन शिल्प शिक्षा केन्द्र और हावड़ा में श्री जैन विद्यालय [illegible] प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है।

[illegible] कार्य करने वाले श्री कांकरियाजी [illegible] है। [illegible] १०० [illegible] और श्री जैन [illegible] है।

में उन्होंने अपने आपको देखा है, समाज को जाना है और यह माना है कि इसको निरन्तर जलाये रखकर बहुत कुछ किया जा सकता है। और वे बहुत कुछ कर रहे हैं। समाज की भावी पीढ़ी में शिक्षा का प्रकाश भर रहे हैं। बड़ाबाजार अंचल में अवस्थित श्री जैन विद्यालय से अनेक वर्षों से जुड़े हुए हैं और आन्तरिकता से जुड़े हुए हैं कि सब कुछ बड़ी सहजता से चल रहा है। शिक्षकगण कर्त्तव्यनिष्ठ हैं, छात्र वर्ग अनुशासित और शिष्ट है। अन्यान्य स्कूल कालेजों की तरह यहां पर प्रथम तो झमेलाबाजी होती ही नहीं है और कभी कभार अगर होती भी है तो उसे सहजता से समाप्त कर दिया जाता है और इस सबके पीछे रहता है सरदारमलजी का सरल नेतृत्व, अपनत्वपूर्ण व्यवहार। स्कूल के छात्र मनोयोगपूर्वक पढ़ रहे हैं। श्री सरदारमलजी आगे बढ़ रहे हैं चतुर्दिक दृष्टि फैलाये हुए।

उनका दृष्टि विस्तार ही हवड़ा में जैन विद्यालय की द्वितीय शाखा का सृजक है। उनकी अथक श्रमशीलता, शालीनता और साथी कार्यकर्त्ताओं के साथ स्नेह व्यवहार उनका सहायक है। एक वर्ष की अल्प अवधि में एक स्कूल भवन का निर्माण इनकी तत्परता का प्रतीक है। आठवीं क्लास तक ही शिक्षा योजना से संचालित इस स्कूल का यह द्वितीय वर्ष है। नवमी क्लास चालू करने की योजना बन गई है, यह उपलब्धि भी अपने आपमें कम नहीं है।

यह माना कि इनके सभी साथी कार्यकर्त्ता परम उत्साही हैं परन्तु उनके उत्साह को बराबर बनाये रखना, सबको स्नेह देना और सबका प्यार पाना जिस क्षमता शीलता की कामना करता है उस कामना की कसौटी पर खरा उतरना कांकरियाजी जैसे सदय हृदय व्यक्ति से ही अपेक्षित और सम्भव था।

अपने साथी कार्यकर्त्ताओं के साथ ये अत्यन्त प्रसन्न मन से एक अविच्छिन्न तालमेल बनाये हुए हैं, बनाये हुए चलते रहेंगे इसी मनोकामना के साथ मैं श्री सरदारमलजी की दीर्घायु की कामना करता हुआ अपना यह निबन्ध निम्नस्थ काव्याभिव्यक्ति के साथ समाप्त कर रहा हूं—

फूल हंसे कलियां बसे
लसे बसन्त बहार।
असरदार कर्तृत्व से
सजे रहें "सरदार"।

- श्री चन्द नाहटा, कलकत्ता

हर व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे महानुभाव आते हैं कि उन्हें वह जीवन पर्यन्त भुला नहीं पाता है। ऐसे व्यक्ति सामने वाले की जिन्दगी में अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं। ऐसी ही अमिट छाप कांकरियाजी ने मेरी जिन्दगी में छोड़ी है। कांकरियाजी के सम्पर्क में आने से पूर्व मैं जिन्दगी की आपाधापी में ही व्यस्त था। संघ और समाज के प्रति अपने दायित्वों से मैं विमुख प्रायः ही था। कांकरियाजी ने ही मुझे संघ-सेवा से जोड़ा और तब से ही मेरे जीवन की दिशा ही परिवर्तित हो गई। संघ सेवा से जुड़ने के बाद ही मैं अपने जीवन में कुछ कर पाया हूं। श्री कांकरियाजी का यह उपकार मैं जीवन पर्यन्त भुला नहीं सकता हूं। श्रीमान कांकरियाजी की पूज्य गुरुदेव के प्रति जो निष्ठा है वह सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

जहां कांकरियाजी पूज्य गुरुदेव नानालालजी म. सा. की सेवा में समर्पित हैं वहीं संघ की विभिन्न गतिविधियों यथा सुरेन्द्रकुमार सांड शिक्षा सोसायटी, गणेश जैन छात्रावास आदि विभिन्न कार्यों में तन-मन-धन से अपना विशेष योगदान दे रहे हैं। अलावा इसके कलकत्ता में जैन विद्यालय की स्थापना में इनका अविस्मरणीय योगदान रहा है। हाल ही में इसी विद्यालय की हावड़ा में एक

और शाखा खोली गई है उसके लिए करीब एक करोड़ रुपया इकट्ठा किया गया है जो कि कांकरियाजी के सुप्रयत्नों से ही सम्भव हो सका है।

व्यावसायिक क्षेत्र में भी आप दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति कर रहे हैं। हम सभी के लिए, पूरे जैन समाज के लिए आप गौरव हैं। मेरी ख्वाहिश है कि आप शतायु होकर समाज को सदैव मार्गदर्शन प्रदान करते रहें। मैं इस सुअवसर पर आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं।

– दीपचन्द भूरा, देशनाक

श्री सरदारमलजी कांकरिया नि:सन्देह अभिनन्दन योग्य समाजसेवी व कार्यकर्त्ता हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इनकी विशेष रुचि है एवं इन्हीं के अथक प्रयासों से श्री जैन विद्यालय आज कलकत्ता की अग्रणी शिक्षण संस्थाओं में आ गई तथा इन्हीं के प्रयास से हावड़ा में इस विद्यालय की शाखा खोली गई।

श्री कांकरियाजी से मेरा पारिवारिक सम्बन्ध है तथा विगत ४५ वर्षों से इनके साथ रहने का अवसर मिला एवं आगे भी मिलेगा। आप शुरू से ही स्पष्टवादी विचारों के हैं एवं आपकी यह विशेषता रही है कि चाहे कोई भी व्यक्ति रिश्तेदार ही क्यों न हो यदि वह भी कोई गलत काम करता है तो आप उसका विरोध करते हैं एवं उसके समाधन की चेष्टा करते हैं और अपना समय देते हैं।

मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि जिस तरह से इन्होंने अपना दायित्व अभी तक निभाया है उसी तरह आगे भी निभाते रहें। मेरी शुभकामना हमेशा इनके साथ है और रहेगी। इनके यशस्वी जीवन की ईश्वर से प्रार्थना करता हूं।

– छत्तरसिंह वैद, कलकत्ता

"व्यक्ति समाज का ऋणी है यह कथन अक्षरश: सत्य है। मगर कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि समाज व्यक्ति का ऋणी हो जाता है। ऐसे व्यक्ति विरले ही पैदा होते हैं। इन्हीं व्यक्तियों में से एक हैं श्री सरदारमलजी कांकरिया। मुझे गर्व है ऐसे व्यक्ति के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर काम करने का। सरल हृदय, उदार व्यक्तित्व वाले श्री कांकरियाजी अपने सहयोगी बंधुओं एवं कार्यकर्त्ताओं के साथ घुल-मिलकर काम करने के अभ्यस्त हैं। जो कोई काम अपने हाथ में लेते हैं उसे निर्विघ्न पूर्ण करके ही छोड़ते हैं। अदम्य साहस कुशल नेतृत्व और अद्‌भुत कार्यक्षमता इनके व्यक्तित्व में चार चांद लगा देती है।

जब कभी कोई विषम परिस्थिति हम लोगों के सामने आती है तब हम लोग समाधान हेतु इनके पास आते हैं। कांकरियाजी बिना किसी परेशानी के समस्याओं का तत्काल हल ढूंढ निकालते हैं। समाज के मध्यमवर्गीय और निम्न आय वाले व्यक्तियों के बारे में भी यह हमेशा सोचते रहते हैं। श्री जैन भोजनालय की स्थापना और इसके उन्नयन में श्री कांकरियाजी का अभूतपूर्व योगदान रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में तो इन्होंने अपना जीवन ही पूर्ण समर्पित कर दिया है। कलकत्ता महानगर में श्री जैन विद्यालय, श्री जैन शिल्प शिक्षा केन्द्र और हवड़ा में श्री जैन विद्यालय आपके शिक्षा प्रेम का उत्कट प्रमाण है।

हमेशा मधुर मुस्कान युक्त प्रेमपूर्वक कार्य करने वाले श्री कांकरियाजी निश्चय ही प्रणम्य हैं, धन्य हैं। इनके गुणों में अविरल वृद्धि हो और ये समाज को और भी लाभ पहुंचायें। इनकी भावी योजनाओं में १०० शय्यायुक्त अस्पताल और श्री जैन विकलांग केन्द्र का शीघ्र निर्माण है।

अपूर्व कार्यक्षमता, विनम्र व्यक्तित्व और कुशल प्रबन्धक्षमता युक्त श्री कांकरियाजी समाज के गौरव हैं। मेरी भगवान से प्रार्थना है कि शतायु हों और इनकी सेवाओं का लाभ समाज को निरन्तर मिलता रहे। जिस प्रकार फूल की पहचान उसके सुगन्ध से है उसी प्रकार मनुष्य की पहचान उसके गुणों से है। कांकरियाजी का अभिनन्दन उनके गुणों का ही अभिनन्दन है।

- पारसमल भूरट, कलकत्ता

श्री कांकरियाजी को मैं अपने विद्यार्थी जीवन से ही जानता हूं। उस समय वे विद्यालय में प्रगति पत्र (प्रोग्रेस रिपोर्ट) वितरण हेतु आते थे। विद्यालय का चाहे वार्षिकोत्सव हो या अन्य कोई भी सांस्कृतिक कार्यक्रम, उसकी सफलता हेतु ये स्वयं छात्रों एवं अध्यापकों के साथ उसमें जुट जाते थे। उस समय उनका यह कहना कि चाहे कार्यक्रम छोटा हो या बड़ा उसकी प्रस्तुति सबके सामने अच्छी हो इसके लिए प्रयास और बार-बार अभ्यास कर लेना चाहिए। एक छोटे पौधे के रूप में स्थापित विद्यालय कम अवधि में ही इतना विराट रूप ले लेगा, यह संस्थापकों की कल्पना से भी परे था। स्थानाभाव की समस्या इसका प्रमाण है। छात्रों, शिक्षकों और कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहित कर, उनमें सामंजस्य स्थापित कर श्री कांकरियाजी ने विद्यालय की गरिमा में श्रीवृद्धि की है।

सन् १९७६ में मैं उनके कार्यालय में इंटरव्यू हेतु गया। ऐसा लगा जैसे उन्होंने देखते ही इंटरव्यू ले लिया हो और पश्चिम बंग उच्चशिक्षा पर्षद द्वारा प्रेषित एक पत्र का उत्तर लिखकर दिखाने के लिए कहा। १५-२० मिनट बाद उनके चेम्बर में मैं उत्तर के साथ घुसा और उन्होंने कहा आज से ही काम शुरू कर दो। इसे टाइप कराकर मुझसे साइन करा कर काउन्सिल भेज दो। ऐसा लगा, इनकी कार्य करने की प्रणाली औरों से भिन्न है। इसके पहले भी मैं दो एक वर्ष एक संस्था में कार्य कर चुका था जहां एक से बढ़कर एक सरस्वती, लक्ष्मी पुत्र सदस्य थे। उनकी कार्यशैली एवं कार्यक्षमता भी हमने देखी थी। किसी एक कार्य को करने में तीन चार दिन लग जांय निर्णय के अभाव में। श्रद्धेय कांकरियाजी के अन्तर्गत कार्य करने में सबसे बड़ी जो उपलब्धि है वह है शीघ्र कार्य सम्पादन की। ये द्रुतगति से खुद कार्य करने के अभ्यस्त हैं और दूसरों से यही चाहते हैं।

इनका जीवन खुली पुस्तक के समान है। कोई दुराव-छिपाव नहीं। कुशल नेतृत्व और अद्भुत कार्यक्षमता इनको ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। प्रशासक जन्म लेता है, व बनाया नहीं जाता है, यह उक्ति अक्षरश: सत्य है।

आपने व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र में तो विशेष कार्य किया ही है, नई टेक्नोलोजी और कम्प्यूटराइजेशन में भी आपकी काफी रुचि है। समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना आपकी विशेषता है। आपने अपनी युवावस्था से ही शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और उनके विकास का दायित्व लिया। कलकत्ता महानगर में ही नहीं अपनी जन्मभूमि गोगोलाव, उदयपुर और अन्यान्य स्थानों पर विद्यालयों, छात्रावासों की स्थापना करना और उनके विकास में निरन्तर सचेष्ट रहना आपकी दिनचर्या है। शिक्षा के विकास हेतु तथा विचारों के आदान-प्रदान हेतु विद्वत गोष्ठियों के आयोजन में भी आपकी गहरी रुचि है। ये कार्य आप स्वान्त: सुखाय करते हैं। अल्प आय और मध्यम वर्गीय लोगों के बारे में भी आप सतत सोचते रहते हैं, उनकी शिक्षा एवं उनके स्वास्थ्य हेतु अस्पताल की स्थापना की योजना तथा उनके उच्च शिक्षण हेतु कांकरिया चैरिटेबल ट्रस्ट से योगदान देना आपकी उदारता और मानवीय संवेदना का परिचायक है।

कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहन, किसी भी परिस्थिति में सम रहना और अपने को परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेना, कार्य को सम्पादित करने हेतु दिशा और मार्गनिर्देश देना, विवाद का सही

निर्णय देना, शिक्षकों, विद्वानों, कर्मठ कार्यकर्त्ताओं चाहे वह किसी उम्र का हो, किसी संस्था से सम्बन्धित हो, किसी जाति का हो, को सम्मान देना तथा उन्हें निष्काम सेवा के लिए प्रोत्साहित करना, सभी की समस्याओं को ध्यान से सुनना और उसका उचित हल निकालना, पारिवारिक प्रेम को बढ़ाना आदि अनेकों ऐसे गुण हैं, जो इनके साथ कार्य करने हेतु प्रेरित करते हैं। विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के सप्ताह व्यापी विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता श्री कांकरियाजी की कार्यक्षमता और संगठन कौशल का ही परिणाम है।

मैं इन्हें पिता तुल्य ही सम्मान देता हूं। मुझे यह याद नहीं आता कि कभी इनकी आज्ञा का उल्लंघन करना पड़ा हो वैसे इन्होंने स्वयंमेव कभी अनुचित आदेश दिये हों, फिर भी सामने सुधारने की और इस प्रक्रिया में आप किसी छोटे से छोटे कार्य करने से क्षमा याचना से नहीं चुकते और क्षमा वीरस्य भूषणम वाली उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

श्री जैन विद्यालय विद्यालय हवड़ा की स्थापना इनके दृढ़ लगन, अदम्य साहस, अद्भुत कार्यक्षमता कुशल नेतृत्व और समाज के सभी वर्गों में एकता का परिचायक है। समाज ऋणी हैं ऐसी महान् विभूति का जिनका नाम बार-बार हृदय पटल पर अंकित हो जाता है श्रद्धा के साथ और रोम-रोम यह प्रार्थना करने लगता है कि ईश्वर इन्हें स्वस्थ, कर्मयुक्त, शतायु बनाये और समाज इनका लाभ पाता रहे। इतिहास उन्हीं को याद करता है, जिनकी सेवायें अजर अमर और अक्षुण्ण होती हो।

आपकी यह समाज सेवा, प्रेम, आने वाली पीढ़ी में अजस्र स्रोत का कार्य करे, यही कामना है। मेरा उन्हें शत-शत बन्दन और नमन—

- राधेश्याम मिश्र, कलकत्ता

श्री सरदारमलजी कांकरिया ने शिक्षा के संदर्भ में अपनी सेवाएं अर्पित कीं, संस्कृति के गौरव के प्रति निष्ठावान रहे और समाज के प्रति अपनी कर्त्तव्यपरायणता को प्राथमिकता दी।

बौद्धिक एवं भावात्मक विकास में आपकी आस्था सदा रही है और यही दृष्टि इंगित देती है—

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योः मा अमृतं गमय

के पथका।

आज की युवापीढ़ी के लिये अनिवार्य है जागृति का यह दिशा बोध। श्री कांकरियाजी अभिलाषी हैं, ऐसी ही स्वस्थ-समाज-संरचना के। श्री सरदारमलजी स्वस्थ एवं शतायु हों, यही मेरी मंगल कामना है।

- राधा भालोटिया अध्यक्ष- विचार मंच

प्रेरणा-प्रोत्साहन के पुष्कल पुंज : श्री कांकरिया

- भूपराज जैन, कलकत्ता

प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी के गीत की पंक्ति है---

"और होंगे चरण हारे,

अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे॥"

वे व्यक्ति दूसरे हैं जो बाधाओं के सामने, शूलों के समक्ष अपने संकल्पों का परित्याग कर लौट जाते हैं। वे चरण जो लक्ष्य की ओर बढ़ चले हैं, कदापि रुकने वाले नहीं हैं, लौटने वाले नहीं हैं, निरन्तर आगे बढ़ने वाले हैं। ऐसे ही दृढ़ संकल्प एवं प्रबल पुरुषार्थ के धनी हैं श्री सरदारमल कांकरिया। जब लक्ष्य स्पष्ट है एवं निश्चित है तो फिर चलना ही है, बढ़ना ही है, निर्भिकता पूर्वक। उनका विश्वास है "चरैवेति, चरैवेति" चलते रहो, चलते रहो। अकेले भी हैं तब भी चलना है। यह चलना ही तो जीवन है। रुकने में, ठहरने में जीवन की सार्थकता नहीं है। कांकरियाजी की मान्यता है, "गति जीवन विश्राम मौत है"। यही गतिशीलता ही श्री कांकरिया के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य है।

कांकरियाजी से परिचय के मेरे सूत्र तीन दशक से भी अधिक के समय-फलक पर फैले हैं। मेरे लिए यह बड़ा कठिन है कि इस दीर्घ अवधि के किस सूत्र को पकड़कर उनसे परिचय की बात प्रारम्भ करूं। परिचय का वह साधारण क्षण कब घनिष्ठता में परिणित हो गया, यह कहना तो और भी कठिन है। पर जब-जब उनसे मिलना हुआ, उनके निष्कपट स्नेह, सौजन्य एवं सद्भाव ने मुझे सतत प्रभावित किया।

२८ जनवरी सन् १९२९ को राजस्थान की मरुधरा के एक छोटे से ग्राम गोगोलाव में जन्में श्री सरदारमल कांकरिया श्री किशनलालजी कांकरिया के कनिष्ठ पुत्र हैं। श्री सरदारमल बचपन से ही अदम्य साहसी, प्रबल आत्मविश्वासी एवं दृढ़ निश्चयी रहे हैं। इन्हीं गुणों ने उनमें नेतृत्व की उस क्षमता को विकसित किया जो व्यक्ति को सफलता के सोपान पर निरन्तर आरोहण कराती है। "यथा नाम तथा गुण" की उक्ति को शत-प्रतिशत चरितार्थ करता है श्री कांकरियाजी का जीवन। वस्तुतः वे सरदार हैं। सबको साथ लेकर चलने की अद्भुत क्षमता है उनमें।

लम्बी श्यामल देह यष्टि। आजानुप्रलम्ब बाहें और उपनयन से झांकते दो नयन। शान्त, स्निग्ध, करुण किन्तु अन्तःस्तल तक पहुंचने वाली तीक्ष्ण दृष्टि। विचारों के उदार, स्वभाव से सौम्य एवं मिलनसार हैं श्री कांकरियाजी। दम्भ और अहंकार तो उनसे कोसों दूर हैं। विनय उनका सहज गुण है और जिज्ञासा उनकी वृत्ति। इसी विनम्रता एवं जिज्ञासु वृत्ति ने विद्वानों में उन्हें आदरणीय बनाया है तो लोकप्रिय भी। विद्वानों के प्रति उनके मन में आदर है, श्रद्धा है और उनके यथोचित सम्मान के लिए वे सदैव सजग एवं सचेष्ट रहते हैं।

कर्मठता और सेवा उनके व्यक्तित्व के ऐसे अंग हैं जिनसे उन्हें पृथक नहीं किया जा सकता। वाणी के ओज ने उनके व्यक्तित्व को ऐसे ही निखारा है जैसे सोना आग में तपकर कुन्दन बनता है। बहता पानी निर्मला की तरह उनका जीवन अत्यन्त सरल, निष्कपट और निष्कलुष तथा दूसरों के प्रति सहज विश्वास करने वाला है, भले ही उन्हें धोखा क्यों न खाना पड़े "कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय" को ही जीवन सूत्र की तरह हृदयंगम किया है उन्होंने।

शिक्षा के साथ-साथ क्रीड़ा के प्रति उनका अनन्य एवं अदम्य अनुराग है। क्रिकेट, बैडमिन्टन एवं वालीवाल के प्रेमी कांकरियाजी कुशल तैराक हैं एवं इस भवसागर से अपनी जीवन नौका को

सफलतापूर्वक पार ले जाने में उनकी तैराकी का यह प्रावीण्य पूर्णतया सक्षम है। अनेक उच्च कोटि की शिक्षण संस्थाओं से न केवल वे घनिष्ठता पूर्वक जुड़े हैं अपितु उसके विकास तथा विस्तार के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। कार्यकर्त्ताओं एवं प्रतिभाओं को आगे लाकर सम्मानित करने के साथ-साथ उन्हें यथोचित स्थान दिलाने एवं प्रोत्साहित करने में वे सदैव सचेष्ट रहते हैं। "विचार मंच" के अनेक आयोजनों ने इस तथ्य को दिन के प्रकाश की तरह सहज उजागर कर दिया और उनको क्रान्तदर्शी विचारक के रूप में प्रतिष्ठित भी।

कठिन से कठिन क्षणों को अपनी विनोदप्रियता से सहज बनाने की अद्भुत कला है कांकरियाजी में। यही विनोदप्रियता उनके व्यक्तित्व को "मणि कांचनवत्" उद्भाषित करने में पूर्ण सक्षम है। शरीर की स्वस्थता न केवल मन को ही स्वस्थ बनाती है अपितु स्वस्थ विचारों की जनक भी है। श्री कांकरियाजी का दैनन्दिन जीवन इसका पुष्ट प्रमाण है और कथनी करनी की एकरूपता का प्रबल उदाहरण भी। स्थूल से सूक्ष्म, अनुदारता से उदारता तथा संकीर्ण पगडंडियों से प्रशस्त पथ की ओर गतिशील उनका जीवन क्रमिक विकास की एक रोचक कहानी समेटे है अपने में।

श्री जैन विद्यालय कलकत्ता यदि श्री कांकरियाजी के शिक्षानुराग का कीर्तिस्तम्भ है तो डेढ़ करोड़ की राशि से निर्धारित समय में नवनिर्मित श्री जैन विद्यालय, हवड़ा उनकी अप्रतिम कार्यक्षमता का ऐसा प्रकाश स्तम्भ है जो भावी पीढ़ी को सदैव प्रेरित एवं अनुप्राणित करता रहेगा। समग्र जैन एकता का मूर्तिमान रूप है वह तो अशेष अर्थ संग्रह के उनके नेपुण्य का प्रतीक भी। दीन-दुखी, पीड़ित, संत्रस्त तथा अभावग्रस्त की चिकित्सा के लिए एक सौ शय्याओं से युक्त एक आधुनिक चिकित्सालय के शीघ्र निर्माण का स्वप्न संजोये श्री कांकरियाजी के काल जयी कदम समय की शिला पर ऐसे चिन्ह अंकित करेंगे जो अमिट तो होंगे ही युवा पीढ़ी के लिए एक चुनौती भी।

निर्धारित कार्य के क्रियान्वयन में विलम्ब इनके लिए तब असह्य बन जाता है जब व्यक्ति हीले-हवाले करने लगता है। कई बार उनकी स्पष्टोक्ति भले ही कटुक्ति का रूप ले ले पर संदेह का घेरा कभी नहीं बनने देते। उस त्वरा के पीछे की सच्चाई से विदित होते ही सामने वाला फिर उनका अनुगामी या अनुरागी बनने में कोई विलम्ब नहीं लगाता।

पद और अधिकार लिप्सा से दूर दूसरों को पदाधिकारी बनाकर काम लेने का अनूठा कौशल सरदारमलजी के व्यक्तित्व का वह प्रभविष्णु रूप है जो उन्हें जल में रहकर कमलवत् निर्लिप्त एवं निस्पृही बनाता है।

जैन एकता के प्रबल पक्षधर, उदारचारितानां वसुधैव कुटुम्बकम् के आकांक्षी, तन-मन-धन से सर्वतोभावेन समर्पित, पैंसठवर्षीय श्री कांकरिया प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के पुष्कल पुंज है। आचार्य अमित गति के शब्द ही उनके जीवन का मूल मंत्र है :-

सत्वेषु, मैत्री, गुणीषु, प्रमोदम्
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वं।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव॥

अभिनन्दन की इस मंगल वेला में श्री कांकरियाजी को मेरे राशि-राशि अभिनन्दन। यावत्चन्द्र दिवाकरौ स्वस्थ रहते हुए समग्र समाज एवं राष्ट्र सेवा में अग्रणी रहें, यही कामना है।

श्री सरदारमल कांकरिया

विचार मंच के पुरस्कार वितरण समारोह में जोधपुर महाराजा श्री गजसिंह का स्वागत करते हुए

डॉ० प्रतापचन्द्र चन्दर के अभिनन्दन समारोह में मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति श्री मुकुलगोपाल मुखर्जी का स्वागत करते हुए

जीवन की डगर पर

सरदारमल कांकरिया एक दृष्टि में

जन्म	:	दि. २८ जनवरी, १९२९
जन्म स्थान	:	गोगोलाव, जिला नागौर (राजस्थान)
पिता	:	श्री किशनलाल कांकरिया
माता	:	श्रीमती जेठीदेवी कांकरिया
शिक्षा	:	माध्यमिक तक
विवाह	:	सन् १९४६ सत्रह वर्ष की आयु में चुरू में
पत्नी	:	श्रीमती फूलकुंवर कांकरिया
कलकत्ता आगमन	:	सन् १९४५
व्यवसाय	:	जूट, ऊन, फिल्म वितरण, रसायन उद्योग, भवन निर्माण आदि।
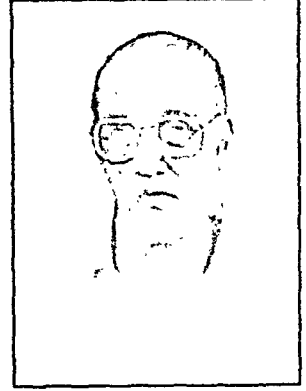
सार्वजनिक सेवा :

सन् १९५७ में श्री अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स के कार्यसमिति सदस्य लुधियाना बैठक में योगदान।

सन् १९५८ में श्री जैन विद्यालय के मंत्री। बीच में तीन वर्ष के अन्तराल से पुनः मंत्री एवं तब से निरन्तर-

सन् १९६३ में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना में योगदान, कोषाध्यक्ष के रूप में मनोनीत।

सन् १९५६ में आचार्य श्री गणेशीलालजी म० का गोगोलाव में चातुर्मास, गांव में रहकर चार मास तक धर्म सेवा का लाभ।

सन् १९७५ में महावीर के २५००वें परिनिर्वाण के उपलक्ष्य में श्री साधुमार्गी जैन संघ में श्रीमद् जवाहराचार्य व्याख्यान माला का शुभारम्भ।

इसी सन्दर्भ में संघ के तत्वावधान में मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में जैन दर्शन विभाग की स्थापना में योगदान।

इसी सन्दर्भ में भगवान महावीर पर विभिन्न लेखों से प्राप्त लेखों का हिन्दी एवं अंग्रेजी में ग्रन्थ रूप में प्रकाशन।

सन् १९५६ में सम्यक् ज्ञान मन्दिर नामक प्रकाशन संस्था की कलकत्ता में स्थापना, ८ पुस्तकों का प्रकाशन।

सन् १९७८ में श्री साधुमार्गी जैन संघ के मंत्री।

सन् १९७९ में संघ के तत्वावधान में अखिल भारतीय जैन विद्वत गोष्ठी का त्रय-दिवसीय सम्मेलन अजमेर में।

सन् १९८० में श्री भागचन्दजी रामपुरिया के सुपुत्र श्री प्रदीपकुमार के आकस्मिक देहावसान की स्मृति में श्री प्रदीपकुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार का संघ के तत्वावधान में प्रारम्भ।

श्री सुरेन्द्रकुमार सांड शिक्षा सोसायटी की स्थापना में योगदान।

सन् १९८१ में श्री जैन विद्यालय की [illegible] जयन्ती का अभूतपूर्व आयोजन। अति

भारतीय जैन पत्र-पत्रिकाओं की प्रदर्शनी एवं जैन विद्वानों, पत्रकारों एवं सम्पादकों का सम्मेलन।

सन् १९८६ में विचार मंच की स्थापना एवं मंत्री के रूप में मनोनयन, प्रतिवर्ष नवोदित कलाकारों का सम्मान।

श्री गणेश जैन छात्रावास, उदयपुर के संयोजक।

सन् १९८९ में श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा की हीरक जयन्ती के संयोजक एवं त्रिदिवसीय कार्यक्रमों का सफल आयोजन।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के ट्रस्टी।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के ट्रस्टी।

सन् १९८१ में उदयपुर साधुमार्गी जैन संघ के सहयोग से श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर के तत्वावधान में आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर की स्थापना में योगदान एवं महामंत्री के रूप में मनोनयन तव से निरन्तर महामंत्री- जैन आगमों पर शोध कार्य एवं ग्रन्थ प्रकाशन।

सन् १९९१ में हावड़ा में जैन विद्यालय के निर्माण का संकल्प, एक करोड़ की राशि का संग्रह एवं मई, १९९१ में निर्माण कार्य प्रारम्भ।

सन् १९९२ में विद्यालय में अध्ययन अध्यापन प्रारम्भ लगभग १८०० छात्र-छात्राओं को प्रवेश।

पूज्य पिताजी की स्मृति में नागौर में उच्च माध्यमिक विद्यालय एवं आयुर्वेदिक औषधालय की गोगोलाव में स्थापना।

गोगोलाव गांव में पेयजल की पूर्ति हेतु कुएं एवं तालाब का निर्माण।

पूज्य माताजी की स्मृति में विराटी कलकत्ता में मातृसेवा-सदन का निर्माण एवं नगरपालिका विराटी को समर्पित।

श्री जैन सभा के अध्यक्ष रूप में निर्वाचन।

अनेक संस्थाओं को मुक्त हस्त से दान।

कांकरिया चैरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना एवं इसके द्वारा प्रतिभा सम्पन्न जरूरतमन्द छात्र-छात्राओं को उच्च शिक्षा एवं शोध कार्य हेतु अनुदान।

नि:शुल्क नेत्रशल्य चिकित्सा एवं विकलांग शिविर के आयोजन में सहयोग। बुक बैंक के माध्यम से सन् १९९२ में जरूरतमंद छात्र-छात्राओं (५५७) को पाठ्यक्रम की पुस्तकों के नि:शुल्क वितरण में योगदान।

यात्राएं

समग्र भारत का अनेक बार सपत्नी भ्रमण, प्रतिवर्ष धर्मपाल क्षेत्र में सप्ताहव्यापी पदयात्रा में पत्नी सहित योगदान। सन् १९६५ में विदेश यात्रा- अनेक यूरोपीय देशों एवं अमेरिका का भ्रमण, सन् १९७० में जापान यात्रा।

रुचि - वालीबाल, बेडमिन्टन एवं क्रिकेट खेलना, प्रतिदिन एक घंटा तैरना।

जीवन की डगर पर

जहां तक मुझे याद पड़ता है नागौर के पास गोगोलाव नामक एक छोटा-सा गांव है, वहां दिनांक २८ जनवरी, १९२९ को मेरा जन्म हुआ। वहीं बचपन बीता एवं शिक्षा भी उसी गांव में हुई। गोगोलाव राजस्थान में बीकानेर से जोधपुर के रास्ते में नागोर से ८ किलोमीटर पहले आता है। करीबन १,००० की आबादी वाला यह गांव सम्पन्न गांवों की श्रेणी में आता है। आज से ६० वर्ष पहले का यह गांव बड़ा ही सीधा-सादा, सरल एवं मन-मौजी लोगों का था। गांव में त्योहारों की रौनक देखते ही बनती थी। होली हो या दीपावली, गवरजा हो या शीतला का त्योहार या नवरात्रि का, सारे त्योहार गांव के सभी आदमी मिल-जुल कर मनाते थे। गांव में सभी समाजों के व्यक्ति एक साथ मिलकर सभी गवाड़ों, मोहल्लों में शुभकामनाएं प्रकट करते जाते थे। सभी जातियों के व्यक्ति ओसवाल, ब्राह्मण, जाट, राजपूत, हरिजन, मुसलमान आदि सभी जगह जाते थे एवं उस गवाड़ के लोग इनका खूब सम्मान करते थे। इस तरह एक गवाड़ से दूसरी गवाड़ में आते-जाते सारे गांव में सबसे मिल आते थे। भाई-चारे, आपसी स्नेह-सद्भाव एवं मेल-जोल की इससे बढ़िया मिसाल और क्या हो सकती है।

गांव में होली के त्योहार से १५-२० दिन पूर्व ही होली का रंग डालना शुरू हो जाता था। रात्रि में गांव के सारे आदमी एक जगह एकत्रित होकर फागुन गाते थे। दिन में सभी ठीया दड़ी (क्रिकेट की तरह) एवं रात्रि में डंडीया दड़ी (हॉकी की तरह) का खेल बड़े उत्साह से खेलते थे। होली दहन के पश्चात दूसरे दिन सभी प्रमुख मोहल्लों में पानी के बड़े-बड़े बर्तन (कड़ाह) भर दिये जाते थे एवं गांव के सभी आदमी मिलकर एक-दूसरे पर पानी फेंकते थे। पिचकारी एवं डोली से रंग फेंकते तथा लगाते थे। ऐसा सुखद एवं प्रेममय वातावरण होता कि देखते ही बनता था। महीनों पहले ही होली का इन्तजार शुरू हो जाता था। दिन में एक जगह देवर भाभियां पानी के माध्यम से होली खेलकर अजीब समां बांध देती थीं, रात्रि में चंग की थाप पर फागुन के गीतों की अपनी अलग ही शान होती थी। सारा वातावरण रसमय हो जाता था एवं दर्शक भाव-विभोर होकर झूमने लग जाते थे।

दीपावली से ८-१० दिन पहले ही घरों में मुस्तैदी से सफाई का कार्य प्रारम्भ हो जाता एवं दीपावली से पूर्व ही घर आंगन झाड़-पूछकर, लीप-पुत कर लक्ष्मी के स्वागत में पलक-पांवड़े बिछाये प्रस्तुत हो जाते थे। रात्रि में धन तेरस से ही दिये जलाये जाने लगते। दीपावली के दिन तो रात में सारा गांव दियों की रोशनी में जगमगा उठता एवं अजीब सौन्दर्य से लकदक हो उठता था, जो कि बल्बों की रोशनी से कभी सम्भव नहीं है। घरों में इन त्योहारों पर विशेष मिठाइयां बनती थीं। इन दिनों में अपूर्व उत्साह रहता था एवं [illegible] का तो कहना ही क्या। सभी त्योहारों पर गांव में असीमित आनन्द की अनुभूति होती थी। धार्मिक मामलों में भी गोगोलाव के व्यक्ति अत्यन्त उदार एवं आदर्श थे। सभी धार्मिक कार्यों में बड़े प्रेम से मिल-जुल कर भाग लेते थे। जैन साधुओं के आगमन या अन्य सन्यासियों पर सारा गांव एकत्रित होकर धर्म प्रवचन और प्रभावना का लाभ उठाता था। सभी धर्मावलम्बी एक-दूसरे के धार्मिक कृत्यों में सहर्ष भाग लेते। परस्पर बधाई देते एवं अभिनन्दन करते।

मरुस्थली होने के कारण गांव में पानी की बहुत कमी रहती थी। तालाब का पानी ही पानी की आवश्यकता को पूरी करता था। पानी का खर्च इतना कम किया जाता था कि पानी का अभाव [illegible] नहीं था। [illegible] जीवन की इन मधुर यादों को स्मरण कर हृदय आज भी हरा-भरा हो उठता है।

हास्पीटल, डाक्टर या वैद्य कोई गांव में नहीं थे। बीमार होने पर देसी नुस्खों पर ही दवाई ली जाती थी। ज्यादा गम्भीर होने पर नागौर से वैद्यराज को बुलाकर लाते थे। [illegible] के वैद्यराज

भी आते। मात्र रु. ३/- फीस इन्हें मिलती। गाय बैलगाड़ी में इन्हें नागोर पहुंचाना पड़ता था। आबोहवा इतनी शुद्ध थी कि सभी बाल-युवा-वृद्ध स्त्री-पुरुष पूर्ण स्वस्थ एवं सुडौल होते थे।

गोगोलाव में ओसवालों के ६० घर उस वक्त थे। आपके परिवार सम्पन्न थे एवं आपकी मध्यम स्थिति के थे। बंगाल में जूट का व्यापार करते थे। ६ महीने गांव में रहते तथा ६ महीने जूट के मौसम में बंगाल में रहते। सभी के परिवार गांव में ही रहते थे। फुरसत के इन ६ महीनों में ओसवाल समाज के सभी पुरुष गांव में रहते थे, उस वक्त का माहौल अत्यन्त आकर्षक होता था। वे दोपहर में अलग-अलग ताश खेलते, शाम को तालाब पर घूमने जाते, रात्रि में मिलकर घंटों गप्पें मारा करते थे। शिक्षा की सुविधा नहीं होने से लोग ज्यादा पढ़ नहीं पाते थे, लेकिन देशी पाठशाला में जो गुरुजी थे, वे अपने ढंग से पढ़ाने में अत्यन्त माहिर थे। मात्र ३ वर्षों में लड़के को हिसाब-किताब एवं लेना-देना करने में कुशल बना देते थे। गणित की शिक्षा जबर्दस्त होती थी। लड़कों को कम्प्यूटर की तरह प्रवीण बना देते थे। ९ वर्ष की बाल्यावस्था में वहां पढ़-लिखकर लड़के बंगाल में व्यापार करने आ जाते तथा वे कुशल व्यापारी साबित होते थे। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा भी ऐसे गुरुजी (श्री पुसारामजी) के पास हुई। प्रसिद्ध बोथरा परिवार की ओर से गांव में एक स्कूल शुरू हुआ तो कांकरिया परिवार ने भी एक स्कूल प्रारम्भ करवा दिया आपस की कुछ गलतफहमियों के कारण। बोथरा स्कूल में उत्तर प्रदेश के श्री रमाशंकरजी तिवारी मास्टर थे। कांकरिया स्कूल में नागौर निवासी श्री झूमरलालजी हेडमास्टर थे। दोनों मास्टरजी १०वीं तक पढ़े थे, पर अत्यधिक मेहनती थे। इनके आने से गांव में शिक्षा का वातावरण शुरू हुआ। कांकरिया स्कूल में मैं तथा श्री मदनलालजी कांकरिया प्रथम वार ७वीं कक्षा की परीक्षा देने के लिये बीकानेर गये एवं अगले वर्ष ८वीं की परीक्षा देने जोधपुर गये तथा उत्तीर्ण हुए। आपसी गलतफहमी के दूर होने पर बोथरा व कांकरिया ने मिलकर तय किया तथा कांकरिया स्कूल बंद कर दिया गया।

गोगोलाव में उस वक्त एक औषधालय मेरे पिताजी द्वारा खोला गया था। अनुभवी युवा वैद्यराज आईदानजी की नियुक्ति की गई थी। वह औषधालय आज पिछले ४५ वर्ष से गोगोलाव गांव के वासियों की ही नहीं अपितु आसपास के २५ गांवों की सेवा कर रहा है। श्री आईदानजी आज राजस्थान के अनुभवी वैद्यों में अपना विशिष्ठ स्थान रखते हैं। इस बीच गोगोलाव में एक लाईब्रेरी की स्थापना भी की गई।

हमारे घर में एक मोटर भी खरीद ली गई थी। इस मोटर की बैटरी से रेडियो चलता था जो गोगालाव गांव में एक मात्र रेडियो था, इससे समाचार सुनने कई व्यक्ति हमारे गेस्ट हाउस में आते थे। उन्हीं दिनों गोगालाव गांव में एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण हुआ। कुछ वर्षों बाद स्कूल भवन, धर्म स्थानक तथा करनीदेवी का मन्दिर आदि निर्मित हुए।

मैं सन् १९४५ में गोगोलाव से कलकत्ता आ गया। अपने पुश्तैनी जूट के व्यवसाय के लिये बंगला देश में मैने कई जगह जाकर ६ महीना ट्रेनिंग ली। गाईबन्धा, गौरीपुर, नारायणगंज, दौलतपुर आदि स्थानों में रहकर, कलकत्ता में जूट व्यवसाय सीखने लगा। इस बीच सन् १९४६ में मेरा विवाह चुरू निवासी श्री जयचंदलालजी पारख की लड़की फूलकुमारी के साथ मात्र १७ वर्ष की अवस्था में हो गया था। शादी के थोड़े दिन बाद हम लोग सपरिवार कलकत्ता आकर रहने लगे। मैने जूट के साथ फिल्म वितरण का व्यवसाय सीखना शुरू किया। इस बीच वुलेन मिल बनाने का निश्चय किया गया और मुझे उसके संचालन का भार दिया गया।

वुलेन मील का कार्य शुरू किया ही था कि इस बीच मेरे पिताजी का गाईबन्धा से नारायणगंज (बंगलादेश) जाते हुए ट्रेन में खून हो गया। पिताजी की इस आकस्मिक मृत्यु से हमारे परिवार को काफी धक्का लगा। पिताजी काफी सुलझे हुए बुद्धिमान व्यवसायी थे। उनके निधन से सभी के मन में असमंजस की स्थिति बनी, किन्तु सभी ने हिम्मत करके कार्य शुरू किया। पिताजी की

मृत्यु के एक वर्ष बाद वुलेन मील भी चालू हो गई। भाई साहब श्री पारसमलजी के परामर्श से सारा कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। वुलेन मील में भी अच्छे ढंग से कार्य चलने लगा। हमारा व्यवसाय आहिस्ते-आहिस्ते बढ़ने लगा। उत्साहित होकर जोधपुर में भी एक और वुलेन मिल बनाई तथा वह भी सुचारु रूप से कार्य करने लगी। कलकत्ता में कुछ और जायदाद खरीदी गई तथा धर्मतल्ला में अपना मकान बनाया। कुछ समय पश्चात् बालीगंज क्वींस पार्क में सन् १९६७ में अपना नया मकान भी बना लिया। इसी अवधि में फिल्मी व्यवसाय भी प्रारम्भ किया। कलकत्ता स्थित बंगाल नेशनल टेक्सटाइल्स वुलेन मील की एक शाखा फरीदाबाद में भी स्थापित की गई। काफी समय तक उसमें भी ठीक ढंग से कार्य हुआ फिर मजदूर आन्दोलन के कारण मील में नुकसान होने लगा तो सन् १९८२ में मील बेच दी और कलकत्ता में भवन निर्माण का कार्यारम्भ किया तथा केमिकल की दो फैक्टरियां भी शुरू की।

सन् १९८७ में भाई साहब पारसमलजी का स्वर्गवास हो गया, उससे काफी बड़ा धक्का लगा, लेकिन सम्भलकर पुन: कार्य शुरू किया। भवन निर्माण का कार्य ठीक तरह चलने लगा। सम्प्रति भाई साहब के दो पुत्र सुभाष तथा विनोद, मेरे दो पुत्र मनोहर व ललित अच्छे ढंग से कार्य कर रहे हैं। पुत्रियां एवं पुत्रों की शादियां करके अपनी जिम्मेदारी से मैं काफी हल्का हो गया हूं।

सन् १९५६ ई० में आचार्य पूज्य श्री गनेशीलालजी म० सा० का हमारे गांव गोगोलाव में चातुर्मास तय हुआ। उस वक्त मुझे वहां करीबन ४ महीना पूज्य गुरुदेव की सेवा में रहने का मौका मिला तथा मन में समाज के लिये कार्य करने की इच्छा पैदा हुई। सन् १९२७ में ही श्री अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स की लुधियाना बैठक में भाग लेने का मौका मिला। वहां समाज के प्रमुख व्यक्तियों श्री विनयचन्द भाई जौहरी (कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष), श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, श्री मोहन मलजी चोरडिया, श्री कानमलजी नाहटा, श्री श्रीचन्दजी गोलछा, श्री जवाहरलालजी मुणोत, श्री आनन्दराजजी सुराणा (कान्फ्रेन्स के महामंत्री), श्री कन्हैयालालजी मालू, श्री भंवरलालजी श्रीश्रीमाल आदि से परिचय हुआ। मेरी सक्रियता तथा समाज सेवा में रुचि लेने के कारण एक साल बाद मुझे भी कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी में सम्मिलित कर लिया। कान्फ्रेन्स की कई बैठकों में भाग लेने के कारण समाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आने एवं उन्हें समझने का सुयोग तथा साधु समाज को बहुत नजदीक से देखने का अवसर भी मिला। श्रमण संघ का गठन सन् १९५२ ई. में हो चुका था। आचार्य श्री गनेशीलालजी म० सा० श्रमण संघ के उपाचार्य पद पर विराजमान थे।

गोगोलाव चातुर्मास के समय एक विशेष घटना घटित हुई। यह घटना चाली कांड के रूप में प्रसिद्ध हो गई। कुछ शिथिलाचारी साधुओं के आचरण का भण्डाफोड़ हुआ। उससे सारा संघ हिल गया और उसके थोड़े दिनों बाद आचार्य श्री गनेशीलालजी म० सा० श्रमण संघ से त्यागपत्र देकर अपने पूर्व की स्थिति में आ गये। उस वक्त पूज्य हुक्मीचंदजी म० सा० की सम्प्रदाय की [illegible] [illegible] अलग-[illegible] हो गई थी।

उदयपुर में आचार्य श्री पूज्य गनेशीलालजी म० सा० ने वर्तमान आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० को युवाचार्य घोषित किया। उस समय आचार्य श्री पर श्रद्धा रखने वाले प्रमुख श्रावकों ने उदयपुर में गम्भीर विचार-विमर्श किया एवं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना की।

इस संस्था ने बहुत [illegible] [illegible] में समाज में अपना स्थान बनाया तथा शुद्ध श्रमण संस्कृति की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उठाये एवं अनेक समाजोपयोगी कार्य भी सम्पन्न किये। इस संस्था की स्थापना से मेरा भी [illegible]

ी आते। मात्र रु. २/- फीस इन्हें मिलती। वापस बैलगाड़ी में इन्हें नागौर पहुंचाना पड़ता था। ाबोहवा इतनी शुद्ध थी कि सभी बाल-युवा-वृद्ध स्त्री-पुरुष पूर्ण स्वस्थ एवं सुडौल होते थे।

गोगोलाव में ओसवालों के ६० घर उस वक्त थे। आधे परिवार सम्पन्न थे एवं आधे मध्यम स्थिति के थे। बंगाल में जूट का व्यवसाय करते थे। ६ महीने गांव में रहते तथा ६ महीने जूट ंे मौसम में बंगाल में रहते। सभी के परिवार गांव में ही रहते थे। फुरसत के जिन ६ महीनों ओसवाल समाज के सभी पुरुष गांव में रहते थे, उस वक्त का माहौल अत्यन्त आकर्षक होता ा। वे दोपहर में जगह-जगह ताश खेलते, शाम को तालाब पर घूमने जाते, रात्रि में मिलकर टों गप्पे चर्चाएं करते थे। शिक्षा की सुविधा नहीं होने से लोग ज्यादा पढ़ नहीं पाते थे, लेकिन शी पाठशाला में जो गुरुजी थे, वे अपने ढंग से पढ़ाने में अत्यन्त माहिर थे। मात्र ३ वर्षों में ड़के को हिसाब-किताब एवं लेखा-जोखा करने में कुशल बना देते थे। गणित की शिक्षा जबर्दस्त ोती थी। लड़कों को कम्प्युटर की तरह प्रवीण बना देते थे। ९ वर्ष की बाल्यावस्था में वहां पढ़-लिखकर ड़के बंगाल में व्यापार करने आ जाते तथा वे कुशल व्यापारी साबित होते थे। मेरी प्रारम्भिक ाक्षा भी ऐसे गुरुजी (श्री पुसारामजी) के पास हुई। प्रसिद्ध बोथरा परिवार की ओर से गांव में क स्कूल शुरू हुआ तो कांकरिया परिवार ने भी एक स्कूल प्रारम्भ करवा दिया आपस की कुछ लतफहमियों के कारण। बोथरा स्कूल में उत्तर प्रदेश के श्री रमाशंकरजी तिवारी मास्टर थे। कांकरिया कूल में नागौर निवासी श्री झूमरलालजी हेडमास्टर थे। दोनों मास्टरजी १०वीं तक पढ़े थे, पर त्यधिक मेहनती थे। इनके आने से गांव में शिक्षा का वातावरण शुरू हुआ। कांकरिया स्कूल मैं तथा श्री मदनलालजी कांकरिया प्रथम बार ७वीं कक्षा की परीक्षा देने के लिये बीकानेर गये वं अगले वर्ष ८वीं की परीक्षा देने जोधपुर गये तथा उत्तीर्ण हुए। आपसी गलतफहमी के दूर होने र बोथरा व कांकरिया ने मिलकर तय किया तथा कांकरिया स्कूल बंद कर दिया गया।

गोगोलाव में उस वक्त एक औषधालय मेरे पिताजी द्वारा खोला गया था। अनुभवी युवा वैद्यराज ाईदानजी की नियुक्ति की गई थी। वह औषधालय आज पिछले ४५ वर्ष से गोगोलाव गांव के ासियों की ही नहीं अपितु आसपास के २५ गांवों की सेवा कर रहा है। श्री आईदानजी आज जस्थान के अनुभवी वैद्यों में अपना विशिष्ठ स्थान रखते हैं। इस बीच गोगोलाव में एक लाईब्रेरी ो स्थापना भी की गई।

हमारे घर में एक मोटर भी खरीद ली गई थी। इस मोटर की बैटरी से रेडियो चलता था जो ागालाव गांव में एक मात्र रेडियो था, इससे समाचार सुनने कई व्यक्ति हमारे गेस्ट हाउस में आते । उन्हीं दिनों गोगालाव गांव में एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण हुआ। कुछ वर्षों बाद स्कूल वन, धर्म स्थानक तथा करनीदेवी का मन्दिर आदि निर्मित हुए।

मैं सन् १९४५ में गोगोलाव से कलकत्ता आ गया। अपने पुश्तैनी जूट के व्यवसाय के लिये गला देश में मैने कई जगह जाकर ६ महीना ट्रेनिंग ली। गाईबन्धा, गौरीपुर, नारायणगंज, दौलतपुर ादि स्थानों में रहकर, कलकत्ता में जूट व्यवसाय सीखने लगा। इस बीच सन् १९४६ में मेरा ववाह चुरू निवासी श्री जयचंदलालजी पारख की लड़की फूलकुमारी के साथ मात्र १७ वर्ष की वस्था में हो गया था। शादी के थोड़े दिन बाद हम लोग सपरिवार कलकत्ता आकर रहने लगे। ने जूट के साथ फिल्म वितरण का व्यवसाय सीखना शुरू किया। इस बीच वुलेन मिल बनाने ा निश्चय किया गया और मुझे उसके संचालन का भार दिया गया।

वुलेन मील का कार्य शुरू किया ही था कि इस बीच मेरे पिताजी का गाईबन्धा से नारायणगंज बंगलादेश) जाते हुए ट्रेन में खून हो गया। पिताजी की इस आकस्मिक मृत्यु से हमारे परिवार ो काफी धक्का लगा। पिताजी काफी सुलझे हुए बुद्धिमान व्यवसायी थे। उनके निधन से सभी ं मन में असमंजस की स्थिति बनी, किन्तु सभी ने हिम्मत करके कार्य शुरू किया। पिताजी की

मृत्यु के एक वर्ष बाद वुलेन मील भी चालू हो गई। भाई साहब श्री पारसमलजी के परामर्श से सारा कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। वुलेन मील में भी अच्छे ढंग से कार्य चलने लगा। हमारा व्यवसाय आहिस्ते-आहिस्ते बढ़ने लगा। उत्साहित होकर जोधपुर में भी एक और वुलेन मिल बनाई तथा वह भी सुचारु रूप से कार्य करने लगी। कलकत्ता में कुछ और जायदाद खरीदी गई तथा धर्मतल्ला में अपना मकान बनाया। कुछ समय पश्चात् बालीगंज क्वींस पार्क में सन् १९६७ में अपना नया मकान भी बना लिया। इसी अवधि में फिल्मी व्यवसाय भी प्रारम्भ किया। कलकत्ता स्थित बंगाल नेशनल टेक्सटाइल्स वुलेन मील की एक शाखा फरीदाबाद में भी स्थापित की गई। काफी समय तक उसमें भी ठीक ढंग से कार्य हुआ फिर मजदूर आन्दोलन के कारण मील में नुकसान होने लगा तो सन् १९८२ में मील बेच दी और कलकत्ता में भवन निर्माण का कार्यारम्भ किया तथा केमिकल की दो फैक्टरियां भी शुरू की।

सन् १९८७ में भाई साहब पाररसमलजी का स्वर्गवास हो गया, उससे काफी बड़ा धक्का लगा, लेकिन सम्भलकर पुन: कार्य शुरू किया। भवन निर्माण का कार्य ठीक तरह चलने लगा। सम्प्रति भाई साहब के दो पुत्र सुभाष तथा विनोद, मेरे दो पुत्र मनोहर व ललित अच्छे ढंग से कार्य कर रहे हैं। पुत्रियां एवं पुत्रों की शादियां करके अपनी जिम्मेदारी से मैं काफी हल्का हो गया हूं।

सन् १९५६ ई० में आचार्य पूज्य श्री गनेशीलालजी म० सा० का हमारे गांव गोगोलाव में चातुर्मास तय हुआ। उस वक्त मुझे वहां करीबन ४ महीना पूज्य गुरुदेव की सेवा में रहने का मौका मिला तथा मन में समाज के लिये कार्य करने की इच्छा पैदा हुई। सन् १९२७ में ही श्री अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स की लुधियाना बैठक में भाग लेने का मौका मिला। वहां समाज के प्रमुख व्यक्तियों श्री विनयचन्द भाई जौहरी (कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष), श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, श्री मोहन मलजी चोरड़िया, श्री कानमलजी नाहटा, श्री श्रीचन्दजी गोलछा, श्री जवाहरलालजी मुणोत, श्री आनन्दराजजी सुराणा (कान्फ्रेन्स के महामंत्री), श्री कन्हैयालालजी मालू, श्री भंवरलालजी श्रीश्रीमाल आदि से परिचय हुआ। मेरी सक्रियता तथा समाज सेवा में रुचि लेने के कारण एक साल बाद मुझे भी कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी में सम्मिलित कर लिया। कान्फ्रेन्स की कई बैठकों में भाग लेने के कारण समाज के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आने एवं उन्हें समझने का सुयोग तथा साधु समाज को बहुत नजदीक से देखने का अवसर भी मिला। श्रमण संघ का गठन सन् १९५२ ई. में हो चुका था। आचार्य श्री गनेशीलालजी म० सा० श्रमण संघ के उपाचार्य पद पर विराजमान थे।

गोगोलाव चार्तुमास के समय एक विशेष घटना घटित हुई। यह घटना पाली कांड के रूप में प्रसिद्ध हो गई। कुछ शिथिलाचारी साधुओं के आचरण का भण्डाफोड़ हुआ। उससे सारा संघ हिल गया और उसके थोड़े दिनों बाद आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० श्रमण संघ से त्यागपत्र देकर अपने पूर्व की स्थिति में आ गये। उस वक्त पूज्य हुक्मीचंदजी म० सा० की सम्प्रदाय की अवस्था काफी अस्त-व्यस्त हो गई थी।

उदयपुर में आचार्य श्री पूज्य गणेशीलालजी म० सा० ने वर्तमान आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० को युवाचार्य घोषित किया। उस समय आचार्य श्री पर श्रद्धा रखने वाले प्रमुख श्रावकों ने उदयपुर में गम्भीर विचार-विमर्श किया एवं श्री अखिल भारतवर्षिय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना की।

इस संस्था ने बहुत कड़ी मेहनत से समाज में अपना स्थान बनाया तथा शुद्ध श्रमण संस्कृति की रक्षार्थ कई महत्वपूर्ण कदम उठाये एवं अनेक समाजोपयोगी कार्य भी सम्पन्न किये। इस संस्था की स्थापना में मेरा भी महत्वपूर्ण योगदान था अत: अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार उसमें काफी कार्य किया। इसमें कार्य करते हुए सारे भारतवर्ष में मुझे घूमने का तथा उत्साही भाई-बहनों

से सम्पर्क का लाभ भी मिला तथा सुदृढ़ सामाजिक संगठन एवं एक्य के मेरे विचारों को बल प्राप्त हुआ। समाज के कई उत्कृष्ट विद्वानों से भी मिलने, विचार-विमर्श करने तथा उनके साथ रहने का पर्याप्त अवसर मिला। जैन धर्म के सभी प्रमुख विद्वानों से घनिष्ठ सम्पर्क बन जाने के फलस्वरूप धर्म का सही स्वरूप समझने का मेरे लिए स्वर्णिम योग सम्भव हुआ। डॉ. सागरमल जैन, डॉ. नेमीचन्द जैन, डाक्टर नरेन्द्र भानावत, डॉ. छगनलाल शास्त्री, डॉ. प्रेमसुमन जैन, डॉ. महावीरसरण जैन, डॉ. कमलचन्द सौगानी जैसे उद्भट्ट विद्वानों का अनेक अवसरों पर सामीप्य एवं सान्निध्य के साथ मार्गदर्शन भी मुझे मिला। फलत: जैन संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं दर्शन के मर्म का मैं यत्किंचित साक्षात्कार कर सका। इससे मेरे जीवन को सही दिशा प्राप्त हुई।

कलकत्ता स्थित श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों से भी जुड़कर मैं कार्य करने लगा था। श्री श्वे० स्था० जैन सभा ने एक भूमि सुकियस लेन में क्रय कर श्री जैन विद्यालय का नया भवन बनाया। नये विद्यालय भवन के निर्माण के पश्चात् विद्यालय इस भवन में स्थानान्तरित हुआ एवं सभा ने स्कूल प्रबन्ध के लिये एक कार्य समिति गठित की। श्री फूसराजजी बच्छावत को विद्यालय प्रबन्ध समिति का अध्यक्ष बनाया एवं सेक्रेटरी का कार्य भार मुझे सौंपा गया। मैं युवक था, स्कूल चलाने का अनुभव भी नहीं था लेकिन बड़ों की आज्ञा का विरोध करना भी सम्भव एवं उचित नहीं था। समिति के मार्गदर्शन में श्री जैन विद्यालय धीरे-धीरे तरक्की की ओर बढ़ने लगा।

सुकियस लेन के नवनिर्मित भवन में जब स्कूल स्थानान्तरित हुआ, उस वक्त २०० छात्र थे, आज स्कूल में करीब २५०० छात्र हैं तथा उच्चस्तरीय शिक्षण, अनुशासन एवं शतप्रतिशत परीक्षाफल के कारण श्री जैन विद्यालय बड़ाबाजार के शिक्षण संस्थानों में अपना विशेष स्थान रखता है। श्री रामानन्दजी तिवारी तीस वर्ष की सुदीर्घ अवधि तक प्रिन्सिपल रहे। उनके योग्य निर्देशन में यह स्कूल दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ता गया। निष्ठावान शिक्षकों की अथक मेहनत व लगन ने इस विद्यालय का नाम काफी रोशन किया है। प्रबन्ध समिति के उत्साही सदस्यों की अनेक वर्षों की सेवा ने इस विद्यालय को कलकत्ता की शिक्षा संस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान बनाने में पूर्ण सहयोग किया है।

श्री जैन विद्यालय की पांच दशकीय अविश्रान्त शिक्षण यात्रा की सम्पूर्ति के अवसर पर सन् १९८४ में दिनांक ८ जनवरी से १५ जनवरी तक अष्ट दिवसीय स्वर्ण-जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया। बड़े हर्षोल्लास से यह आयोजन प्रारम्भ हुआ। समाज में जबर्दस्त उत्साह था। शिक्षकों, छात्रों एवं समाज के उत्साही सदस्यों ने इसके प्रत्येक कार्यक्रम में मनोयोग से भाग लिया एवं इसे पूर्णतया सफल बनाया। वाद-विवाद, कला, विज्ञान प्रदर्शनी, संगीत संध्या, कवि सम्मेलन, रामचरित मानस एवं भक्तामर सस्वर पाठ प्रतियोगिता के आयोजनों ने कलकत्ता के शिक्षण संस्थानों में धूम मचा दी। अपार प्रशंसा मिली इन आयोजनों को। जैन पत्र-पत्रिकाओं की प्रदर्शनी एवं भारत भर से आमंत्रित जैन विद्वानों की संगोष्ठियों ने इस आयोजन के चार चांद लगा दिये। मुख्य समारोह कलकत्ता के प्रसिद्ध वातानुकूलित नेताजी इन्डोर स्टेडियम में आठ हजार दर्शकों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। समारोह की मुख्य अतिथि थी पश्चिम बंग उच्चतर माध्यमिक शिक्षा परिषद की अध्यक्षा श्रीमती अनिला देवी एवं सभापतित्व किया तत्कालीन नागरिक उड्डयन राज्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने। पूर्वी सेना के सेनाध्यक्ष लेफ्टिनेन्ट जनरल श्री चिमनसिंहजी ने अपने कर कमलों से इकावन दीप जलाकर स्वर्ण जयन्ती समारोह का उद्घाटन किया था। इस अवसर पर प्रकाशित स्वर्ण जयन्ती स्मारिका भी अत्यन्त आकर्षक, संग्रहणीय एवं पठनीय थी। विद्वानों के आलेखों के कारण यह सर्वत्र प्रशंसनीय रही। मुख पृष्ठ पर प्रसिद्ध चित्रकार श्री इन्द्र दुगड़ निर्मित जैन सरस्वती का अत्यन्त भव्य एवं कलात्मक चित्र मुद्रित किया गया। यह चित्र विख्यात जैन तीर्थ श्री केशरिया जी के खम्भे पर उत्कीर्ण प्रतिमा की प्रतिकृति था। किसी विद्यालय का ऐसा स्वर्ण जयन्ती समारोह कलकत्ता

में प्रथम बार आयोजित किया गया था। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ एवं महिला संघ की कार्य समिति बैठकें भी इस अवसर पर आयोजित की गई थी। वस्तुत: यह एक अभूतपूर्व आयोजन रहा।

श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ भी सामाजिक सेवा के क्षेत्र में क्रमश: आगे बढ़ने लगा था। अनेक सेवा कार्यों का सम्पादन अच्छे ढंग से चलने लगा। विशुद्ध श्रमण संस्कृति एवं तीर्थंकर वाणी के सुनियोजित प्रचार-प्रसार हेतु एक पत्र प्रकाशन की प्रबल आवश्यकता की अनुभूति होने पर पाक्षिक श्रमणोपासक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। फलस्वरूप इसके माध्यम से एक विचारधारा के व्यक्तियों का समूह आपस में जुड़ता गया एवं संघ की नींव सुदृढ़ बनती गई। इसी समय उदयपुर में शान्त क्रान्ति के सूत्रधार आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० का स्वर्गवास हो गया। आचार्य श्री ने अपनी रुग्णावस्था में पंडित प्रवर श्री नानालालजी म० सा० को युवाचार्य घोषित कर दिया था। आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के स्वर्गवास पर युवाचार्य श्री नानालाजी म० सा० को उदयपुर के राजमहल के विशाल प्रांगण में आचार्य पद की चादर ओढ़ाई गई। आचार्य श्री नानालालजी म० सा० ने अपनी लगन एवं प्रतिभा से संघ को अत्यधिक गौरवशाली बनाया।

मालवा के प्रथम चातुर्मास के पश्चात् श्रद्धेय आचार्य प्रवर ग्रामीण क्षेत्र में विचरण कर रहे थे कि एक युगान्तरकारी घटना घटित हो गई, जिसका इतिहास यदि तटस्थभाव से लिखा जाय तो यह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

मांस-मदिरा एवं अन्य अनेक दुर्व्यसनों की शिकार बलाई जाति के लोगों ने आचार्य श्री के सदुपदेशों से प्रभावित होकर अपने कुव्यसनों का त्याग कर सात्विक जीवन जीने का संकल्प किया। इनके दृढ़ निश्चय से प्रभावित होकर श्रद्धेय आचार्य प्रवर ने इन्हें "धर्मपाल" नाम से सम्बोधित किया। संघ ने इसे आन्दोलन का रूप देकर व्यसन मुक्ति का अभियान प्रारम्भ किया एवं मालवा के अनेक गांवों के सहस्त्र-सहस्त्र बलाइयों ने धर्मपाल बनकर एक नया जीवन प्रारम्भ किया। इनके जीवन में एक नये प्रभात का आगमन हुआ एवं व्यसन मुक्त बनकर एक ऐसा अध्याय लिखा गया, जिसका सानी सैकड़ों वर्षों के भारतीय इतिहास में नहीं मिलता। इस क्रांतिकारी घटना से साधुमार्गी जैन संघ व आचार्य श्री की कीर्ति में चार चांद लग गये

स्व. श्री गणेशाचार्य की स्मृति में उदयपुर में एक बड़ी जमीन खरीदकर एक विशाल आधुनिक छात्रावास का निर्माण करने का तय किया गया तथा यह कार्य मेरे जिम्मे रखा गया। उदयपुर संघ के कुछ उत्साही कार्यकर्त्ताओं तथा श्री सुन्दरलालजी तातेड़ के सहयोग से श्री गणेश जैन छात्रावास भवन बन कर तैयार हुआ एवं मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री पारसमलजी के कर कमलों से उसका उद्घाटन कराया गया। पिछले २५ वर्षों से यह छात्रावास समाज की अनवरत सेवा में लगा हुआ है। उदयपुर ही नहीं राजस्थान के शैक्षणिक छात्रावासों में इसका अग्रणी स्थान है। दूरस्थ स्थान से आगत छात्रों के रहने की इसमें समुचित आधुनिक व्यवस्था है जो कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिये अत्यन्त आवश्यक भी है।

धर्मपाल प्रवृत्ति का प्रसार व प्रचार दिनोंदिन बढ़ने लगा। वहां भी गांवों में धार्मिक पाठशालाएं चलाई जाने लगीं तथा उच्च शिक्षा के लिये एक छात्रावास का स्थान रतलाम में तय किया गया। वहां एक आधुनिक सुविधा सम्पन्न छात्रावास श्री प्रेमराज गणपतराज बोहरा धर्मपाल जैन छात्रावास चल रहा है। धर्मपाल समाज के तीस छात्रों को नि:शुल्क उच्च शिक्षा दिलाने में यह मददगार है।

धर्मपाल भाई-बहनों की अहिंसक जीवन प्रणाली को स्थाई रूप देने के लिए एक धर्मपाल प्रचार प्रसार समिति गठित की गई जिसने धार्मिक पाठशालाओं के संचालन के साथ रोग ग्रस्त धर्मपाल भाई-बहनों को घर बैठे चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के लिये श्री गणपतराजजी बोहरा के सहयोग से चल चिकित्सालय प्रारम्भ किया। स्वधर्मी स्नेह, वात्सल्य एवं सद्भाव की वृद्धि हेतु प्रतिवर्ष

होली के आस-पास सप्ताह व्यापी पद-यात्राओं का आयोजन भी प्रारम्भ किया गया।

इन पदयात्राओं में संघ के वरिष्ठ महानुभाव (स्त्री पुरुष) एवं युवा कार्यकर्त्ता सम्मिलित होते। प्रतिदिन दो गांवों की पैदल यात्रा कर धर्मपाल भाई बहनों से जीवन्त सम्पर्क किया जाता। उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान होता, एक साथ खान-पान किया जाता। उनके कष्ट-काठिन्यों को सुनकर उनका भरसक समाधान करते। मैं अपनी पत्नी तथा कलकत्ता के अन्य महानुभावों के साथ प्रतिवर्ष इन पदयात्राओं में सम्मिलित होता। चूंकि मैं अपनी विनोदप्रियता के कारण कठिन क्षणों में भी सबको हंसा देता हूं अत: सभी पदयात्री मेरे आगमन की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से करते थे। चंद हंसी के क्षणों से जो तनाव मुक्ति प्राप्त होती है वह कठिन साधना से भी सम्भव नहीं है।

उन्मुक्त प्रकृति के खुले परिवेश में ग्रामीण क्षेत्रों की इन पदयात्राओं से जहां धर्मपाल भाई-बहनों में आशा-उत्साह एवं महत्वाकांक्षा का संचार होता वहां हम पदयात्रियों को शहर की आपाधापी, शोरगुल तथा छल-छद्म युक्त जीवन से हटकर कूट कपट रहित एक नैसर्गिक जीवन जीने का अवसर मिलता एवं ग्रामीण जीवन की सरलता से हृदय लहलहा उठता। धर्म, दर्शन की चर्चा के साथ-साथ संगीत एवं भजनों के कार्य-क्रम जीवन को जो अर्थवत्ता प्रदान करते, वह अकथनीय है।

डॉ. नन्दलाल बोरदिया जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त डाक्टर एवं उनकी सेवा भावी पत्नी डॉ. हीरा बहन चल-चिकित्सालय के साथ उन ग्रामीण अंचलों में हमारे साथ सप्ताह भर तक पदयात्रा करते एवं मनोयोग पूर्वक ग्रामीण भाई-बहनों का इलाज करते। उनकी अविश्रान्त सेवा, उदारता, सहृदयता एवं परदुखकातरता को देखकर हम जैसे प्राणी तो क्या स्वयं श्रद्धा भी नतमस्तक हो उठती थी। डॉ. बोरदिया के आकस्मिक स्वर्गवास के बाद उनकी स्मृति में उस चल-चिकित्सालय का नामकरण 'डॉ. नन्दलाल बोरदिया चल चिकित्सालय' ही कर दिया गया था। दुख है कि आजकल ये कार्यक्रम आयोजित नहीं हो पा रहे हैं।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा छात्रवृत्ति, स्वधर्मी सहयोग आदि कई समाज कल्याणकारी योजनाएं भी शुरू की गईं। जिसका लाभ जरूरतमंद भाइयों एवं छात्रों को मिलने लगा, उससे संघ की लोकप्रियता में पर्याप्त वृद्धि हुई। महिलाओं के उत्थान को दृष्टिगत रखकर संघ में महिला समिति की स्थापना भी कर दी गई। महिला समिति ने अभाव ग्रस्त महिलाओं की सहायतार्थ रतलाम में उद्योग मन्दिर किराये के मकान में प्रारम्भ किया, लेकिन जगह की कमी के कारण कार्य करने में असुविधा होती थी। फलत: श्रीमती शान्ता बहिन मेहता के अनुरोध पर मैंने उन्हें कलकत्ता बुलाया तथा काफी बड़ी रकम नवीन भवन निर्माण हेतु इकट्ठी करवाई। श्री दीपचन्द जी कांकरिया की माता श्रीमती जीवन देवी कांकरिया ने उद्योग मंदिर बनाने में अच्छा सहयेग दिया। आज इस उद्योग मंदिर से करीब १०० बहिनें न केवल लाभान्वित हो रही हैं, अपितु अपने श्रम से स्वाभिमानी एवं स्वावलम्बी जीवन भी बिता रही हैं।

इन वर्षों में आचार्य श्री नानालालजी म० सा० की नेश्राय में काफी दीक्षाएं भी हुईं, उनकी उचित शिक्षा की व्यवस्था श्री सुरेन्द्रकुमार सांड शिक्षा सोसायटी के माध्यम से की गई। सन्त-सतियों में पढ़ने की जबर्दस्त रुचि पैदा हुई एवं वे मेहनत करके पढ़ने लगे, लेकिन थोड़ी-सी पढ़ाई से ही सन्तों व सतियों में अन्यमनस्कता आ गई एवं वे आगे पढ़ने से कतराने लगे, जबकि तेरापंथी समाज में शिक्षा की जबर्दस्त व्यवस्था के कारण इनके सन्त, सतियां जी तथा श्रमणियां पर्याप्त लाभ उठा रही हैं।

संघ के स्थापनाकाल से ही संघ की प्रत्येक गतिविधि/प्रवृत्ति में अनवरत सक्रिय रहने के कारण संघ के मंत्री का दायित्व सम्भालने के लिए मेरे ऊपर दबाव बढ़ने लगा। हालांकि प्रारम्भ से ही इसके कोषाध्यक्ष का भार वहन कर इसे स्वावलम्बी बनाने मे मैं अपना योगदान करता रहा हूं फिर

भी मंत्री पद स्वीकारने के लिए संघ प्रमुखों के आग्रह एवं अनुरोध के सामने मुझे झुकना पड़ा। सन् १९७८ में मैं संघ का मंत्री निर्वाचित किया गया। हालांकि बिना किसी पद एवं पदवी के बन्धन रहित रहकर मैं कार्य करते रहने में अधिक आनन्द का अनुभव करता हूं।

संघ का प्रमुख कार्यालय बीकानेर में है एवं मैं स्थाई रूप से कलकत्ता रहता हूं अतः इतना दूर रहकर संघ प्रवृत्तियों एवं कार्यालय का संचालन मेरे लिए एक कठिन समस्या थी अतः इसके समाधान के लिये मैने सामाजिक कार्यों से अनवरत जुड़े श्री भूपराज जैन से कार्यालय सचिव का कार्यभार सम्भालने का अनुरोध किया। श्री जैन ने मेरे अनुरोध पर अपने अठारह वर्षीय शिक्षक जीवन से मुक्त होकर यह दायित्व ग्रहण किया एवं पूरे पांच वर्ष तक इसका सफलतापूर्वक निर्वाह किया। इसी वर्ष श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म० सा० ने आगारों सहित वर्षावास जोधपुर में करने की घोषणा की। जोधपुर संघ का अध्यक्ष होने के नाते मुझे यहां भी पर्याप्त समय देना पड़ा। मुझे प्रसन्नता है कि जोधपुर संघ के सदस्यों की सूझबूझ एवं मेहनत के कारण यह चार्तुमास अत्यधिक सफल रहा।

श्री जैन विद्यालय कलकत्ता का कार्य द्रुतगति से आगे बढ़ रहा था। शहर की आबादी भी बेतहाशा बढ़ने के कारण स्कूलों की जबर्दस्त कमी महसूस होने लगी। विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के प्रमुख समारोह में प्रमुख वक्ता के रूप में दैनिक विश्वमित्र के सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल ने वक्तव्य में कहा कि "आप जिन प्रवृत्तियों पर गर्व एवं गौरव अनुभव कर रहे हैं वे आपके पूर्वजों की चलाई हुई हैं उनकी सार्थकता तब होगी जब आप स्वयं ऐसा कोई कार्य कर दिखायें एवं भावी पीढ़ी के सामने आदर्श प्रस्तुत करें"।

यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात थी एवं समाज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं के साथ मेरे मन में भी यह बात घर कर गई थी कि हमें स्वयं ऐसा कुछ कार्य करना चाहिये जो लोक-कल्याणकारी हो एवं भावी पीढ़ी के लिये प्रेरणा-स्तम्भ का कार्य कर सके। हम अवसर एवं सुयोग की प्रतीक्षा करने लगे।

सभा की हीरक जयन्ती का अवसर आया एवं बड़ी धूमधाम तथा आशा-उत्साह से हीरक जयन्ती का समारोह नवनिर्मित एवं भव्य श्री घनश्यामदास बिड़ला सभागार में आयोजित हुआ। जैन समाज के गण्यमान्य महानुभाव एवं मूर्धन्य विद्वानों की उपस्थिति में यह आयोजन अत्यन्त सफल रहा एवं श्री अग्रवाल साहब का वह आह्वान एक संकल्प रूप में उभरा कि विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या और शिक्षण संस्थानों के अभाव को देखते हुए हावड़ा में एक जैन विद्यालय तथा अभावग्रस्त, पीड़ित एवं साधन हीन लोगों की चिकित्सा सेवा के लिए एक आधुनिक अस्पताल निर्माण का कार्य हाथ में लिया जाय।

संयोग से एक सुअवसर भी शीघ्र प्राप्त हो गया। श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ के अध्यक्ष के रूप में श्री भंवरलालजी वैद का मेरे प्रस्ताव पर निर्वाचन हुआ एवं उनके सम्मान में मैंने एक स्नेह गोष्ठी का आयोजन मेरे घर पर किया। इसमें समग्र जैन समाज के प्रमुख महानुभाव साहित्य मनीषी श्री कन्हैयालालजी सेठिया, श्री सूरजमलजी बच्छावत, श्री पूरणमलजी कांकरिया, श्री दीपचन्दजी नाहटा, श्री श्री चन्दजी नाहटा, श्री अभयसिंहजी सुराणा, श्री रतनलालजी रामपुरिया, श्री माणकचन्दजी रामपुरिया, श्री गणेशजी ललवाणी, श्री भंवरलालजी वैद, श्री रिखवदासजी भंसाली, श्री रिधकरणजी बोथरा, श्री शिखर चन्द जी मिन्नी, श्री जयचन्दलालजी मिन्नी, श्री पदमचन्दजी नाहटा, श्री कानमलजी सेठिया प्रभृति उपस्थित थे। मैंने सबके समक्ष शिक्षण संस्थान के अभाव की चर्चा की एवं नये विद्यालय निर्माण का प्रस्ताव रखा, जिसका सभी ने अत्यन्त उत्साह पूर्वक समर्थन किया एवं हर सम्भव सहयोग प्रदान करने की भावना ही व्यक्त नहीं की, आश्वासन भी दिया।

फिर क्या था हावड़ा में जमीन की खोज शुरू की। श्री रतनजी चौधरी व श्री सुन्दरलालजी

दुगड़ के प्रयासों से हावड़ा स्थित बन बिहारी बोस रोड पर २० कट्ठा जमीन क्रय करना निश्चित किया तथा जमीन क्रय कर ली गई। अक्षय तृतीया २ मई, १९९१ के शुभ मुहुर्त में मेरे साथ श्री सूरजमलजी बच्छावत ने भूमि पूजन किया एवं स्कूल का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। इस निर्माण कार्य में श्री रतनजी चौधरी का अत्यधिक सहयोग मिला। नक्शा बनाना, पास करवाना, कुछ फालतू आदमियों के कब्जे से जगह खाली करवाना, निर्माण कार्य में सुपरविजन करना तथा रोजाना ही एक घंटा के लिये निर्माण स्थल पर आकर सारी स्थिति देखना आदि कार्य तन-मन-धन से कर उन्होंने जबर्दस्त सहयोग किया व आज भी कर रहे हैं। श्री सुन्दरलालजी दुगड़ ने जमीन खरीदने तथा नींव भरवाने वगैरह कार्य पूर्ण मनोयोग से कराये। श्री विनोद कांकरिया, श्री प्रकाशजी कोठारी ने इस निर्माण कार्य का प्रतिदिन निरीक्षण करने, आवश्यकतानुसार रा मटिरियल मंगवाने तथा श्रमिकों के बिल पास करने की जिम्मेदारी अत्यन्त तन्मयता से निभाई। श्री पुखराज कोठारी ने भी निर्माण कार्य में अथक मेहनत की।

भवन निर्माण होते ही हम लोगों ने सन् १९९२ के मई माह से यह नया विद्यालय प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ से पूर्व पूजा एवं समारोह आयोजित किया गया, जिसमें समाज के वरिष्ठ महानुभाव उपस्थित थे। उन्होंने इस पर अपार हर्ष प्रकट किया। हमें डर था कि नई स्कूल में पहले वर्ष ज्यादा छात्र नहीं मिलेंगे, लेकिन जैसे ही प्रवेश फार्म देने शुरू किये जबर्दस्त भीड़ लग गई। प्रथम वर्ष में ही १८०० छात्र-छात्राओं को प्रवेश मिल गया।

भर्ती के लिये जबर्दस्त दबाव पड़ने लगा। श्री जैन विद्यालय कलकत्ता की प्रतिष्ठा के कारण स्कूल चालू होने के पहले ही यह नया विद्यालय अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। अध्यापकों का चयन काफी कठिन कार्य था, किन्तु श्री रिखबदासजी भंसाली के सुयोग्य नेतृत्व में अध्यापकों का चुनाव हुआ। इस चुनाव अभियान में श्री रिधकरणजी बोथरा, श्री के० एल० गुप्त (प्रिन्सिपल- श्री जैन विद्यालय), श्री भूपराज जैन व श्री राधेश्याम मिश्र आदि व्यक्तियों का पूर्ण सहयोग मिला। इधर निर्माण कार्य भी हो रहा था। एक करोड़ रुपये का यह प्रोजेक्ट था। एतदर्थ रुपया एकत्रित करना भी अति आवश्यक हो गया। इसके लिये एक टीम हमेशा सक्रिय रही। सर्वश्री रिखबदासजी भंसाली, श्री भंवरलालजी करणावट, श्री रिधकरण जी बोथरा एवं मैं, हम चारों की यह टीम तो बराबर लगी ही रही। इसके सिवाय भाई श्री अभयसिंहजी सुराणा का अत्यन्त सहयोग मिला। नवयुवकों में श्री विनोद मिन्नी, श्री प्रदीपजी कुण्डलिया, श्री किशनलालजी बोथरा, श्री रतनजी चौधरी, श्री सुन्दरलालजी दुगड़ आदि का सहयोग भी कभी नहीं भुलाया जा सकता। सुबह स्कूल भवन का निरीक्षण करना व शाम को चंदा इकट्ठा करने जाना, लगातार एक वर्ष तक यही क्रम रहा। फलस्वरूप आज हावड़ा स्थित श्री जैन विद्यालय काफी अच्छे ढंग से चल रहा है।

सन् १९९१ के मई महीने में आवश्यक कार्यवशात् मुझे मद्रास जाना पड़ा। राजस्थान यूथ एसोसियेशन की तरफ से उस दिन वहां बुक बैंक के माध्यम से पाठ्य पुस्तक के वितरण का समारोह था। मैं श्री केशरीचन्दजी सेठिया के साथ उस समारोह में सम्मिलित हुआ। उस दिन वहां पर १७०० विद्यार्थियों को उन्होंने पाठ्यक्रम की पुस्तकें नि:शुल्क वितरण की, इस कार्यक्रम से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। वहां से लौटने पर मैंने अपने साथियों से बात की तथा यह तय किया कि हमलोग भी सन् १९९२ की मई में नये सत्र के प्रारम्भ पर इस तरह का आयोजन कर जरूरतमंद छात्रों को पाठ्यक्रम की पुस्तकें वितरित करें। श्री सुभाष बच्छावत के संयोजन में बुक बैंक हमारे यहां कार्यरत है। मैंने अपनी योजना रखी तो उन्होंने अपने साथियों सहित इसे अमली रूप दे दिया।

चौबीस परगना की अनेक स्कूलों के प्रिन्सीपल को पत्र देकर इन्होंने जरूरतमंद छात्रों एवं छात्राओं को पाठ्यक्रम की नि:शुल्क पुस्तकें सभा द्वारा देने की पेशकश की। इस योजना की स्वीकृति पर ४८ स्कूलों के जरूरतमंद ५५७ लड़के एवं लड़कियों के पाठ्यक्रम की पुस्तकें उनकी पुस्तक सूची के अनुसार खरीदी गई तथा मई, १९९२ में श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता में एक समारोह आयोजित

कर करीबन ३५० छात्र छात्राओं को प्रत्यक्षत: पाठ्यक्रम की पुस्तकें नि:शुल्क वितरित की गईं। दूरस्थ स्कूलों के छात्रों को न बुलाकर उनके प्रिन्सिपल को ही ये पुस्तकें सुपुर्द की गई।

पश्चिम बंग उच्चतर माध्यमिक परिषद के चेयरमेन प्रोफेसर रंजु गोपाल मुखर्जी ने अपने करकमलों से ये पुस्तकें वितरित कीं। इस समारोह की अध्यक्षता शिक्षा प्रेमी, समाज सेवी श्री मोहनलालजी बिनायकिया ने की तथा प्रमुख वक्ता थे- श्री श्यामसुन्दरजी आचार्य, सम्पादक दैनिक जनसत्ता, कलकत्ता। प्रोफेसर मुखर्जी व श्री आचार्य ने इस योजना को अत्यन्त लाभकारी व समय के अनुरूप बताया। श्री बिनायकिया जी ने आशीर्वाद देते हुए १०० छात्रों को पुस्तकें देने का भार स्वयं वहन किया। समारोह अत्यन्त प्रभावशाली रहा। समागत विद्यालयों के प्रधानाचार्यों ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में इस योजना को सराहा तथा आगे भी इसके चालू रखने पर बल दिया एवं अपनी शुभकामनाएं सभा को समर्पित की। सभा के अध्यक्ष श्री रिखबदासजी भंसाली ने मेरे आग्रह पर तत्काल घोषणा की कि अगले वर्ष एक हजार जरूरतमंद छात्रों को पाठ्यक्रम पुस्तकें नि:शुल्क वितरित की जायेंगी। इस घोषणा से सर्वत्र खुशी का वातावरण बन गया एवं सबने भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए इसका स्वागत किया।

सभा की एक मुख्य प्रवृत्ति श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सेवा संघ के तत्वावधान में महावीर इन्टरनेशनल, कलकत्ता के सहयोग से दिनांक ३० दिसम्बर, ९२ से दिनांक ३ जनवरी, १९९३ तक एक चतुर्दिवसीय नि:शुल्क विकलांग शिविर का आयोजन श्री जैन विद्यालय परिसर में किया गया। शिविर का उद्घाटन पश्चिम बंगाल के महामहिम राज्यपाल प्रो. नुरुलहसन ने दिनांक ३० दिसम्बर को दीप प्रज्वलित कर किया। प्रमुख अतिथि थे जोधपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. कल्याणमल लोढ़ा। अध्यक्षता पश्चिम बंगाल के युवा कल्याण एवं क्रीड़ा मंत्री श्री सुभाष चक्रवर्ती ने की। इस सेवाकार्य की आगत अतिथियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस चतुर्दिवसीय शिविर में लगभग १५० विकलांगों को जयपुर पैर एवं केलीपर नि:शुल्क प्रदान किये गये। समापन समारोह दिनांक ३ जनवरी को सभागार में सम्पन्न हुआ। प्रमुख अतिथि थे भारत सरकार के तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री अजित पांजा एवं साहित्यमनीषी श्री कन्हैयालालजी सेठिया। समारोह की अध्यक्षता उड़ीसा के वित्तमंत्री श्री बैद प्रकाशजी अग्रवाल ने की। प्रमुख वक्ता थे दक्षिण पूर्व रेलवे के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी श्री राजेन्द्र जी भंसाली।

विकलांग शिविर को सफल बनाने हेतु मेरे साथ सेवा संघ के कार्यकर्त्ताओं ने बोलपुर शान्ति निकेतन की यात्रा की एवं बोलपुर के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री रतनलालजी सुराणा के सहयोग से विकलांगों को इस शिविर से लाभ उठाने के लिये प्रेरित किया। इसी तरह विकलांगों से सम्पर्क करने के लिये सेवासंघ के कार्यकर्त्ताओं ने सैंथिया की यात्रा की। इस विकलांग शिविर को सफल बनाने में सेवासंघ के अध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड़, मंत्री श्री परसमलजी भुरट के साथ उत्साही नवयुवकों- श्री अशोक मिन्नी, श्री किशोर कोठारी, श्री केशरीचन्द गेलड़ा, श्री अशोक भंसाली, श्री कमलसिंह भंसाली, श्री अरुण मालू, श्री शान्तिलाल डागा, श्री कन्हैयालाल लूणिया, श्री ललित कांकरिया, श्री विनय अभानी, श्री विनोद मिन्नी आदि ने अथक परिश्रम किया। महावीर इण्टरनेशनल के चेयरमैन श्री जसवन्तसिंहजी मेहता आदि का सराहनीय सहयोग मिला।

दिसम्बर १९८६ में जैन दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान एवं ख्याति प्राप्त पुरातात्विक श्री भंवरलालजी नाहटा का नवनिर्मित श्री घनश्यामदास विड़ला सभागार में अभिनन्दन समारोह था। मुझे उस समारोह का अध्यक्ष बनाया गया था। प्रमुख अतिथि लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासविद् एवं विख्यात पुरातत्ववेत्ता, उड़ीसा के तत्कालीन राज्यपाल डॉ. विश्वम्भरनाथ पाण्डे थे। जैन साहित्य, इतिहास और कला पर उस दिन उन्होंने लगभग एक घण्टे तक ऐसा मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया कि सभी मंत्र मुग्ध एवं भाव विभोर होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

उसी दिन मेरे निवास २ए, क्वीन्स पार्क पर उनके सम्मान में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। उसमें जैन समाज के अग्रगण्य महानुभावों के साथ साहित्य मनीषी श्री कन्हैयालाल जी सेठिया भी उपस्थित थे। वहां चर्चा विचारणा के बाद निष्कर्ष के तौर पर एक ऐसी संस्था के गठन की आवश्यकता की अनुभूति की जो बिना किसी भेदभाव के निष्काम सेवाभावी कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को प्रेरणा प्रोत्साहन दे सके एवं उन्हें सम्मानित अभिनन्दित करे, जिससे योग्य कार्यकर्त्ता आगे बढ़कर समाज की निष्काम सेवा कर सकें एवं स्वतंत्र तथा निष्पक्ष विचारों का यह मंच बन सके। तत्काल "विचार मंच" नामक संस्था का उदय हुआ एवं डॉ. पाण्डे ने अपने प्रथम उद्‌बोधन में इसे सतत सफलता प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया।

विचार मंच की स्थापना के बाद सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रसिद्ध चित्रकार श्री इन्द्र दुगड़ को सम्मानित करने का निश्चय किया गया, किन्तु दुःख है कि उनकी अस्वस्थता के कारण उनका अभिनन्दन उनके जीवन काल में सम्भव न हो सका एवं मरणोपरान्त उनका अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जयन्त दुगड़ ने श्रीमती सरला बिड़ला के कर कमलों से अभिनन्दन पत्र ग्रहण किया। विचार मंच ने उनकी स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिये अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स द्वारा चयनित श्रेष्ठ युवा कलाकार को प्रतिवर्ष पांच हजार रुपये से पुरस्कृत एवं अभिनन्दित करने का निश्चय किया। प्रतिवर्ष मंच स्व. इन्द्र दुगड़ स्मृति समारोह आयोजित कर उदीयमान चित्रकार एवं कलाकर को पुरस्कृत एवं अभिनन्दित करती है। निष्काम सेवाभावी कार्यकर्त्ताओं की शृंखला में श्री कमलकुमार जैन, श्री पुष्करलाल केडिया को सम्मानित कर विचार मंच कलकत्ता की संस्थाओं में अपना विशिष्ट स्थान बना चुका है। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री समाजसेवी एवं बंगला साहित्यकार श्री प्रतापचन्दर चन्द्र का सम्मान करने का गौरव भी विचार मंच को प्राप्त हुआ है। भालोटिया फाउंडेशन की ओर से उनकी नव्य साहित्यिक कृति पर ग्यारह हजार रुपये का पुरस्कार भी मंच के तत्वावधान में दिया गया। विश्वप्रसिद्ध संविधान विशेषज्ञ, कानूनविद् एवं ब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी को सम्मानित कर विचार मंच अपने को धन्य मानता है। इस वर्ष हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर को सम्मानित करने का निश्चय किया है। हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में उनके योगदान के फलस्वरूप विचार मंच के तत्वावधान में ग्यारह हजार रुपये का भालोटिया पुरस्कार भी उन्हें प्रदान किया जायेगा। इसी अवसर पर स्व. इन्द्र दुगड़ स्मृति समारोह भी आयोजित किया जा रहा है एवं अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स द्वारा चयनित श्रेष्ठ चित्रकार श्रीमती पुष्पा वैद के साथ अन्य चार कलाकारों को पांच-पांच हजार रुपये प्रदान कर अभिनन्दित किया जायेगा।

विचार मंच की स्थापना से ही मुझे मंत्रीत्व का दायित्व सौंपा गया है। युवा विदुषी एवं उत्साही साहित्य प्रेमी श्रीमती राधा भालोटिया इसकी अध्यक्षा हैं। साहित्य मनीषी श्री कन्हैयालालजी सेठिया की अनवरत प्रेरणा ही विचार मंच के अभ्युदय का मूल कारण है।

विचार मंच के कार्यक्रमों से जहां सेवाभावी कार्यकर्त्ताओं एवं उदीयमान कलाकारों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिला है, वहां एक नये वातावरण का सृजन हुआ है तथा उन तत्वों को संतोष और साहसपूर्वक आगे बढ़ने का अवसर मिल रहा है, जो कूट कपट, छद्म और उपेक्षा के कारण घुटन महसूस करने लगे थे। विचार मंच के कार्यक्रम की बेताबी से प्रतीक्षा ही उसकी सफलता का चिन्ह है।

उपाध्यक्ष श्री गुलाबमलजी सिंघवी, श्री अभयसिंहजी सुराणा, सहमंत्री श्री रिधकरणजी बोथरा, पदमचन्दजी नाहटा एवं सम्पादक श्री गणेश ललवानी, श्री भूपराज जैन एवं श्रीमती राजकुमारी बेगानी एवं समाज के अन्य प्रबुद्ध व्यक्तियों के सहयोग से विचार मंच आज एक सामाजिक आवश्यकता ही नहीं, आन्दोलन बन गया है।

परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री नानालालजी मं. सा. के सन् १९८१ के वर्षावास के बाद उदयपुर श्री संघ आचार्य प्रवर के वर्षावास की स्मृति को चिरस्थाई बनाने हेतु एक ऐसी योजना को क्रियान्वित करना चाहता था, जो जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य की सेवा के साथ अर्हत वाणी का प्रचार-प्रसार कर सके। मेरे मन-मस्तिष्क में कई वर्षों से श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी की तरह का एक ऐसा संस्थान खड़ा करने की बात चल रही थी। उपयुक्त अवसर जानकर मैंने उदयपुर संघ के मंत्री श्री फतहलालजी हिंगड़ को यह बात बताई। उनको भी यह योजना वजनदार लगी एवं सुखाड़िया विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ. कमलचन्द सौगानी से विचार-विमर्श कर आगम संस्थान की योजना बनाई। श्रद्धेय आचार्य प्रवर से भी इस सम्बन्ध में चर्चा विचारणा की गई। फलस्वरूप उदयपुर संघ की सहमति से श्री गणेश जैन छात्रवास परिसर में आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान की स्थापना का निर्णय किया गया। श्री गणपतराजजी बोहरा ने एक लाख रुपये प्रदान कर इस योजना को प्रोत्साहित किया एवं समाज के अन्य उदार महानुभावों के सहयोग से इस संस्थान ने कार्य प्रारम्भ किया डॉ. कमलचन्द सौगानी के दिशा निर्देशन में।

श्री गणपतराजजी बोहरा इस संस्थान के अध्यक्ष हैं। मुझे इसका महामंत्री तथा श्री फतहलालजी हिंगड़ को इसका मंत्री बनाया गया। श्री मानमल बाबेल को शोध कार्य हेतु नियुक्त किया गया। श्री भगवती सूत्र पर कार्यारम्भ किया गया एवं इसके सम्पादन के पश्चात् इसका प्रकाशन भी किया गया। कुछ समय पश्चात् श्री बाबेल की अन्यत्र नियुक्ति हो जाने के बाद श्री सुभाष कोठारी को शोध कार्य के लिये नियुक्त किया गया। इस संस्थान के उन्नयन एवं विकास के सम्बन्ध में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के निदेशक एवं ख्याति प्राप्त जैन विद्वान डॉ. सागरमलजी जैन से चर्चा की। मेरे अनुरोध पर उन्होंने प्राकृत संस्थान का मानद निदेशक बनना स्वीकार किया एवं उनके मार्गदर्शन में डॉ. सुभाष कोठारी एवं श्री सुरेश सिसोदिया ने जैन साहित्य के अछूते ग्रन्थों प्रकीर्णक पर कार्य करना प्रारम्भ किया। अब तक डॉ. सागरमलजी जैन के निदेशन में पांच ग्रन्थों का प्रकाशन आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर के तत्वावधान में समाज के उदार महानुभावों के आर्थिक सहयोग से हो चुका है। विदुषी डॉ. सुषमा सिंघवी का योग्य मार्गदर्शन भी हमें अब उपलब्ध हो गया है।

संस्थान के विकास को दृष्टिगत रखकर संस्थान के निजी भवन का निर्माण भी शीघ्र किया जाने वाला है। इस संस्थान का उद्देश्य जैन साहित्य के ग्रन्थों पर शोध कर उन्हें प्रकाशित करना तथा समाज में ऐसा विद्वत वर्ग तैयार करना जो समाज की भावी पीढ़ी को सफलतापूर्वक जैन वाङ्मय का अध्ययन करवा सके। कुछ वर्ष पूर्व अनेक जैन विद्वान जैन वाङ्मय का अध्ययन-अध्यापन कराने के साथ समाज सेवा में संलग्न थे, किन्तु उनमें से अधिकांश के स्वर्गवास एवं आधुनिकता की होड़ में अपभ्रंश भाषाओं के अध्ययन में अरुचि के कारण विद्वानों का जबर्दस्त अभाव खटकने लगा था। अतः इसकी पूर्ति हेतु इस संस्थान की स्थापना की गई।

आज आवश्यकता इस बात की है कि तटस्थ दृष्टि से जैन विद्या के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन कर शोध पूर्वक उनका प्रकाशन करना एवं उसका व्यापक प्रचार-प्रसार करना ताकि जैन वाङ्मय को सभी समझ सकें। मुझे विश्वास है कि समाज का प्रबुद्ध युवावर्ग इस आवश्यकता की ओर ध्यान देगा एवं ऐसे संस्थानों के विकास में पूरा योगदान करेगा।

सामाजिक, शैक्षणिक एवं साहित्यिक संस्थाओं में कार्यरत रहने के कारण अनेक विद्वानों से मेरे सम्बन्ध घनिष्ठ होते गये। मेरे प्रति उनकी आत्मीयता और स्नेहिल दृष्टि ने जहां मेरे वैचारिक क्षितिज को व्यापकता प्रदान की वहां मुझे चिन्तन की ओर भी अग्रसर किया।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ का मंत्री भार सम्हालने के तत्काल पश्चात् सन् १९७९ के आचार्य श्री के अजमेर वर्षावास के समय अजमेर में संघ के कार्यालय सचिव श्री भूपराज

जैन के सुझाव से डॉ. नरेन्द्र भानावत मंत्री अखिल भारतीय जैन विद्वत परिषद को विद्वत गोष्ठी का आयोजन करने का मैंने अनुरोध किया जो उन्होंने सहर्ष स्वीकृत किया। उस वर्ष को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बाल वर्ष घोषित किये जाने से त्रिदिवसीय विद्वत गोष्ठी के विषय भी बालकों से सम्बन्धित रखे गये।

भारत भर के प्रमुख जैन विद्वानों ने इसमें भाग लिया। स्वयं आचार्य प्रवर ने बालक, शिक्षक एवं अभिभावक के त्रिकोण का जैन दृष्टि से विवेचन किया जो उनके गहरे पाण्डित्य का परिचायक था। संघ के मुख पत्र श्रमणोपासक का बाल विशेषांक डॉ. नरेन्द्र भानावत, श्री भूपराज जैन, डॉ. शान्ता भानावत के सम्पादकत्व में प्रकाशित किया गया। विद्वानों के विशिष्ट लेखों के साथ सचित्र कथाओं का भी इसमें प्रकाशन किया। इस विशेषांक की भूरि-भूरि प्रशंसा अन्य पत्र-पत्रिकाओं तथा आलोचकों ने की।

मैं इस विद्वत परिषद की अनेक गोष्ठियों में सम्मिलित हुआ एवं अपने विचार विद्वानों के सामने रखे, जिनको उन्होंने खूब पसन्द किया। श्री जैन विद्याचय, कलकत्ता की स्वर्ण जयन्ती के समय एवं आचार्य प्रवर के कानौड़ चातुर्मास के अवसर पर ऐसी ही गोष्ठियां मेरे प्रयत्नों से हुई है जो समाज के लिये उपयोगी रहीं। इन गोष्ठियों से केवल दृष्टि ही साफ नहीं होती है अपितु विकास एवं उन्नयन के मार्गों का अनुसंधान होता है। साथ-ही-साथ सामाजिक कार्यों में विद्वानों की महत्वपूर्ण भागीदारी भी बढ़ती है।

जिस समाज में विद्वानों का यथोचित सम्मान नहीं होता वह कभी भी आगे नहीं बढ़ पाता, ऐसी मेरी धारणा है। जैन समाज अर्थ परक बन जाने के कारण आज यदि पिछड़ रहा है तो उसका कारण विद्वानों के प्रति आदर एवं आस्था का अभाव है। मैंने इस कमी के पूर्ति हेतु यत्किंचित प्रयत्न बराबर किया है एवं मुझे इसमें सफलता भी प्राप्त हुई है। यही कारण है कि विद्वतजनों का मुझे अपार प्रेम एवं स्नेह प्राप्त हुआ है।

जैन साहित्य के लेखन और प्रकाशन को प्रोत्साहित करने के लिये भी संघ के तत्वावधान में 'स्व. श्री प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार' की स्थापना की गई। कवि हृदय श्री माणकचन्दजी रामपुरिया के एक मात्र युवा पुत्र श्री प्रदीपकुमार रामपुरिया के आकस्मिक स्वर्गवास के कारण उनकी स्मृति में इस पुरस्कार की घोषणा मेरे एवं श्री भूपराज जैन के अनुरोध पर श्री माणकचन्दजी रामपुरिया ने की। प्रारम्भ में यह पुरस्कार पच्चीस सौ रुपये का था।

प्रथम पुरस्कार आमंत्रित पुस्तकों एवं पांडुलिपियों में श्रेष्ठ घोषित श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा द्वारा लिखित "जैन दर्शन की वैज्ञानिकता" कृति पर अहमदाबाद के प्रसिद्ध टैगोर आडिटेरियम में प्रदान किया गया। इस समारोह की अध्यक्षता जैन दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान पंडित दलसुख भाई मालवणिया ने की। प्रधान अतिथि थे गुजरात युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर श्री शास्त्रीजी। संयोजन श्री भूपराज जैन ने किया था।

जैन साहित्य पर दिया जाने वाला यह प्रथम पुरस्कार था। अहमदाबाद के अनेक जैन मनीषी इसमें सम्मिलित हुए थे। उन्होंने जब राशि की न्यूनता की ओर संकेत किया तो मैंने संघ मंत्री की हैसियत से तत्काल इस राशि को को पांच हजार कर दिया। तुमुल करतल ध्वनि से इसका सबने स्वागत किया। मेरे अनुरोध पर श्री माणकचन्दजी रामपुरिया ने इसे स्वीकृत कर अपनी सहृदयता का परिचय दिया।

महंगाई एवं बढ़ते हुए मूल्यों को दृष्टिगत रखकर इस पुरस्कार की राशि बढ़ाकर ग्यारह हजार रुपये कर दी गई थी, किन्तु अब यह राशि इक्कीस हजार कर दी गई है एवं श्री माणकचन्दजी रामपुरिया ने हमारे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। श्री रामपुरिया जी की उदारता तथा जैन वाङ्मय के प्रति उनकी गहरी रुचि एवं विद्वत समाज के प्रति इस गहन निष्ठा के लिए मैं हार्दिक आभार

व्यक्त करता हूं। श्री रामपुरिया जी स्वयं कवि एवं साहित्य मर्मज्ञ हैं। उनके लगभग बीस काव्य संकलन एवं महाकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुरस्कार के प्राप्तकर्त्ताओं में श्री मिश्रीलाल जैन, डॉ. सागरमल जैन, डॉ. छगनलाल शास्त्री एवं डॉ. संजीव भानावत प्रमुख हैं।

विगत अनेक वर्षों से श्री गणेश जैन छात्रावास उदयपुर के संयोजक के दायित्व का भी मुझे निर्वाह करना पड़ रहा है। यह बाध्यतावश नहीं अपितु मेरी रुचि के अनुकूल है। शिक्षा क्षेत्र में अनेक वर्षों से सेवारत रहने के कारण मैं छात्रों की मानसिकता से पूर्णतया परिचित हूं अतः मेरे लिए यह कठिन कार्य भी नहीं है।

इस छात्रावास में प्रायः स्नातकीय एवं स्नातकोत्तर छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। उच्च श्रेणी के शिक्षार्थी होने के कारण उनको मर्यादित, अनुशासित एवं नियमोपनियम के अनुकूल बनाने के लिये गृहपति को छात्रों की मानसिकता समझते हुए सूझबूझ से काम लेना आवश्यक होता है। कुछ छात्रों के व्यवहार से रुष्ट होकर कानोड़ में आयोजित संघ की कार्यसमिति बैठक में इसे बन्द करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसका मैंने विरोध किया एवं इस छात्रावास के संचालन का दायित्व मैंने लिया। मैंने कहा कि शान्त क्रान्ति के सूत्रधार स्वर्गीय श्री गणेशाचार्य की स्मृति में स्थापित इस एक मात्र स्मृति चिन्ह को यदि हमने बन्द कर दिया तो इतिहास हमें कभी माफ नहीं करेगा। समाज ने मेरी इस बात का आदर किया। पिछले वर्ष यह छात्रावास अपनी रजत जयन्ती मना चुका है एवं इसके विस्तार और इसे व्यापक बनाने का मेरा प्रस्ताव क्रियान्वित किया जाने वाला है।

मेरे पूज्य पिताजी की स्मृति में नागौर (राजस्थान) में सेठ किशनलाल कांकरिया राजकीय उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की गई है। इस विद्यालय में सम्प्रति ३००० छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। अपने उच्च शिक्षण स्तर, अनुशासन एवं श्रेष्ठ शिक्षापरिणाम के कारण यह विद्यालय नागौर जिले ही में नहीं वरन समग्र राजस्थान के विख्यात विद्यालयों में इसकी गणना होती है।

हमारे गांव गोगोलाव में भी मेरे पूज्य पिताजी की स्मृति में सेठ किशनलाल कांकरिया आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की गई एवं इसका संचालन निरन्तर हमारी ओर से किया जा रहा है। इसमें प्रतिवर्ष पन्द्रह सौ रोगियों का निःशुल्क इलाज सुयोग्य एवं अनुभवी वैद्यराज आईदान जी उपाध्याय की देखरेख में किया जाता है। नागौर जिले में यह औषधालय अत्यन्त लोकप्रिय है।

राजस्थान का रेतीला प्रदेश होने के कारण गोगोलाव में पानी की वहुत समस्या रहती थी। गांव के तालाब में वरसात का जो पानी एकत्रित होता वह वर्ष भर के लिए अपर्याप्त होता अतः हमारे परिवार ने पक्का वांध वंधाकर पानी की समस्या काफी हद तक हल कर दी। एक पक्का कुंआं भी हमारी ओर से वनवाकर गांव की सेवा में अर्पित कर दिया फलतः पीने के पानी की समस्या भी हल हो गई। गोगोलाव में एक धार्मिक स्थान के निर्माण में भी हमारे परिवार का उल्लेखनीय सहयोग रहा है।

कलकत्ता में दमदम के निकट विराटी गांव में मेरी पूज्या माताजी की स्मृति में श्रीमती जेठीदेवी कांकरिया अस्पताल का निर्माण करवाकर हमने उत्तर दमदम म्युनिसिपेलिटी (सरकार) को सुपुर्द कर दिया।

शान्त क्रान्ति के सूत्रधार आचार्य श्री गणेशीलाल जी म० सा० के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा रही है अतः आचार्य श्री जी म० सा० का साहित्य प्रकाशित करने के लिये मैंने कलकत्ता में सन् १९५६ में श्री सम्यक् ज्ञान मंदिर के नाम से एक प्रकाशन संस्था का प्रारम्भ किया था, जिसके द्वारा निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित किये गये —

१ : जैन धर्म का इतिहास — मुनि श्री सुशील कुमारजी

२ : उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म० — मुनि श्री सुशीलकुमारजी
३ : पूर्ण स्वतंत्रता की राह — आचार्य श्री गणेशीलालजी
४ : भास्कर वाणी — मुनि श्री सुशील कुमारजी
५ : जवाहर किरणावली ३२, गृहस्थ धर्म द्वितीय भाग — संपादक पं० शोभाचन्द्र भरिल्ल
६ : जवाहर किरणावली ३३, गृहस्थ धर्म तृतीय भाग — संपादक पं. शोभाचन्द्र भरिल्ल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ व अन्य संस्थाओं से सम्बद्ध रहने तथा व्यावसायिक कार्यों से मुझे प्रायः यात्राएं करनी पड़ती थी। इन यात्राओं से मुझे अनुभव-गरिष्ठ होने में काफी अधिक मदद मिली। अर्थ संग्रह के लिये संघ की 'मूथायोजना' मेरे मंत्रीत्व काल में बनी थी अतः मूथायोजना के अन्तर्गत मुझे पूरे देश का कई बार भ्रमण करना पड़ा। इस भ्रमण में संघ के लिये अर्थ संग्रह के साथ-साथ मुझे अन्य कई सामाजिक अनुभूतियां भी हुई जो मेरी अक्षय निधि हैं। धर्म एवं समाज की सही स्थिति का भी सही आकलन इन्हीं यात्राओं के कारण मैं कर पाया। इन यात्राओं से मेरा यह विश्वास निश्चय में बदल गया कि अच्छे कार्य के लिये कभी अर्थाभाव नहीं रहता है। विद्यालय के लिये अर्थ संग्रह करते समय भी मेरा यह निश्चय शत-प्रतिशत सत्य साबित हुआ।

मैने सन् १९६५ में समस्त विश्व का भ्रमण किया। इस प्रवास में मैंने बैंकाक (थाईलैंड), सिंगापुर, मनीला, मलेशिया, हांगकांग, जापान, होनोलूलू, अमेरिका, कनाड़ा, इंग्लैंड, फ्रांस, बैरूत आदि स्थानों का परिभ्रमण किया। पुनः सन् १९७० में मैंने जापान की यात्रा की। विदेशों में मैंने जो अनुभव किया, उनमें समय की पाबन्दी, नागरिकता एवं शिष्ट आचरण प्रमुख हैं। हम हिन्दुस्तानी निर्धारित समय से एक घंटा विलम्ब से पहुंचने को तो विलम्ब मानते ही नहीं हैं। जहां चाहे वहां कूड़ा करकट फेंकना, थूकना, पान की पीक से दीवाल गंदी करना, यत्र तत्र खड़े होकर पेशाब करना आदि हमारी दैनन्दिन आदतों में शुमार है तथा साधारण-सी बात पर अशिष्ट आचरण हमारा स्वभाव है, किन्तु मैंने विदेश भ्रमण में जो शिष्टता, शालीनता, समय की पाबन्दी एवं नागरिकता का आचरण देखा, वह हमारे लिये आज अनिवार्य आवश्यकता है। हमारी कई कठिनाइयां तो हमारे स्वभाव एवं आचरण को सुधार कर आसानी से हल कर सकते हैं।

मैं समय की पाबन्दी का सख्ती से पालन करने के नितान्त पक्ष में हूं। शहरी जीवन व्यतीत करने के कारण शिष्ट आचरण एवं नागरिकता की भी कदम-कदम पर आज आवश्यकता महसूस हो रही है।

सामाजिक कार्यों के साथ-साथ खेलने एवं तैरने में भी मेरी अत्यधिक रुचि रही है। वालीबाल, क्रिकेट एवं बेडमिन्टन का मेरा पुराना शौक है। मैं स्वयं इसमें भाग लेता रहा हूं एवं आज भी अवसर मिलने पर मैं चूकता नहीं हूं। तैरना तो मेरे प्रतिदिन के क्रम में सम्मिलित है। कई बार तो मेरे नाती, पोते भी मेरे साथ तैरने के लिये जाते हैं। प्रदूषित वातावरण में आज स्वास्थ्य की रक्षा के लिये यह आवश्यक भी है। प्रतिदिन एक घंटा तैरने के कारण मैं अपने आपको तरोताजा महसूस करता हूं एवं आज ६५ वर्ष की उम्र के बाद भी मेरा स्वास्थ्य अच्छा है।

घुमक्कड़ स्वभाव के कारण मैंने कई लोगों को बहुत नजदीक से देखा है और पाया है कि वे प्रायः भूत एवं भविष्य की बातों में फंसे रहते हैं या पैसे के पीछे पड़े रहते हैं। वस्तुतः असली आनन्द तो वर्तमान में है। मैंने जहां तक हो सका सन्तुलित जीवन जीने का प्रयास किया है। न कभी फिजुल खर्ची की एवं न कभी कृपणता से रहा। परिवार के साथ प्रेम पूर्वक रहने का रास्ता मैंने अख्तियार किया।

मेरे बड़े भाई साहब श्री पारसमलजी मुझसे तेरह वर्ष बड़े थे। मुझे उन्होंने हमेशा एक पिता का प्यार दिया एवं अपने लड़कों से बढ़कर माना तथा मुझे सामाजिक सेवाओं के लिये निरन्तर

प्रेरित किया। मेरी पत्नी श्रीमती फूलकुमारी ने भी सदैव मेरे कंधे से कंधा मिलाकर कार्य किया। कभी भी मेरे किसी कार्य में वह बाधक नहीं बनी।

मेरी सफलता का रहस्य उसके सहयोग में ही निहित है। वह हंसमुख, मिलनसार एवं गृहकार्यों में अत्यन्त दक्ष है। सामाजिक कार्यों में भी इसकी निरन्तर रुचि रही है। वह श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन महिला समिति की कोषाध्यक्ष तथा अध्यक्ष रही है। मेरी अधिकांश यात्राओं में वह सदैव मेरे साथ रही है अत: मेरी कई कठिनाइयां तो उसके साथ रहने से ही हल होती रही हैं। मेरे सामाजिक कार्यों में उसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष बराबर सहयोग मिलता रहा है।

मेरे बड़े भाई सा० के पुत्र सुभाष एवं विनोद तथा मेरे पुत्र मनोहर एवं ललित का भी सहयोग मुझे बराबर मिल रहा है। मेरी तीनों पुत्रियों एवं जमाइयों का भी प्रेम पूर्ण बर्ताव मेरे साथ निरन्तर रहता है। मेरे पौत्र हर्ष, गौरव, सौरभ एवं पौत्रियां दिव्या तथा तृप्ति मुझसे अत्यन्त स्नेह रखते है। वे बहुधा मेरे तैरने के साथी भी बन जाते हैं एवं उनके साथ खेलकूद में भी मैं हिस्सा लेकर अपने बचपन की स्मृतियों को ताजा कर लेता हूं। अपने साथ क्रीड़ा करते देखकर ये बच्चे भी अपरिमित आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रसिद्ध हिन्दी कथाकार श्री प्रेमचन्दजी ने ठीक ही कहा है कि "बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन होता है"।

कभी कभी मुझे कुछ आपसी झगड़े झंझटों को सुलझाने एवं मनमुटाव को मिटाने के लिये मध्यस्थता का कार्य भी करना पड़ा है। मद्रास में आदरणीय श्री खींवराजजी सा० चोरड़िया द्वारा उनके पुत्रों में बिना किसी खास वजह के मन-मुटाव हो गया। श्री चोरड़िया सा० ने मुझे मद्रास बुलाया एवं वातावरण ठीक करने का निर्देश दिया। उनकी राय के अनुसार मैंने एवं सेठ मोहनमलजी सा० चोरड़िया के सुपुत्र श्री सरदारमलजी चोरड़िया ने प्रयास करके सारा मामला ठीक कर दिया। एतदर्थ श्री सरदारमलजी चोरड़िया ने बधाई में मद्रास स्थित उनके मकान में संघ का फ्लैट, जो तेरह हजार रुपये मासिक किराये पर लम्बी अवधि की लीज पर उनके पास था, को संघ को सौंपने का आग्रह एवं अनुरोध किया। मेरी भतीजी श्रीमती कान्ता चोरड़िया ने अथक प्रयास करके वह फ्लैट संघ को अर्पित करवा दिया फलत: संघ को प्रतिवर्ष दो लाख रुपये अतिरिक्त राजस्व की प्राप्ति होने लगी। श्री सरदारमलजी चोरड़िया एवं श्री खींवराजजी सा० चोरड़िया के परिवार के प्रति हम अत्यन्त कृतज्ञ है कि उन्होंने संघ को यह अपूर्व सहयोग दिया है। मेरी अपनी भतीजी श्रीमती कान्ता चोरड़िया (सुपुत्री श्री पारसमलजी कांकरिया) की उदारता एवं सहयोग के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

संघ ने इस उदारता के लिए मेरे अनुरोध पर सेठ श्री खींवराजजी सा० चोरड़िया का हार्दिक अभिनन्दन करने का निश्चय किया। तत्कालीन संघ अध्यक्ष श्री गणपतराजजी सा० बोहरा ने मेरे साथ मद्रास उनके घर पर जाकर यह अभिनन्दन पत्र चोरड़िया सा० को समर्पित किया। इस हर्षोल्लास के अवसर पर श्री खींवराजजी सा० चोरड़िया के सम्बन्धी प्रसिद्ध समाजसेवी श्री रतनचन्दजी नाहर ने संघ को इक्कीस हजार रुपये की राशि प्रदान कर आनन्द को द्विगुणित कर दिया।

मेरे जीवन का रथ निरन्तर गतिशील है। मेरी यही अन्यतम इच्छा है कि अपने इस जीवन से सेवाकार्य जितना भी सम्भव हो सके निरन्तर करता रहूं। श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के तत्वावधान में निम्नलिखित योजनाएं को क्रियान्वित करने की मेरी हार्दिक इच्छा है—

भावी योजनाएं :

मनुष्य का यह शरीर क्षणभंगुर है। इस जीवन की सार्थकता इसी में है कि मनुष्य सदैव दूसरों की सहायता एवं सहयोग के लिये तत्पर रहे। इसी भावना से उत्प्रेरित होकर सभा के घोषित लक्ष्य एक ऐसे अस्पताल की योजना हाथ में लेने का विचार है, जहां आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों की समुचित चिकित्सा की जा सके एवं असहाय तथा पीड़ित लोगों का नि:शुल्क इलाज हो सके। एक सौ शय्याओं के इस आधुनिक अस्पताल के संकल्प को शीघ्र मूर्त रूप देने हेतु सभा के अध्यक्ष

श्री रिखबदासजी भंसाली, उपाध्यक्ष श्री भंवरलालजी कर्णावट, मन्त्री श्री रिधकरणजी बोथरा प्रभृति महानुभाव अत्यधिक उत्कंठित हैं।

विकलांगों को जयपुर पैर प्रदान करने की स्थाई योजना के अन्तर्गत महावीर इण्टरनेशनल के सहयोग से हावड़ा में एक कार्यशाला (वर्कशाप) शीघ्र प्रारम्भ करना है जहां आवश्यकतानुसार जयपुर पैर का निर्माण कर विकलांगों को नि:शुल्क वितरित किये जा सके।

बुक बैंक का विस्तार कर प्रति वर्ष जरूरतमंद दो हजार छात्र-छात्राओं को नि:शुल्क पुस्तकें वितरित करना।

आवश्यकतानुसार नये स्थानों पर शिक्षण शालाओं का निर्माण कर शिक्षण प्रारम्भ करना।

साथियों एवं समाज के सहयोग से ये सारे कार्य शीघ्र सम्पन्न हो सकेंगे, ऐसा मेरा आत्म विश्वास है। मैं मानता हूं कि जहां चाह है, वहां राह भी है।

सरदारमल कांकरिया

बदल सकते हैं, बदलना चाहें तो

सरदारमल कांकरिया/डॉ. नेमीचन्द जैन कलकत्ता, १६ जनवरी, १९८४

डॉ. नेमीचन्द जैन : 'समाज' की आज धारणा क्या है?

सरदारमल कांकरिया : प्रचलित धारणा के अनुसार तो जिस समूह, या समुदाय के साथ हम रहते हैं, उसे ही समाज कहते हैं। थोड़ा आगे बढ़ते हैं, तो जैन समाज तक पहुंच पाते हैं।

ने. : आपका जैन समाज के किस समुदाय/समूह (तबके) से सम्बन्ध है?

स. : श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज से।

ने. : ऐसा होने पर भी क्या आप सोचते हैं कि आपका सम्बन्ध व्यापक है?

स. : कलकत्ते में जैन सभा है, जो सारे जैन समाज का प्रतिनिधित्व करती है, उसका एक बार अध्यक्ष बनने का मौका मुझे मिला था।

ने. : कौन-सा वर्ष था वह?

स. : १९७८। तब देखने में यह आया कि कोई तेरापंथी है, कोई स्थानकवासी है, कोई मन्दिरमार्गी है, कोई दिगम्बर है, सब अपने-अपने मत/सम्प्रदाय तक सीमित हैं।

ने. : आप क्या चाहते हैं? वे इस तरह रहें या न रहें?

स. : रहें भले ही, लेकिन कुछ ऐसे कार्य होने चाहिए, जिनसे एक ताकत बने।

ने. : यानी आप चाहते हैं कि जापानी पद्धति पर खेती हो, छोटे-छोटे खेत भी बने रहें और खेती भी बढ़े।

स. : बात ठीक है।

ने. : छोटे-छोटे तबके भी रहें और पूरा समाज भी।

स. : जहां सारे समाज के हित का प्रश्न हो, वहां हम सब लोग एक रहें।

ने. : कितने समय से आप समाज-सेवा में लगे हुए हैं? आपकी उम्र?

स. : मेरी उम्र पचपन साल है। समाज-सेवा के क्षेत्र में मैं हूं, ऐसा नहीं मानता, लेकिन एक-दो संस्थाओं से मेरा थोड़ा-बहुत सम्बन्ध अवश्य है। कलकत्ते के श्री जैन विद्यालय से मैं गत पच्चीस सालों से सम्बद्ध हूं। जब साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना हुई थी, आज से करीब इक्कीस साल पहले, तब उसमें मैं शुरू में सक्रिय रहा (आज भी हूं), और थोड़ा, लेकिन नियमित काम कर रहा हूं।

ने. : बतायेंगे, आज समाज के सामने कौन-सी ज्वलन्त/प्रमुख समस्याएं हैं?

स. : समाज के उस तबके के (जो बड़े शहरों में रहता है) सामने आर्थिक समस्या तो ज्यादा नहीं है, लेकिन छोटे शहरों में, विशेषकर देहातों में आर्थिक स्थिति पहले से सुधरी है। जिनके पास कभी खेती थी, वे खुद तो कृषि करते ही हैं, दूसरों से भी अब करवाने लगे हैं।

ने. : कर्नाटक में तो पूरे गांव-के-गांव खेतिहर हैं, वहां जैन भी खेती करते हैं।

स. : मुझे इसकी जानकारी नहीं है। मैं कर्नाटक में बड़े शहरों में ही अक्सर गया हूं।

ने. : क्या आप ऐसा समझते हैं कि जैनों के व्यसन आदि में पड़ जाने से उनकी आर्थिक स्थिति कुछ बदली है, क्योंकि परम्परा साक्षी है कि व्यसनों के साथ सम्पन्नता घटती है, उनके छूटने से वह बढ़ती है, या बढ़ सकती है।

स. : मेरा विचार कुछ भिन्न है। जो सम्पन्न हैं, उनमें व्यसन ज्यादा हैं।

ने. : व्यसन के साथ व्यक्ति हो, या परिवार उसका टूटना सुनिश्चित है। शक्ति-क्षय एक,

या दो पीढ़ियों के बाद ही व्यक्त होता है।

स. : ठीक है, लेकिन अभी तो उल्टा हो रहा है।

ने. : क्या आप सोचते हैं, जो व्यसन-लिप्त रहे हैं, वे ज्यादा सम्पन्न होते जा रहे हैं?

स. : नहीं, ऐसा नहीं है, लेकिन हो यह रहा है कि जो ज्यादा सम्पन्न हैं, या इत्तफाकन हो गये हैं, वे व्यसन में पड़ते जा रहे हैं। बेशक, गिरावट तो आ रही है, लेकिन गिरते-गिरते भी वे आर्थिक दृष्टि से इतने सम्पन्न हुए हैं कि फिलहाल उनके सामने कोई दिक्कत नहीं है। आपका कहना सही है कि एक या दो पीढ़ियों के बाद असर पड़ेगा। इतना मैं जरूर देखता हूं कि जो व्यक्ति व्यसन-ग्रस्त हैं, उनके शरीर पचास साल की उम्र में, या साठ तक ढीले हो जाते हैं, रोगग्रस्त रहने लगते हैं- किसी को मधुमेह है, किसी को 'हार्ट अटेक' या 'ब्लड प्रेशर', लेकिन जैन समाज में जैनधर्म की कुछ मान्यताओं के कारण आम आदमी और आदमियों से कम व्यसनी हैं।

ने. : यह है, लेकिन खान-पान में जो गिरावट आ रही है, उससे आप चिन्तित नहीं हैं क्या?

स. : मद्यपान का तो आज बड़े शहरों में फैशन-सा हो गया है, लेकिन जैन समाज में मांसाहारी बहुत कम मिलेंगे। मिलेंगे भी तो बहुत सम्पन्न लोग ही वे हैं।

ने. : पानी के बांध में एक छोटा-सा सुराख यदि हो जाए, तो धीरे-धीरे वह बड़ा हो जाता है। आप कह रहे हैं कि मांसाहारी 'कम' हैं, लेकिन यह छोटा सुराख किसी दिन बड़ा भी होने वाला है। क्या इस सिलसिले में हम कुछ कर सकते हैं?

स. : मेरा ख्याल है, आप या कोई भी इसमें सफल नहीं हो सकेगा।

ने. : मेरे सफल होने का तो प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि मैं तो सम्पादक हूं, नेता तो आप हैं।

स. : हम लोगों का सफल होना इसलिए मुश्किल है कि वे अधिक होशियार हैं या स्वयं को ज्यादा समझदार समझते हैं।

ने. : मुश्किल है, लेकिन असम्भव तो नहीं है।

स. : कोई काम असम्भव तो होता नहीं है।

ने. : अगर असम्भव नहीं है, तो समाधान क्या हो सकता है?

स. : समस्या यह है कि ये लोग प्रभावशाली इतने हैं कि हमारे बड़े-बड़े साधु/मुनिराज भी सब कुछ जानते हुए भी उनसे कुछ कह नहीं पाते हैं। एक तो उनका वर्चस्व है, दूसरे आर्थिक सम्पन्नता या ऊंचे ओहदों के कारण उनकी प्रशंसा होती है। वस्तुतः ऐसा कुछ भी नहीं किया जा रहा है कि उस तरफ, यानी मांसाहार न करने की तरफ उनका ध्यान जाए या उन्हें ऐसा करने से रोका जाए।

ने. : यदि मैं यह निष्कर्ष निकाल लूं, तो क्या आपको कोई आपत्ति होगी कि साधु-समाज भी ऐसे लोगों से आज आतंकित है?

स. : आतंकित है, यह तो मैं नहीं कहूंगा, लेकिन जानते हुए भी वे अनजान हैं, ऐसा आप कह सकते हैं।

ने. : खान-पान के अलावा क्या कोई नैतिक समस्या भी है?

स. : नैतिक समस्या, यह शब्द ही बड़ा मुश्किल है। नैतिकता ज्यादातर व्यक्ति पर निर्भर है।

ने. : फिर भी कुछ समस्याएं नैतिक हैं।

स. : मिलावट करना, कम तौलना आदि समस्याएं हैं, लेकिन सही और शुद्ध आचरण करने वाले जैन और जैनेतर दोनों आज भी हैं।

ने. : कहूं कि कुल मिलाकर हमारी प्रामाणिकता घटती जा रही है ?

स. : यह मानना पड़ेगा।

ने. : कोई उपाय है इसका ?

स. : है, लेकिन आजकल इतनी भगदड़ है कि उसमें लोग और-और बातें भूलते जा रहे हैं।

ने. : समाज-सेवा में आपको कुछ कठिनाइयां तो आती ही होंगी ?

स. : आती हैं, समाज में जब कोई काम करता है, तो चाहे वह काम सही ही क्यों न हो, कुछ लोग उसके विरोधी अवश्य हो जाते हैं। फिर भी मेरा मानना है कि जैन समाज में ज्यादातर लोग प्रशंसा ही करते हैं। कुछ विरोधी तो सब कहीं होते हैं।

ने. : इन्हें विघ्न-संतोषी कहिये।

स. : कह दीजिये, फिर भी जैन समाज काफी अच्छा है।

ने. : अच्छे कामों की ज्यादातर प्रशंसा करता है।

स. : हां, मैं ऐसा मानता हूं।

ने. : यह आपका अपना अनुभव है ?

स. : हां।

ने. : यह तो अच्छी बात है। इससे अच्छे कामों का सिलसिला आगे बढ़ेगा।

स. : काम तो बढ़ रहे हैं, लेकिन कुछ काम ऐसे भी हैं जो नहीं, या कम होते जा रहे हैं ?

ने. : कौन-से काम ?

स. : शिक्षा, सेवा, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में काम कम हो रहा है। स्कूल भी वही पुराने ढर्रे के हैं।

ने. : नया कुछ नहीं हो रहा है क्या ?

स. : धर्म-स्थान बन रहे हैं। ऐसे ही स्थूल कार्यों पर भारी खर्च हो रहा है।

ने. : धर्म-स्थानों में आये दिनों चोरी की वारदातें बढ़ रही हैं। ऐसे में क्या नये धर्म-स्थल अब और बनने चाहिये ?

स. : इससे भी एकदम इनकार नहीं किया जा सकता। धर्म-स्थलों की भी अपनी महत्ता है, लेकिन वे सादगीपूर्ण हों, अनावश्यक खर्च उनमें, या उनके निमित्त न हो, इसका ध्यान तो रख ही सकते हैं।

ने. : धर्म के साथ सादगी तो होनी ही चाहिये।

स. : आज इसके विपरीत हो रहा है, संगमरमर आदि पर काफी खर्च होता है।

ने. : इस तरह के व्यय को बचा कर हम इसे मानव-सेवा में लगा सकते हैं। कभी-कभी ऐसे क्षण भी आये जब आप काम करते-करते निराश हुए हों ?

स. : कई बार, लेकिन ऐसे समय आत्मीयजन या मित्रों के साथ विचार-विमर्श करने से नया उत्साह भी मिला है। मेरी समझ में निराश होने की जगह मिल-बैठ कर हल खोजने के लिए प्रयत्न करना बेहतर है। किसी कारण यदि गलती हो गई हो, जिससे निराशा आई हो, तो उसे भविष्य में न करने का संकल्प लेने और सावधानी बरतने से आशा का संचार होता है।

ने. : क्या हमारे समाज में पुरुषों के समान ही स्त्रियां भी सेवा-कार्य कर रही हैं ?

स. : स्त्रियां सेवा नहीं कर रही हैं, ऐसा नहीं है, लेकिन इस क्षेत्र में उनकी संख्या बहुत कम है। कारण यह है कि स्त्रियां घर के कामों से बहुत बंधी होती हैं। उनके सामने कई समस्याएं रहती हैं। बच्चे यदि छोटे हैं, तो उनके साथ जुड़ना आवश्यक होता है। आने-जाने की भी दिक्कतें रहती हैं। पढ़ी-लिखी भी वे कम हैं। समाज की हालत आज यह है कि स्त्री-वर्ग जाग तो रहा है, लेकिन

समाज-सेवा में वह उतना नहीं बढ़ पा रहा है, जितना उसे बढ़ना चाहिये।

ने. : स्त्रियां चहार दीवारी को छोड़कर तेजी से बाहर आ रही हैं, लेकिन क्या ऐसा होने से पारिवारिकता में कमी नहीं आयेगी ?

स. : मैं नहीं मानता कि इससे पारिवारिकता में कोई कमी आयेगी, लेकिन समाज-सेवा के क्षेत्र में उन्हें जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, उन्हें नजर-अंदाज नहीं किया जा सकता। ऐसी दिक्कतों को ध्यान में रखकर हम यदि विचार करें, तो निःसंदेह स्त्रियां भी सेवा-क्षेत्र में आगे अच्छा कार्य कर सकेंगी।

ने. : क्या यह सब पुरुष पसन्द कर रहा है ?

स. : मैं जिस 'समाज' से सम्बन्धित हूं, उसमें तो पुरुष न सिर्फ पसन्द कर रहा है, बल्कि उन्हें प्रोत्साहन भी दे रहा है, सहयोग भी कर रहा है।

ने. : तरुणों की समस्या भी हमारे सामने है। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं, जिस धर्म में वे हैं, उसे वे नहीं जानते। यह चिन्ता का विषय है। एक तो युवक, दूसरे उनमें भरपूर ऊर्जा है। उन्हें धर्म/सेवा में कैसे प्रवृत्त करें ?

स. : युवक धर्म पर श्रद्धा नहीं रखते, ऐसा नहीं है। श्रद्धा वे रखते हैं, लेकिन जहां तक आचरण का प्रश्न है, वे अपने चारों ओर देखते हैं, और जो नेता हैं, जिनका समाज में सर्वोच्च स्थान है, उन्हें देखकर वे निराश हो जाते हैं। युवक आडम्बरों को, मिथ्या मान्यताओं को सामान्यतः पसंद नहीं करते, इसीलिए वे समाज के ऐसे कामों में आगे नहीं आते। मेरा तो अनुभव है कि हम जब चन्दा, या दान लेने जाते हैं, तो जहां युवक पदाधिकारी हैं, या मालिक हैं, वहां 'निर्णय' जल्दी मिल जाता है। या तो वे 'ना' कह देते हैं या तत्काल दे देते हैं और ठीक-ठीक समझ लेने पर उदारतापूर्वक देते हैं, जबकि बुजुर्ग दान देने में बहुत आनाकानी, ढीलापन या कंजूसी दिखाते हैं।

ने. : यदि युवक को हम एक न्यायोचित्त जीवन की ओर लाना चाहते हैं, तो क्या हमें अपने निजी जीवन में परिवर्तन नहीं करना पड़ेगा ?

स. : मेरा ख्याल तो यही है कि जैसे हम हों, वैसे ही हम दीखें, न कम, न ज्यादा।

ने. : यानी हमारा भीतर-बाहर एक हो।

स. : हां।

ने. : यह तो आपने बहुत ऊंची बात कह दी। क्या आप चाहते हैं कि समाज से अमीरी-गरीबी मिट जाए, तो यह बात बने कैसे ?

स. : जैनधर्म के ठीक-ठीक अध्ययन से।

ने. : बच्चों का समाज में बहुत बड़ा स्थान है। बच्चे सबको देखते-परखते हैं। क्या बच्चों पर संस्कार डालने का हमने कोई विशेष प्रयत्न किया है ?

स. : सबसे बड़ी आवश्यकता आज यही है, लेकिन जिस ढंग के स्कूलों में बच्चों को उनके अभिभावक पढ़ाना चाहते हैं, वैसे स्कूल समाज में बहुत-बहुत कम हैं।

ने. : मानकर चलें कि नहीं हैं। अगर हैं भी तो नगण्य हैं।

स. : हां।

ने. : होने चाहिये, ऐसा आप भी अनुभव करते हैं।

स. : छोटे बच्चों में जैसे संस्कार होने चाहिये, वैसे हों, तो समाज को लाभ होगा, जो बच्चे क्रिश्चियन स्कूल में जाते हैं, उनके खान-पान में अन्तर आ जाता है, उदाहरण के लिए मेरे रिश्तेदार का एक बच्चा, जो क्रिश्चियन स्कूल में पढ़ता था, घर आकर बोलता था : 'मम्मी, मैं भी अण्डा खाऊंगा। मुझे अण्डा दो। मेरा दोस्त भी खाता है।' तो हमें ऐसे स्कूल बनाने होंगे, जहां शाकाहारी

खान-पान, अहिंसक रहन-सहन को पोषण और प्रोत्साहन मिल सके।

ने. : स्कूल-कॉलेजों में गृह-विज्ञान (होम साइन्स) भी पाठ्यक्रम में होता है। हमारे समाज की लड़कियां जो गृह-विज्ञान पढ़ती हैं, उन्हें आमलेट आदि बनाने पर विवश किया जाता है, अतः हमें गृह-विज्ञान के पाठ्यक्रमों में उचित परिवर्तन या संशोधन करवाने की पहल करनी चाहिये, ताकि एक अहिंसक और शाकाहारी समाज की लड़की को धक्का न लगे। हमारी अज्ञानता और प्रयत्न के अभाव में ही यह सब चल रहा है।

स. : हमें इस दिशा में अवश्य ही ठोस प्रयत्न करना है।

ने. : क्या आप उस जैन साहित्य से संतुष्ट हैं, जो आज प्रकाशित हो रहा है, हमारे सामने लगातार आ रहा है?

स. : पहले पता लगायें कि इसे पढ़ने वाले कितने हैं?

ने. : सर्वेक्षण होना चाहिये।

स. : मेरा अनुभव है कि सिर्फ पढ़ने वाले ही नहीं, ठीक से लिखने वाले भी बहुत कम हैं। इस समय दो तरह का साहित्य निकल रहा है, एक, जो बड़े उच्चस्तर का होता है, जो आम आदमी के लिए नहीं होता। मात्र ग्रंथालयों या शोधार्थियों के लिए होता है। दूसरा, वह जिसका अपना कोई स्तर ही नहीं है। ऐसे साहित्य की भरमार है। वैसे पढ़ा तो यह भी बहुत कम ही जाता है, इसलिए साहित्य ऐसा होना चाहिए, जो समाज और पाठक की अपेक्षा-आकांक्षा को देखकर तैयार किया गया हो।

ने. : क्या आप साचते हैं कि साहित्य वय-वर्ग के अनुसार होना चाहिये?

स. : जी!

ने. : वर्गीकृत साहित्य का प्रकाशन होना चाहिये। सम्बन्धित अवस्था/वर्गों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर जो साहित्य प्रकाशित होगा, वही सार्थक और सफल होगा। अन्त में मैं आपको एक महत्वपूर्ण कार्य के लिए बधाई देना चाहूंगा कि आपने श्री जैन विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर 'जैन पत्रकारिता पर संगोष्ठी' आयोजित की। इसकी प्रेरणा आपको कहां से मिली?

स. : विचार कई दिनों से बन रहा था। हमारी समाज में लगभग १५०-२०० पत्र-पत्रिकाएं निकलती हैं। समाज के सामने कई ऐसी समस्याएं आती हैं कि जब हमारे पत्र एक नहीं होते। अपने-अपने आम्नाय, सम्प्रदाय, पंथ आदि को लेकर वे ज्यादातर अलग-अलग राहों पर चलते रहते हैं। वे एक-दूसरे के विरुद्ध भी लिखते हैं। इच्छा हुई कि क्यों न इसका कोई हल खोजा जाए। मैंने डॉ. नरेन्द्र भानावात से इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। वे तैयार हो गये, अतः 'जैन पत्रकारिता' पर इस संगोष्ठी के आयोजन का निश्चय किया गया। आप तो इसके प्रत्यक्षदर्शी ही नहीं, सहयोगी भी हैं, संगोष्ठी की फलश्रुति उत्साहवर्द्धक है। इससे जैन पत्रकारों को अपना संगठन बनाने की जो प्रेरणा हुई है, वह सुखद ही मानी जाएगी।

ने. : आप इससे संतुष्ट हैं?

स. : हां! पहले प्रयास में इतना हो गया, अतः संतुष्ट हैं।

ने. : कोई भावी योजना भी है क्या?

स. : यही कि जैन पत्रकारों का एक संगठन बन जाए। संगठन स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हो ताकि जैन समाज पर जब कभी कोई आपत्ति या संकट आये या किसी समस्या को लेकर लोकमत तैयार करना हो, तो सारे जैन पत्र मिलकर प्रचार-प्रसार कर सकें। कम-से-कम जैन पत्र-पत्रिकाएं परस्पर निन्दा या विरोध तो तत्काल बन्द कर ही दें।

ने. : ऐसे संगठन से जैन पत्रकारों को तो लाभ होगा ही, क्या समाज को भी कोई लाभ मिलेगा?

स. : समाज का बहुत लाभ होगा। जैसा मैंने अभी बताया था कि कई बार ऐसी उलझनें आ खड़ी होती हैं कि समाज पर लांछन लगाये जाते हैं, वातावरण को दूषित किया जाता है, तब इसका हल क्या हो? इस तरह की कई समस्याएं समाज के सामने रहती हैं। मेरी समझ में इस कमी को जैन पत्र-पत्रिकाएं ही पूरा कर सकती हैं। वे स्वस्थ सामाजिक वातावरण तैयार कर सकती हैं।

ने. : क्या भविष्य में जैन पत्रकारों के लिए कोई 'वर्क शॉप' (कर्मशाला) आयोजित करने की योजना है?

स. : समाज सहयोग के लिए तैयार है। संगठन जो भी सहयोग चाहेगा, समाज सहर्ष देगा। आप तो जानते ही हैं कि जैन पत्र-पत्रिकाओं का स्तर इधर कुछ गिरा है। उसकी समीक्षा हो। उसमें सुधार हो। परस्पर आलोचना यदि हो, तो वह रचनात्मक और स्तर की हो।

ने. : स्तरीन हो।

स. : निम्न स्तर की न हो, घटिया भाषा का प्रयोग न हो। शालीनता हर कदम पर बनी रहे।

ने. : आप चाहते हैं कि पत्रकार शालीन वातावरण बनायें।

स. : जी।

ने. : बहुत-बहुत आभार। कांकरियाजी, आप समाज की इतनी सेवा कर रहे हैं और हम सबके साथ एक सुखद सुबह की प्रतीक्षा में हैं। ◻ ◻

– तीर्थंकर के सौजन्य से

जैन सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए यह करें

● सरदारमल कांकरिया
२९, क्वीन्स पार्क, कलकत्ता-१९

कोसाणा के विद्वत् सम्मेलन के विचारार्थ विषय का जो चयन है "जैन सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार" उसके लिए मैं आयोजकों को बधाई देना चाहता हूं। वास्तव में विषय का निर्वाचन अति उत्तम है, किन्तु साथ ही इस विषय में सम्पन्न होने वाले विचार-विमर्श को कार्यरूप में परिणत करना उतना ही दुष्कर है। इतना होने पर भी इस सामयिक विषय के चयन पर एक बार फिर मेरी हार्दिक बधाई।

जैन धर्म : विश्व धर्म

जैन धर्म में विश्व धर्म बनने की समस्त योग्यतायें हैं, फिर भी यह धर्म सिमटता जा रहा है। इसका क्या कारण है ? जैन अनुयायियों को इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने के लिए सर्वप्रथम आत्म-विश्लेषण करना पड़ेगा और इस गोष्ठी ने हमें इसके लिए अवसर दिया है।

सच तो यह है कि आज के तनाव भरे वातावरण में सारे विश्व को जैन धर्म के सिद्धान्तों की महती आवश्यकता है, किन्तु जैन धर्म के मानने वाले इसके प्रचार के लिए केवल श्रमणों के ही आश्रय पर निर्भर हो गये हैं। दूसरी ओर जैन श्रमण कठिन क्रियाओं में व्यस्त रहने से प्रचार-प्रसार का अपेक्षित कार्य नहीं कर पाते। अत: जैसा प्रचार-प्रसार होना चाहिये था, नहीं हो पाया।

अतीत की ओर झांके तो पायेंगे कि सम्राट् अशोक ने स्वयं के साथ ही अपने सम्पूर्ण परिवार को भी प्रचार के लिए दांव पर लगा दिया। अपनी पुत्री संघमित्रा और पुत्र महेन्द्र को भी विदेशों में भेजा, तभी बौद्ध धर्म विश्व धर्म बन सका। कोई भी धर्म तब तक लोकप्रिय नहीं हो सकता, जब तक उसके पास युगानुकूल और लचीली प्रचार-पद्धति न हो। जैन समाज आत्म-केन्द्रित रहा, फलत: प्रचार की ओर एक सहज उपेक्षा का भाव बना और धर्म सिकुड़ता चला गया। धर्म का पावन स्पर्श, उसका अमृतमय सन्देश प्राप्ति के आकांक्षियों तक न पहुंच सका।

इस कमी की पूर्ति हेतु अब भी हम सजग हों तो बहुत कुछ कर सकते हैं। क्रियाकांडों पर अधिक बल देने की परम्परा से अलग हट कर हमें जैन धर्म की सहजता पर बल देना होगा। आत्मगुणों के विकास को पुन: महत्व देना होगा। जब हम ऐसा कर सकेंगे तो विभिन्न जैन सम्प्रदायों को साथ बिठा सकेंगे। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष के स्थान पर समता स्थापित कर शिखरजी तीर्थ जैसे अनेकानेक झगड़ों का निराकरण कर सकेंगे। सन्त-मुनिराजों में क्रिया की कठोरता और भिन्नता के कारण जो उलझनें बढ़ जाती हैं, जिससे एक संवत्सरी जैसे प्रश्न के सर्वमान्य हल पर हम नहीं पहुंच पाते, ऐसी सभी समस्याओं का हल भी धर्म की व्यापकता बढ़ने से होगा। जैसे-जैसे धर्म विश्व-धर्म का आकार लेने लगेगा, श्रमणों का हठीला रुख लचीला बनने लगेगा, पर इसके लिए समस्या फिर वही आती है प्रचार-प्रसार की।

मेरी समझ में जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए श्रमण वर्ग के साथ-साथ योग्य गृहस्थ वर्ग का अभ्युदय होना भी आवश्यक है। श्रमण वर्ग को इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। उन्हें जैन धर्म को विश्व धर्म बनाने के लिए योग्य कार्यकर्त्ताओं की एक विशाल टीम खड़ी करनी

● श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद द्वारा कोसाणा में आयोजित जैन सिद्धान्त प्रचार-प्रसार संगोष्ठी (११, १२, व १३ नवम्बर, '८९) में पठित निबन्ध।

होगी। उन्हें सम्मान और स्नेह प्रदान करना होगा। साथ ही प्रचार-प्रसार के लिए सेवा को एक सशक्त माध्यम के रूप में अपनाना होगा। आज ईसाई धर्म मात्र शिक्षा और चिकित्सा को सेवा का संसाधन बनाकर सारे विश्व में छा गया है। मदर टेरेसा ने सेवा के क्षेत्र में जो अद्भुत कीर्तिमान स्थापित किया है, उससे सीख लेनी होगी। हमें भी गांव-गांव में स्कूल, छात्रावास व चिकित्सालय खोलने होंगे। जैन समाज एक धनवान समाज है, वह ये संस्थायें स्थापित कर सकता है, किन्तु इसके लिए उसे जबर्दस्त प्रेरणा की आवश्यकता है। जैन धर्म में गृहस्थ वर्ग पर श्रमण वर्ग का जबर्दस्त असर है, वर्चस्व है। वे श्रमणों के चातुर्मास पर दिल खोलकर धन व्यय करते हैं। आज श्रमण वर्ग के एक-एक चौमासे में एक लाख रुपये से लेकर ३०-४० लाख रुपये तक भी खर्च होते हैं, किन्तु चौमासे के बाद उस गांव या शहर में इस भारी-भरकम व्यय का कोई असर नजर नहीं आता। आज यदि श्रमण वर्ग अपने रुख में थोड़ा-सा भी परिवर्तन करे तो एक नई क्रांति आ सकती है। यदि श्रावक वर्ग तय कर ले कि श्रमण वर्ग का जहां चातुर्मास होगा, वहां या क्षेत्रीय आवश्यकतानुसार आस-पास छोटा या बड़ा स्कूल-औषधालय जरूर बनेगा और जैन कार्यकर्त्ता उसे सेवा भाव से सम्भालेंगे तो देखते-देखते देशभर में ऐसी सेवाभावी जैन संस्थाओं का जाल बिछ जायेगा। इस प्रकार के सेवाकार्यों से ही हम जन-जन को अपनी ओर आकर्षित कर सकेंगे। पूज्य श्रमण वर्ग को इस पर गम्भीरता से चिंतन करना चाहिए।

छुआछूत का राजरोग

एक और बात का ध्यान रखना होगा कि प्रचार कार्य में जो भी श्रमण या श्रावक भाग लें वे छुआछूत से दूर रहें। जैन धर्म में तो हरिकेशी मुनि हुए हैं जो चांडाल कुल में पैदा हुए थे। जैन धर्म अपने सिद्धान्तों में भी कर्म से ही जाति मानता है, अन्य से नहीं, पर यह सिद्धान्त व्यवहार में उपेक्षित होता जा रहा है। यदि सेवा के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार हम करना स्वीकारते हैं, तो हमें छुआछूत के राजरोग से स्वयं को पूर्णत: मुक्त रखना होगा। जो भी श्रमण वर्ग तथा योग्य कार्यकर्त्ता प्रचार हेतु जायें वे सामान्य जन के साथ, उन्हीं के साधारण मकानों में रहें। उन्हीं के घरों से जो भी रूखा-सूखा भोजन मिले, उसे ही ग्रहण करें। तभी आप उनके दिलों में उतर सकते हैं।

भगवान महावीर स्वामी जो कि संसार के सबसे जबर्दस्त घुमक्कड़ थे, स्थान-स्थान पर पुराने मन्दिरों में, कुम्हारों के मोहल्लों में व ऐसे ही उपेक्षित क्षेत्रों में ठहरते थे, निवास करते थे। प्रभु महावीर कभी राजप्रसादों में नहीं ठहरते थे, किन्तु हमारे श्रमण करोड़पति श्रावकों के भव्य प्रासादों में निवास करने लगे हैं, फलत: बीहड़ क्षेत्रों में विचरण में बहुत से श्रमण असुविधा भी महसूस करने लगे हैं। यह स्थिति जैन धर्म को जन-धर्म बनने में बाधा पहुंचाती है।

दो महाप्रयास

गत ३०-४० वर्षों में जैन धर्म को जन-जन तक पहुंचाने के दो महाप्रयास हुए। दो क्रांतियां हुईं- प्रथम वीरवल प्रवृत्ति और दूसरी धर्मपाल प्रवृत्ति। ये दोनों प्रवृत्तियां स्वयं में एक अनूठी शांत-क्रांति को समाहित किये थीं। बड़ी-बड़ी रक्तरंजित क्रांतियां मानव मन को समता की जो तृप्ति और शांति नहीं दे पाई थीं, वे इन दोनों प्रवृत्तियों ने सहज प्रदान कीं। पूरे के पूरे समाज के एक साथ उत्थान का एक अविश्वसनीय लगने वाला विलक्षण कार्य प्रारम्भ हुआ और यौवन की ओर बढ़ा, किन्तु उसे असमय ही बुढ़ापे ने आ घेरा है। कारण वही- श्रमण वर्ग ने इन कार्यों में पर्याप्त रुचि नहीं ली। आवास और भोजन की ऊंचे स्तर की व्यवस्था इन गांवों में सम्भव नहीं थी और इसलिए श्रमण वर्ग ने पूर्ण मनोयोग से कार्य नहीं किया। फलत: श्रावक वर्ग ने भरपूर अर्थ सहयोग भी नहीं दिया। इससे ये महान् और ऐतिहासिक प्रवृत्तियां जो ४०-४० हजार लोगों को अन्दोलित, उत्प्रेरित कर पाई थीं, अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकीं। यहां तक कि

हमारा परम्परावादी समाज इन प्रवृत्तियों से खुश भी नजर नहीं आ रहा है। जरूर कुछ व्यक्ति रुचि लेकर कार्य कर रहे हैं, पर यदि शेष समाज केवल मन और वचन से ही समर्थन कर दे तो इन दोनों प्रवृत्तियों में व्यसनमुक्त समाज, सदस्यों की संख्या लाखों में पहुंच जाये। श्रमण वर्ग अधिकतर उदासीन है- न जाने क्यों ?

सुझाव

अन्त में जैन धर्म को जन-जन तक पहुंचाने के लिए मैं सार रूप में कुछ सुझाव देना चाहता हूं-

(१) बड़े-बड़े सन्तों, आचार्यों के चातुर्मासों में अन्य आडम्बर-खर्चे कम करके स्कूल, अस्पताल, छात्रावास आदि बनाने को प्राथमिकता दी जाये। मंदिर, उपाश्रय व स्थानकों में भी सेवा केन्द्रों का संचालन किया जावे। इनके संचालन हेतु समाज के सेवाभावियों और आवश्यकता होने पर योग्य वैतनिक कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति की जाये। ऐसा करने पर मात्र १० वर्ष में ही देशभर में प्रचार-प्रसार की जबर्दस्त भूमिका तैयार मिलेगी।

(२) योग्य और सेवाभावी कार्यकर्त्ताओं का चयन करने और उनके सम्मान के अनुरूप स्नेहपूर्ण समुचित व्यवस्थायें करने को प्राथमिकता दी जावे। कार्यकर्त्ताओं के साथ कैसा व्यवहार हो, उनकी समस्याओं के प्रति कैसी दृष्टि हो, आदि विषयों पर सम्पूर्ण समाज को सावधानी से निर्णय लेना चाहिये।

(३) विश्वभर में जैन सिद्धान्तों के प्रसार हेतु एक स्तरीय आचार संहिता का निर्माण और उसका अंग्रेजी में भी प्रकाशन होना चाहिये। इसके लिये सभी जैन सम्प्रदायों के विद्वानों की समिति बनाई जावे और निर्मित पुस्तकों को अत्यन्त कम मूल्य में संसार भर के विद्वानों को भेजा जाये।

यदि विचार गोष्ठी में मेरे विचारों के संदर्भ में किंचित् स्पन्दन भी अनुभव किया जा सकेगा, तो वह दिन दूर नहीं, जब जैन धर्म, विश्व धर्म बनने की ओर अग्रसर हो सकेगा।

श्री रामचन्द्रजी कांकरिया
श्री मुलतानमलजी कांकरिया
श्री किशनलालजी कांकरिया
श्रीमती जेठीदेवी
स्व० श्री पारसमल कांकरिया
श्रीमती जेठीदेवी
सुन्दर बाई गोलछा
श्री पन्नालालजी गोलछा
बिरजा बाई गेलड़ा
श्री महावीर चन्द्रजी गेलड़ा
आबू बाई वैद
श्री छत्तरसिंहजी वैद
सरदारमल कांकरि
(२८-१-१९२९)
श्रीमती फूलकुमारी
स्व० पतासी बाई गोलछा
श्री देवराजजी गोलछा
बदाम बाई लूंकड़
श्री मंगल चन्दजी लूंकड़
स्व० अमराव बाई भूरा
श्री वाल चन्दजी भूरा
शान्ता बाई मिन्नी
श्री शिखर चन्दजी मिन्नी
चंचल बाई बोथरा
ी जीतमलजी बोथरा
सुभाष चन्द कांकरिया
कंचन देवी कांकरिया
विनोद चंद कांकरिया
सुलेखा कांकरिया
प्रभा भंसाली
श्री विमलजी भंसाली
मृगा कोठारी
श्री प्रकाश कोठारी
शीला चोरड़िया
श्री प्रफुल्लजी चोरड़िया
कान्ता देवी चोरड़िया
श्री नोरतनमलजी चोरड़िया
लीला वैद
श्री सुन्दरलालजी वैद
शोभा मालू
श्री कंवरलालजी मालू
मनोहर कांकरिया
प्रमिला कांकरिया
ललित कांकरिया
शशि कांकरिया
अनुमा
रुचिरा
निधि
मयंक
सृष्टि
श्रुति
सिद्धार्थ
शिल्पा
विमल
सोनल
दिव्या
गौरव
हर्ष
सौरभ
तृप्ति

नन्हामुन्ना सरदारमल

पूज्या माताजी के साथ

मित्र रेखचन्द के साथ

मित्र घेवरचन्द के साथ

मित्र साँवरमल सराफ के साथ

भतीजे प्रेम के साथ
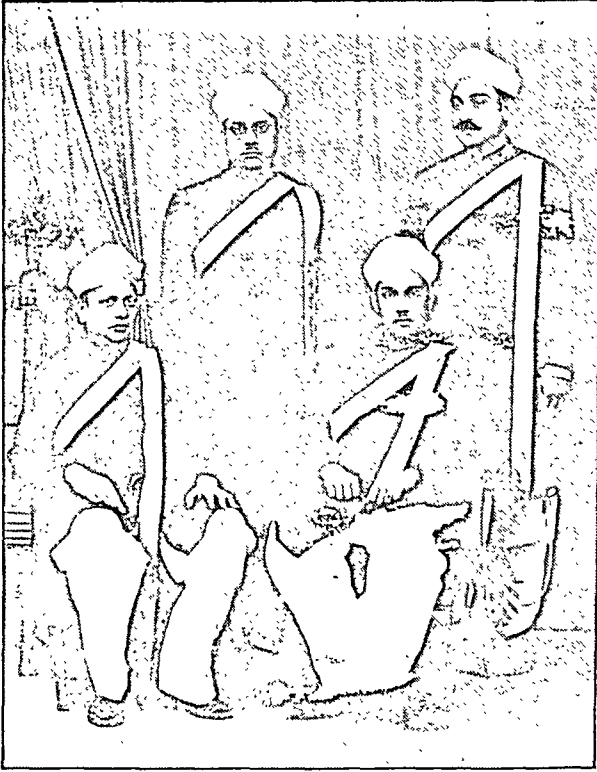
हैदराबादी वेशभूषा में अपने बहनोई के साथ
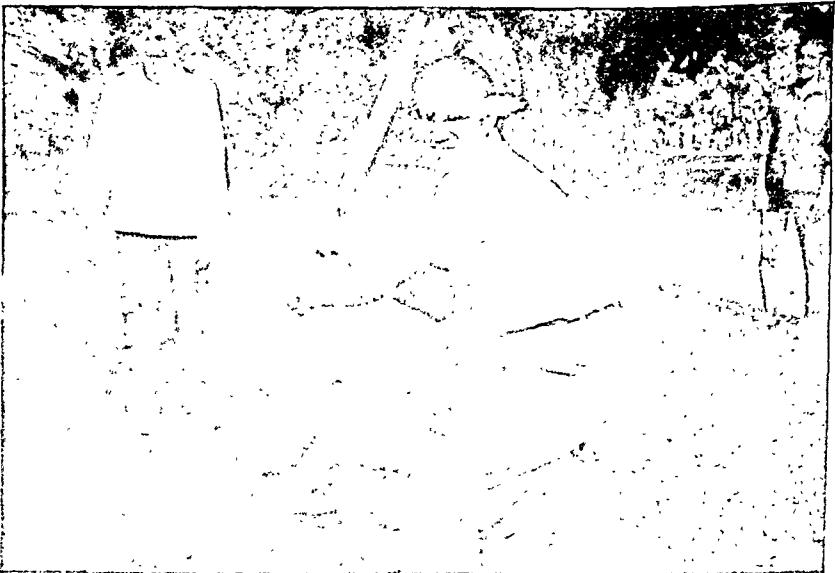
क्रीडा प्रेमी मन्दारमलजी

सहधर्मिणी फूलकंवर और कांकरियाजी

पति-पत्नी कश्मीरी वेशभूषा में

श्री कांकरियाजी अपनी पत्नी एवं बहनों के बीच
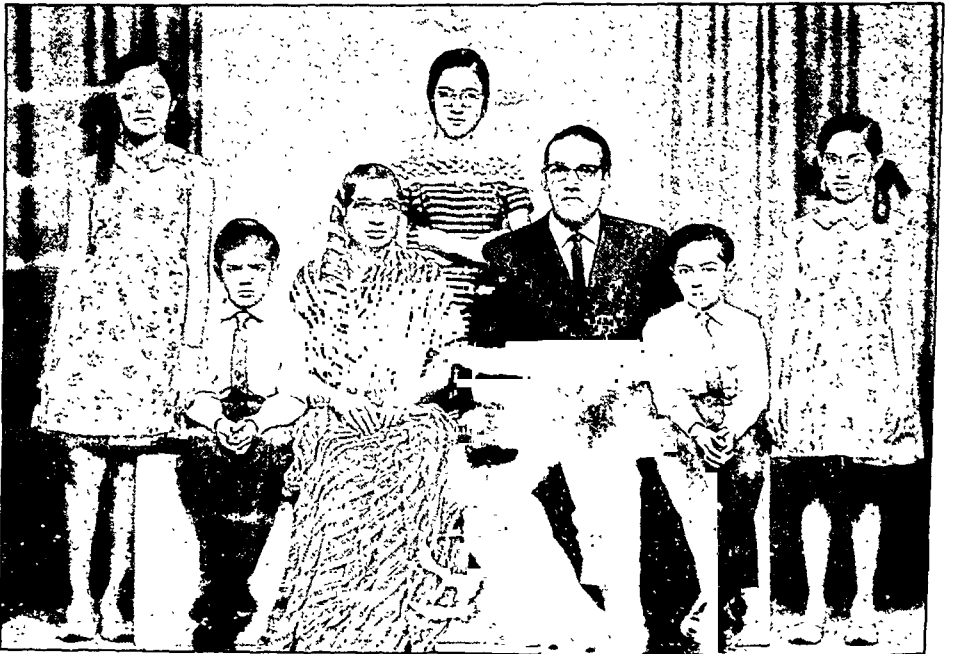
श्रीमती एवं श्री कांकरिया पुत्र-पुत्रियों के बीच

द्वितीय पीढ़ी के साथ पति-पत्नी
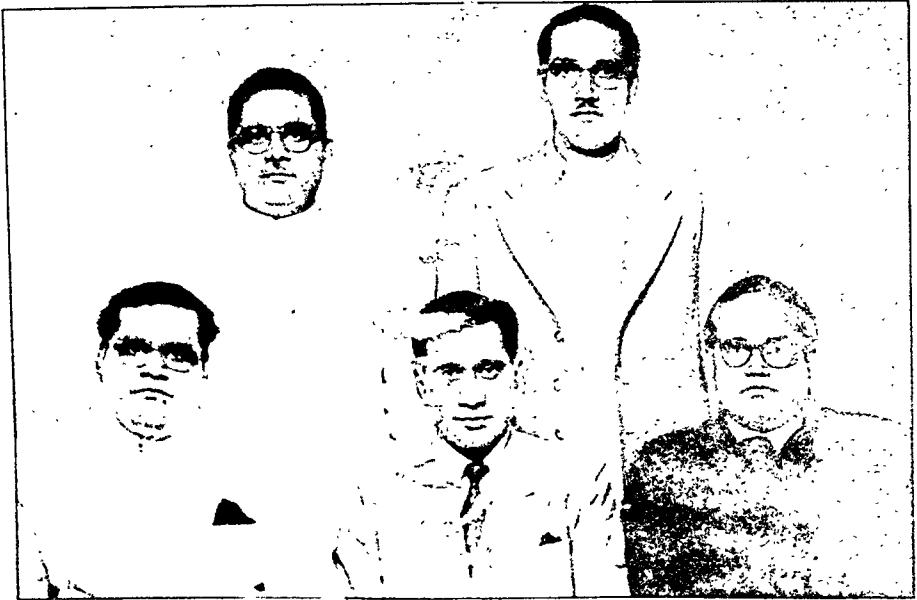
अपने अग्रजों के साथ

भरापूरा परिवार

फिल्म अभिनेता एवं सांसद श्री सुनील दत्त के साथ

फिल्म अभिनेता श्री फिरोज खान के साथ

स्व० संजीव कुमार और कांकरियाजी
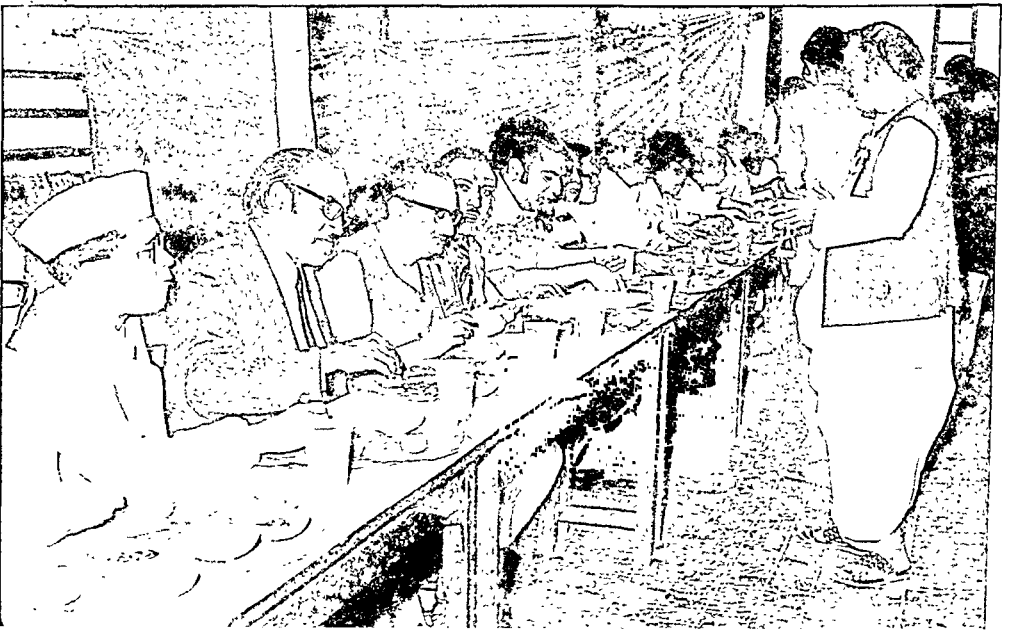
श्री साधुमार्गी जैन संघ के मन्दमौर अधिवेशन में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया का स्वागत करते हुए

श्री साधुमार्गी जैन संघ के अमरावती अधिवेशन में वक्तव्य देते हुए
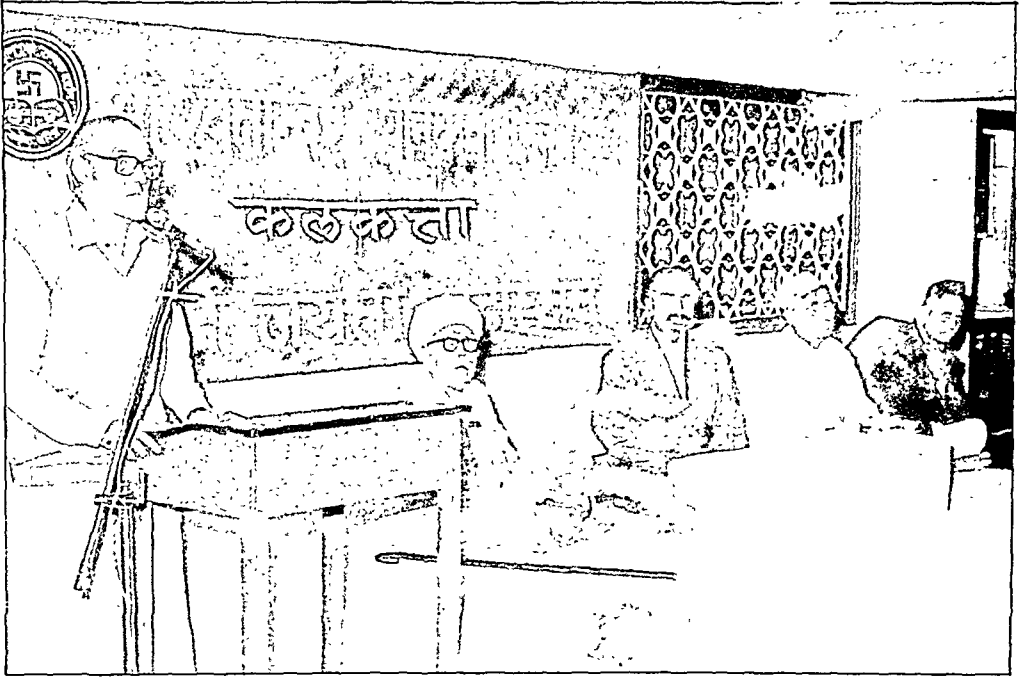
सभा के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर अतिथियों का स्वागत करते हुए

श्री साधुमार्गी जैन संघ के गंगाशहर भीनासर अधिवेशन में सभा को सम्बोधित करते हुए
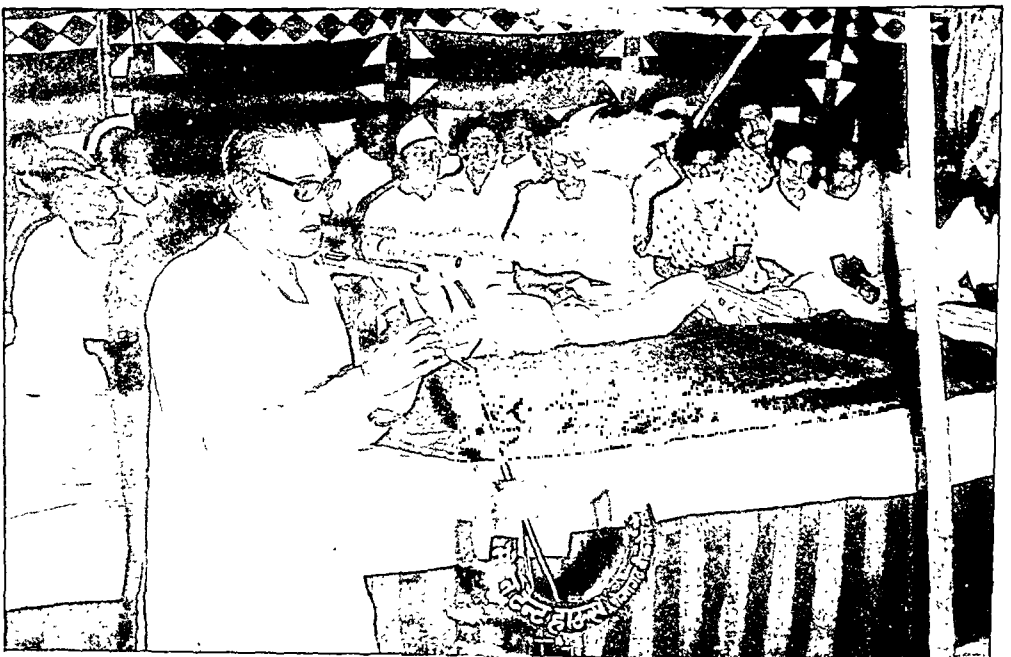
बेलगछिया पारसनाथ मंदिर में आयोजित बाल संस्कार शिविर, १९९२ के अध्य[illegible] से उद्बोधन देते हुए

श्री जैन विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका के लोकार्पण अवसर पर पश्चिम बंग उच्चतर माध्यमिक परिषद की अध्यक्षा श्रीमती अनिलादेवी के साथ

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता श्री कमल कुमार .न के अभिनन्दन समारोह पर
शाल ओढ़ाते हुए

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा के भूमि पूजन समारोह में श्री सूरजमल बच्छावत, श्री रिद्धकरण बोथरा, प्रधानाचार्य श्री कन्हैयालाल गुप्त के साथ कांकरिया दम्पति

श्री जैन विद्यालय, हावड़ा में २[illegible] जनवरी, '९३ के गणतन्त्र दिवस समारोह में मुख्य अतिथि श्री बादल बोस तथा अन्य कार्यकर्ताओं के साथ

अणुव्रत और महाव्रत : आज के संदर्भ में

● डॉ. नरेन्द्र भानावत
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
सी-२३४-ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर, जयपुर-३०२००४

विज्ञान की प्रगति और तकनीकी विकास के कारण भौतिक दृष्टि से आज का जीवन अधिक सुविधापूर्ण, खानपान और रहन-सहन के तौर-तरीकों में अधिक सुखी प्रतीत होता है, पर गहराई से देखने में लगता है कि मानसिक रूप से व्यक्ति अधिक दुखी, कुंठित और तनावग्रस्त है। परिवार और समाज में जो स्नेह, सद्भाव और शांतिपूर्ण वातावरण अभीष्ट है, वैसा लक्षित नहीं होता। वैर-विरोध, कलह-कलेश, ईर्ष्या-द्वेष, शंका-संदेह के कारण जैसा विश्वास, मैत्री-भाव और वात्सल्य होना चाहिये, उसका प्राय: अभाव है। राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता, संकीर्णता और स्वार्थपरता का वोलवाला है। सत्ता, सम्पत्ति, पद-प्रभुता के लिए संघर्ष और प्रतिद्वन्द्वता है, आपाधापी और छीनाझपटी है। अस्थिरता, विखराव और तोड़फोड़ की प्रवृत्ति हर क्षेत्र में सक्रिय है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्रुतगामी यातायात और संचार-साधनों के विकास के कारण राष्ट्र परस्पर जुड़ से गये हैं, समयगत और स्थानगत दूरी कम हुई है, पर वैचारिक मतभेद के कारण शीतयुद्ध बराबर चलते रहते हैं। शांति सम्मेलनों के मंच से विश्व-वन्धुत्व, मानवीय एकता और परस्पर स्नेह संवंधों की बात अवश्य की जाती है, पर भीतर ही भीतर ईर्ष्या-द्वेष और अविश्वास की आग बराबर धधकती रहती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान के विकास के कारण जैसा सुन्दर, सुख-सुविधापूर्ण, समृद्धिदायक, स्वास्थ्यप्रद वातावरण बनना चाहिए, वैसा संवेदना के स्तर पर, अनुभूति के स्तर पर आज दिखाई नहीं देता।

यह सही है कि सभ्यता का रथ बहुत आगे बढ़ा है पर मनुष्य के मन की जो पाशविक वृत्तियां हैं, वैयक्तिक स्तर पर उनमें कमी नहीं आई है। पहले जिन कारणों से क्षेत्र विशेष में जैसे युद्ध होते थे, वैसे आज नहीं होते। पर आज युद्ध अधिक सूक्ष्म बन गये हैं। अब वे द्वन्द्व युद्ध के रूप में सीमित क्षेत्र में नहीं लड़े जाते और न उनका प्रभाव युद्ध से संबंधित देश-काल तक सीमित रहता है। पूर्व की भांति हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, संग्रह जैसी दुष्प्रवृत्तियां भले ही स्थूल रूप में कम दिखाई देती हों पर वे सूक्ष्म बनकर अशुभ विचारों के रूप में सम्पूर्ण मानवता को, उसके सांस्कृतिक परिवेश को प्रदूषित किये हुए हैं। बाहरी तौर पर सामूहिक नैतिकता का ग्राफ काफी ऊंचा चढ़ गया है, क्योंकि सभा-स्थलों से, समाज संगठनों से, राजनैतिक अधिवेशनों से, अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से सहयोग, सद्भाव, एकता, विश्व शांति आदि की बातें की जाती हैं, उनसे सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किये जाते हैं, रासायनिक हथियारों को कम करने तथा प्रतिबन्धित करने के निर्णय लिये जाते हैं पर वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति के जीवन में कथनी और करनी का अन्तर बढ़ा है। वह पहले की अपेक्षा अधिक स्वार्थ केन्द्रित, संकीर्ण और संदेहशील बना है, पूर्वापेक्षा वह अधिक बेचैन, व्यग्र और अशान्त है।

शास्त्रों में कहा गया है कि मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है पर आज मानव संख्या अनियंत्रित है। बढ़ती हुई जनसंख्या के विस्फोट से बड़े-बड़े अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री चिन्तित हैं। मनुष्य आकृति से मानव भले ही हो पर प्रकृति से वह मानव नहीं लगता। मानव के साथ पशुता का अंश जुड़ा हुआ है। यह पशुता ही उसे मानवता का बोध नहीं करने देती। पशुता को वैज्ञानिक यंत्रों से, तकनीकी प्रगति से नहीं काटा जा सकता। सुख-सुविधाएं बढ़ाकर, धन-सम्पत्ति का संग्रह कर, मानव की आकृति को सजा-संवारा जा सकता है पर उसकी प्रकृति में आन्तरिक रूपान्तरण नहीं लाया जा सकता। मनुष्य और पशु में मूल अन्तर बुद्धि और विवेक का है। इन्द्रियों के विषय-सेवन के क्षेत्रों में विज्ञान के द्वारा वृद्धि की जा सकती है, इन्द्रियों की शक्ति को वैज्ञानिक उपकरणों से

बढ़ाया जा सकता है, शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श के नये-नये रूप आविष्कृत किये जा सकते हैं, पर इनकी तृप्ति मानसिक चेतना पर निर्भर है। यह चेतना जागतिक पदार्थों से परिष्कृत नहीं हो सकती। इसके परिष्कार के लिए मन का प्रशिक्षण और आत्मा का जागरण आवश्यक है। मानसिक संयम और आत्म-जागृति में व्रत-निष्ठा, व्रत-शक्ति और व्रत-विधान का बड़ा महत्व है।

वर्तमान युग की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि आज हमारे जीवन, समाज और राष्ट्र के केन्द्र में वित्त प्रधान बन गया है। वित्त-लिप्सा ने व्रत-निष्ठा को निर्वासित कर दिया है। व्रत कहीं दिखाई देता है, सुना जाता है तो धार्मिक अनुष्ठानों और क्रियाकाण्डों के क्षेत्र में ही और वह भी बहुत ही स्थूल रूप में ऊपरी सतह पर। व्रत की मूल अवधारणा और उसकी प्रभावक शक्ति से आज का व्यक्ति परिचित नहीं है।

व्रत मानवीय ऊर्जा और क्षमता का प्रतीक है। जीवन में जो अशुभ है, कर्म में जो अनिष्टकारी है, व्यवहार में जो निषिद्ध है, उससे हटना, दूर रहना व्रत है। इसी दृष्टि से "विरतिर्व्रतम्" कहा गया है अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरत होना व्रत है। यह व्रत का निषेधात्मक पक्ष है। व्रत का विधेयात्मक पक्ष है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, संयम और अपरिग्रह का अपनी शक्ति अनुसार संकल्पबद्ध होकर, प्रतिज्ञा लेकर नियम लेना और विवेकपूर्वक यथाशक्ति उनका पालन करना। इस प्रकार के व्रत धारण में भौतिक लाभ की आकांक्षा नहीं रहती, क्षुद्र स्वार्थपूर्ति का लक्ष्य नहीं रहता। मुख्य लक्ष्य रहता है- अपनी सुषुप्त आत्म-शक्ति का विकास करना, अपनी आत्मा से अपनी आत्मा में प्रवृत्त होना, संकल्प-विकल्पों से ऊपर उठकर ज्ञानदर्शन रूप स्वभाव में रमण करना, विषय-कषाय से उपरत होकर समता भाव में प्रतिष्ठित होना। दूसरे शब्दों में जीवन-समुद्र में ऊपरी सतह के आलोड़न-विलोड़न, आंधी-तूफान, गर्जन-तर्जन से विरत होकर अन्तस् की गहराई में पेठना, समुद्र की मर्यादा और प्रशान्त स्थिति से जुड़ना, आत्म-मंथन कर यथार्थ का बोध करना, सच्चे अमृत-तत्व की प्राप्ति करना।

ऐसी व्रतनिष्ठा और व्रत धारणा के लिए सम्यक् दृष्टि, सम्यक् चिन्तन और सम्यक् श्रद्धान् की आवश्यकता है। तथाकथित विज्ञान ने जो दृष्टि दी है उससे जागतिक पदार्थों से सम्बन्धित अज्ञान का आवरण तो हटा है पर आत्मज्ञान के श्रद्धान् की वृत्ति बाधित हुई है। विज्ञान से मानव मन की जो आकांक्षा बढ़ी है, उसने उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दिया है। जिसमें इस बात पर अधिक बल है कि आवश्यकताएं बढ़ाई जाएं और नित्य नई-२ आवश्यकताएं पैदा की जाएं। इच्छाओं की मांग के अनुरूप पूर्ति के साधन जुटाना, यही सभ्यता का लक्षण है और वैज्ञानिक अनुसंधान का उद्देश्य भी। दूसरे शब्दों में उपभोक्ता संस्कृति ने व्रत के स्थान पर वासना को, त्याग के स्थान पर भोग को, संवेदना के स्थान पर उत्तेजना को, हार्दिकता के स्थान पर यांत्रिकता को अधिक महत्व दिया है। परिणामस्वरूप जीवन सागर का मंथन कर आनन्द की, अमृत की प्राप्ति के लिए जिस प्रशम गुण की आवश्यकता है, वह आज जीवन में नहीं सा है। प्रशान्तता का स्थान प्रचण्डता ने ले लिया है। मन, वचन, कर्म क्षमा से न जुड़कर क्रोध से जुड़ते हैं, विनय से न जुड़कर अहम् से जुड़ते हैं, सरलता से न जुड़कर वक्रता से जुड़ते हैं, संतोष से न जुड़कर लोभ से जुड़ते हैं। परिणामस्वरूप जिस आत्मीयता, मैत्री, करूणा और प्रमोद भावना का विकास होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। उसके स्थान पर आक्रोश, विक्षोभ और द्वन्द्व पनपता रहता है। अपने से अतिरिक्त जो जीवन सृष्टि है, उसके प्रति अनुराग का भाव विकसित नहीं हो पाता, उसके सुख-दुःख में व्यक्ति हाथ नहीं बंटा पाता, उससे अनुकम्पित नहीं हो पाता। जीवन के प्रति आस्थावान नहीं रह पाता, बुद्धि स्थिर नहीं रह पाती, वह भोग के विभिन्न स्तरों में भटकती रहती है, उसे विवेक का आधार नहीं मिल पाता। दूसरे शब्दों में शम, संवेद, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था जैसे भाव चेतना के साथ जुड़ नहीं पाते और इनके अभाव में ज्ञान, प्रेम में नहीं बदल पाता, दर्शन आत्मस्वरूप का निरीक्षण नहीं कर पाता, चारित्र चित्त का अंग नहीं बन पाता। चित्त की वृत्ति प्रमाद में भटकती

रहती है, व्यसन-विकारग्रस्त होकर जड़ और मूर्छित बनी रहती है। इन सबके दवाव से व्रतनिष्ठा और व्रत-धारणा कुंठित हो जाती है। व्रत धारणा और व्रत-ग्रहण के लिए दृष्टि का सम्यक् होना आवश्यक है। दृष्टि सम्यक् तभी हो पाती है जब चेतना के मूल स्वभाव की पहचान हो। यह पहचान जीवन की सात्विकता, चित्त की निर्मलता, निःशल्यता, वत्सलता और सत्यानुभूति पर निर्भर है। पर दुख की वात है कि आज व्यक्ति वाहर से सरल दिखकर भी भीतर से वक्र है, वाहर से तरल दिखकर भी भीतर से शुष्क है। जब तक श्रद्धा, संयम, विनय, दया, शील, धैर्य जैसे गुणों का अंकुरण नहीं होता, तव तक व्रत की ओर कदम नहीं वढ़ाया जा सकता। व्रत की ओर कदम वढ़ाने के लिए हमें अशुभ से शुभ में प्रवृत्त होना होगा, विवेक को जागृत करना होगा, उपभोग के स्थान पर उपयोग दृष्टि को प्रतिष्ठित करना होगा।

जो भी पशुता से ऊपर उठा है व्रत-नियम ग्रहण करके, उनकी पालना करके ही। व्रत दीपक की तरह है, जिसके द्वारा व्याप्त अंधकार को छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। साधना की दृष्टि से व्रत के दो प्रकार है- अणुव्रत और महाव्रत। अणुव्रत में "अणु" शब्द अल्पता का, छोटेपन का, स्थूलता का सूचक है। सांसारिक प्राणी, घर-गृहस्थी में रहने वाला सामाजिक प्राणी सब प्रकार के दुष्कर्मों से विरत नहीं हो सकता। इसलिए शास्त्रों में सद्गृहस्थों के लिए अणुव्रत की व्यवस्था की गई है। यह अणुव्रत पांच प्रकार के माने गये हैं- अहिंसा अणुव्रत, सत्याणुव्रत, अस्तेयाणुव्रत, ब्रह्मचार्यणुव्रत और परिग्रह-परिमाण व्रत (इच्छा परिमाणव्रत)।

जीवन में और समाज में अपने दायित्वों को निभाते हुए भी दुष्कर्मों से वचने के लिए अणुव्रत धारण किये जाते हैं। इन्हें धारण करते समय यह संकल्प किया जाता है कि मैं स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, स्थूल कुशील और स्थूल परिग्रह से वचूंगा। मन, वचन और कर्म से इन्हें न करूंगा और न दूसरों को प्रेरित कर ऐसा कराऊंगा। शास्त्रीय शब्दावली में इसे दो करण, तीन योग से प्रतिज्ञावद्ध होना कहा जाता है। करना, कराना और अनुमोदन करना करण कहलाता है तथा मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को योग कहा गया है। अणुव्रत में करण की छूट रहती है। किसी भी व्रत को व्रतधारी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार एक या दो करण से ग्रहण कर सकता है।

महाव्रत महान् व्रत है। तीर्थंकर आदि महापुरुषों ने राग-द्वेष से मुक्त होने के लिए, जन्म-मरण के वन्धन से छूटने के लिए, मोक्ष-प्राप्ति के लिए जिन व्रतों को धारण किया है, वे महाव्रत हैं। ये भी पांच हैं :- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन्हें तीन करण, तीन योग से धारण किया जाता है। महाव्रतधारी को श्रमण या साधु कहा गया है। इन्हें "अणगार" भी कहा गया है, क्योंकि इनका घर नहीं होता। ये संसार से सर्वथा विरत होते हैं। महाव्रतधारी को स्थूल, झूठ आदि की छूट नहीं होती। महाव्रत धारण करने वाले को पांचों महाव्रत धारण करने होते हैं। किन्हीं एक दो महाव्रतों का चयन कर वह उन्हें ग्रहण नहीं करता, सम्पूर्ण रूप से वह अहिंसा, सत्य आदि महाव्रतों को धारण कर पूर्ण सजगता के साथ उनकी परिपालना करता है। एक भी महाव्रत किसी भी रूप में खण्डित होने पर उसकी साधना दूषित हो जाती है। इसीलिए महाव्रत को अखण्ड मोती की उपमा दी हुई है। मोती का मूल्य तभी तक है, जब तक उसमें आव अर्थात् चमक वनी रहती है। चमक के गायव होते ही मोती दो कोड़ी का नहीं रहता पर अणुव्रत की उपमा सोने की सिल्ली से दी गई है। अपने पास जितना रुपया-पैसा है, उससे जितना सोना आये, उतना खरीदा जा सकता है। इसी प्रकार अणुव्रतधारी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार किसी भी एक व्रत को धारण कर सकता है। एक करण, तीन योग से भी और दो करण, तीन योग से भी। अणुव्रत की साधना में निरन्तर आगे वढ़ते हुए वह महाव्रती वन सकता है। आगार से अणगार और श्रावक से श्रमण वन सकता है। महाव्रत-धारण आध्यात्मिक साधना का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है पर अणुव्रत की धारणा किसी भी देश-काल में रहने वाले नागरिक का आदर्श

है। महाव्रत में पापों से पूर्णत: बचा जाता है, अणुव्रत में अंशत:। महाव्रत सर्वविरति व्रत है, अणुव्रत देशविरति व्रत है।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ अहिंसा आदि जो मूल पांच अणुव्रत हैं, जिन्हें महर्षि पतंजलि ने "यम" कहा है, बौद्ध धर्म में जो 'पंचशील' भी कहे गये हैं। उनके स्वरूप में युगानुरूप परिवर्तन आता रहा है। कृषि प्रधान युग में हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह आदि के अलग मानदण्ड रहे होंगे पर आज जब हम औद्योगिक क्रांति के बाद अन्तरिक्ष युग में प्रवेश कर गये हैं तो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि के रूप अत्यधिक सूक्ष्म और बारीक हो गये हैं। अत: अणुव्रतों की परिपालना में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। इन व्रतों के जो अतिचार हैं, जिनसे बचने के लिए व्रतधारी को बराबर सावधान किया गया है। उनकी वर्तमान सन्दर्भ में नई व्याख्या अभीष्ट है। अहिंसा अणुव्रत में बंधन, वध, अतिभार, भात-पानी का विच्छेद का जो संकेत है उसे व्यापक अर्थ में लेना होगा। हम किसी की स्वतंत्रता में बाधा न डालें, मानसिक और वाचिक रूप से किसी को कष्ट न पहुंचायें, समाज में ऐसे नियम न बनायें, जो सामान्य व्यक्ति के लिए भारभूत हों, ऐसी व्यवस्था का समर्थन न करें, जिससे किसी की रोटी-रोजी या खान-पान छीनता हो। आज चारों ओर क्रूरता और संवेदनहीनता दिखाई देती है। अहिंसा-अणुव्रती को अहिंसा का जो विधायक रूप है- प्रेम, मैत्री, सेवा, उसे बढ़ावा देना चाहिए, सर्वहितकारी समाज-सेवाओं में सक्रिय भागीदारी निभानी चाहिए। मांसाहार के खिलाफ आंदोलन छेड़कर सात्विक आहार-विहार के रूप में शाकाहार का प्रचार करना चाहिए। आहार-विहार में सात्विकता, रात्रि-भोज के त्याग की नियमबद्धता और सप्त व्यसनों के त्याग की अनिवार्यता बनी रहे, इस ओर विशेष प्रयत्न अपेक्षित है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि को जैन तीर्थंकरों ने सजीव बताया है। इनके उपयोग में विवेक बना रहे, आवश्यकताओं के अनुरूप इनका दोहन हो। दोहन के स्थान पर शोषण न हो, प्राकृतिक संतुलन बना रहे, ताकि पर्यावरण-प्रदूषण का संकट न आये। इस दृष्टि से अहिंसा अणुव्रत आज के संदर्भ में विशेष उपयोगी और प्रासंगिक है।

सत्याणुव्रत में वचनशुद्धि, विश्वसनीयता और प्रामाणिकता को महत्व दिया गया है। आज वाणी का संयम कम देखा जाता है, झूठे आश्वासनों का बाजार गर्म है, झूठे शपथ पत्र, झूठे दस्तावेज, झूठे विज्ञापन प्राय: देखने-सुनने में आते हैं। इससे व्यक्ति की साख गिरती है और समाज में संदेह का वातावरण बनता चलता है। जनतंत्र में प्राय: राजनैतिक पार्टियों और नेता झूठे आश्वासन देते रहते हैं, वायदे करते रहते हैं। इससे पूरे राष्ट्र का चरित्र कलंकित होता है। सत्य ईश्वर कहा गया है। सत्य का साक्षात्कार ही महापुरुषों ने जीवन का लक्ष्य माना है। यदि यह सत्य खण्डित होता है तो इससे हमारा पूरा व्यक्तित्व खण्डित होता है। अत: सत्यव्रतधारी को चाहिए कि वह विचारपूर्वक बोले, किसी पर मिथ्या दोषारोपण न करे, किसी के मर्म को प्रकट न करे और व्यर्थ न बोले। 'बातें कम काम ज्यादा' को व्यवहार में लाये।

अचौर्याणुव्रत आज के सन्दर्भ में अत्यन्त उपयोगी है। आज का व्यक्ति अर्थ प्रधान हो गया है। येन-केन-प्रकारेण धन एकत्र करना उसने अपना लक्ष्य बना लिया है। अधिकांश कानूनों की परिपालना नहीं होती, व्यावसायिक क्षेत्र में पग-पग पर अनैतिकता और तस्कर वृत्ति देखी जाती है। चोरी शब्द अत्यन्त व्यापक है। स्वयं चोरी न करे पर यदि चोर को सहायता दे, चुराई हुई वस्तु खरीदे, राजकीय नियमों के विरुद्ध आदान-प्रदान करे, लेन-देन में झूठा तोल या माप करे, असली वस्तु दिखाकर नकली वस्तु बेचे, आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह करे, यह सब चोरी है। अचौर्यव्रत के पालन से समाज में नैतिकता का विकास होता है। श्रम के महत्व की प्रतिष्ठा होती है और स्वावलम्बन का भाव जागता है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत शारीरिक और आत्मिक शक्ति के संचय और वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ केवल वीर्य-रक्षा ही नहीं है, आत्मिक शक्ति के संचय संवर्द्धन के

लिए की जाने वाली प्रत्येक प्रवृत्ति ब्रह्मचर्य से संबंधित है। इसलिए शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य को सभी तपों में श्रेष्ठ तप कहा है। आज ब्रह्मचर्य का तेज युवापीढ़ी में देखने को नहीं मिलता। भोग-विलास के साधन इस स्तर से बढ़ गये हैं कि व्यक्ति अपनी वीर्य शक्ति की रक्षा नहीं कर पाता। अश्लील नृत्य, अश्लील गायन, अश्लील साहित्य का पठन-पाठन, अश्लील विज्ञापनों का प्रदर्शन योजनाबद्ध तरीके से आज परिवार और समाज में इस प्रकार छा रहा है कि हम शरीर से स्वस्थ लगते हुए भी मन से रुग्ण और निराश बनते जा रहे हैं। उपभोक्ता संस्कृति ने कामवृत्ति को अधिक जागृत कर दिया है। भोगलिप्सा इतनी बढ़ गई है कि उससे व्यक्ति मानसिक रूप से दुर्बल बन गया है। दुख, द्वन्द्व और तनाव इतना अधिक है कि सब प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी व्यक्ति भीतर से एकाकी है, रिक्त है, अपने आत्म-विश्वास को खो बैठा है, स्वाधीन भाव लुप्त हो गया है। पर पदार्थों को भोगने की वृत्ति ने उसे पराधीन बना दिया है। भोग का दुख नारकीय यंत्रणा से कम नहीं। नरक के जो सात स्तर बताये गये हैं- रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, तमतमाप्रभा। ये सब ब्रह्मचर्य के अभाव में भोगवृत्ति के अतिरेक से उत्पन्न मानसिक अवस्थाएं ही हैं, जिनमें व्यक्ति प्रारम्भ में रत्न की तरह चकाचौंध से आकर्षित होता है पर धीरे-धीरे भोग के जाल में वह फंसता जाता है। कीचड़ की तरह वह फंस जाता है। चाहने पर भी निकल नहीं पाता, उसकी दृष्टि धुंधला जाती है और वह टेन्शन के अंधकार से डिप्रेशन के महाधंकार में डूबता चला जाता है। जब तक उपभोग दृष्टि उपयोग दृष्टि नहीं बनती, भोग के स्थान पर संयम और त्याग का भाव जागृत नहीं होता, तब तक वह शान्त और सुखी नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य का मर्यादापूर्वक पालन करने वाला व्यक्ति ही अपनी अधोमुखी चेतना को ऊर्ध्वगामी बना सकता है। ऊर्ध्वगामी चेतना संयम और त्याग की प्रतीक है। सुधर्म, सहस्रार, अच्युत आदि देवलोक, भद्र, सुभद्र, सुजात, सुमानस, सुदर्शन, प्रियदर्शन, अमोह, सुप्रतिष्ठित और यशोधर रूप नौग्रैवेचक, विजय, वैजयन्त, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध रूप अनुत्तर विमान अपने नाम के अनुरूप ऊर्द्धवचेतन अवस्था के प्रतीक हैं। सुधर्म से लेकर अपनी सभी मनोकामनाएं सिद्ध करने की स्थिति रूप सर्वार्थसिद्ध अवस्था उत्तरोत्तर संयम-यात्रा की प्रतीक है।

परिग्रह परिमाण व्रतधारी बाहरी और आन्तरिक परिग्रह की मर्यादा करता है। परिग्रह-संचय के मूल में कामना निहित रहती है। इसीलिए इस व्रत को इच्छा परिमाण व्रत भी कहा गया है। वर्तमान संदर्भ में वैज्ञानिक प्रभाव के कारण व्यक्ति ने अपनी इच्छाओं को ही आवश्यकता समझ लिया है और येन-केन-प्रकारेण उनकी पूर्ति में वह व्यग्र बना रहता है। इच्छा का स्वभाव है कि एक की पूर्ति होते ही दूसरी इच्छा तुरन्त जन्म ले लेती है। उत्पत्ति और पूर्ति का यह दुश्चक्र निरन्तर चलता रहता है। इच्छा-पूर्ति में जो सुख दिखाई देता है, वह वस्तुतः सुख नहीं, सुखाभास होता है। यह सुख इन्द्रियाश्रित होता है। जो धीरे-धीरे नीरसता में, दुःख में बदल जाता है। दुःख रहित सुख की प्राप्ति इच्छा-पूर्ति में नहीं, इच्छा के अभाव में है, निष्काम होने में है। अतः परिग्रह परिमाण व्रतधारी को यह प्रयत्न करना चाहिए कि वह अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण करे, अपनी जीवन पद्धति को सादा और सरल बनाये, विषय-कषायवर्द्धक पदार्थों और परिस्थितियों से बचे, इच्छाओं को मर्यादित करते हुए धन-धान्य, स्वर्ण-रजत, चल, अचल सम्पत्ति, पशुधन, [illegible] आदि की मर्यादा बांधे और प्राप्त सम्पत्ति का दूसरों के हित में, जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियों में उपयोग करने का लक्ष्य रखे, अर्जन का विसर्जन करे और अपने अर्जन के साधनों को शुद्ध और प्रामाणिक बनाये रखे। ऐसे व्यवसाय न करे, जिससे निरपराध जीवों की हिंसा होती हो। यथा— जंगल में आग लगाना, वृक्षों को काटना, तालाबों को सुखाना, नशीले पदार्थों को बेचना, शराब का ठेका लेना, असामाजिक तत्वों को प्रश्रय देना आदि। इस व्रत के धारण से समाज में बढ़ती हुई शोषण, अपहरण, तस्कर आदि प्रवृत्तियां रुकती हैं और स्वावलम्बन, श्रम, आत्म-निर्भरता को प्रश्रय मिलता है।

व्यक्ति जिन व्रतों को धारण करे, उनकी पूर्ण सजगता और ईमानदारी के साथ रक्षा भी करे।

आज जो व्रत धारण किये जाते हैं, उनकी दिशा उलटी है। आतंकवाद और उग्रवाद के नाम पर, संकीर्ण प्रान्तीयता और राष्ट्रीयता के नाम पर, साम्प्रदायिकता के नाम पर, दलवन्दी के नाम पर, धार्मिक कट्टरता के नाम पर भी लोग प्रतिज्ञा लेते हैं पर उस प्रतिज्ञा में जीवन-रूपान्तरण का लक्ष्य नहीं होता। वहां लक्ष्य होता है- स्वार्थसिद्धि, अनैतिक तरीकों से धन प्राप्त करना, दूसरों को डराना, धमकाना, आतंकित और भयभीत करना। अणुव्रत और महाव्रत धारण करने वाला व्यक्ति भोग के लिए नहीं त्याग के लिए, परिग्रह बढ़ाने के लिए नहीं इन्द्रिय संयम के लिए, इन्हें धारण करता है और इसलिए इन व्रतों के सम्यक् परिपालन के लिए वह सजग और सावधान रहता है। व्रत धारण करते समय वह किसी दबाव में नहीं आता, स्वेच्छा से, अन्त:स्फुरणा से गुरु साक्षी में, सार्वजनिक रूप से वह उन्हें धारण करता है और जब कभी व्रत भंग होने का अवसर आता है तो वह शुद्ध हृदय से प्रायश्चित करता है, आत्मालोचन कर उन परिस्थितियों को दूर करने का प्रयत्न करता है, जिनके कारणों से व्रत भंग होने का खतरा पैदा हुआ है। अपने अन्तर में पैठकर वह व्रतों के अतिचारों की आलोचना करता है। स्वत: या गुरु से दण्ड लेता है, प्रायश्चित करता है और पुन: व्रत धारण कर सजगता के साथ उनकी पालना के लिए कटिबद्ध होता है। व्रत भंग कर वह उल्लसित नहीं होता, अपने आपको प्रतिष्ठित अनुभव नहीं करता, जैसा कि आज के तथाकथित व्यक्ति कानून भंग कर अपने को सामान्य व्यक्ति से ऊंचा और श्रेष्ठ समझने लगते हैं पर यह व्रतधारी व्रत भंग कर भीतर ही भीतर दुखी होता है, पीड़ित होता है, अपने को दोषी समझने लगता है और उस दोष से मुक्त होने के लिए, व्रत की रक्षा के लिए पुन: तैयारी करता है।

व्रत भंग न हो, उसकी परिपालना बरावर होती रहे, इसके लिए मन में शुभ भावनाओं का चिन्तन निरन्तर चलता रहना चाहिए। मुझे अपनी आत्मा जैसी प्रिय है, वैसी ही अन्य जीवों को अपनी आत्मा प्रिय है, ऐसा सोचकर प्राणी-मात्र के प्रति मन में मैत्रीभाव का चिन्तन करना चाहिए। दूसरों के गुणों को देखकर मन में प्रमोद भाव लाना चाहिए, दूसरों को कष्ट में देखकर उसे दूर करने के लिए करुणा लाकर सहयोग करना चाहिए, सुख-दुख में, लाभ-हानि में, यश-अपयश में विचलित न होकर समता-संतुलन और माध्यस्थ भाव का चिन्तन करना चाहिए। संसार परिवर्तनशील है। प्रत्येक द्रव्य और पदार्थ उत्पाद-व्यय और ध्रुव युक्त है। पर्याय बदलते रहते हैं पर उसमें जो गुण है, वह स्थाई है। इसी प्रकार शरीर के जो संबंध हैं, संसार के जो संबंध हैं, वे परिवर्तनगामी हैं, पर आत्मा अजर-अमर है। उसके गुणधर्म स्थाई हैं, उनका निरन्तर विकास हो, इसका चिन्तन व्यक्ति को अनासक्त, निर्द्वन्द्व और निष्काम बनाता है। इससे अशुभ से शुभ भावों में, भोग से त्याग में प्रवृत्ति होती है।

अणुव्रतों की पुष्टि और रक्षा के लिए ही गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों का विधान किया गया है। अहिंसा, सत्य आदि अणुव्रत निरन्तर पुष्ट होते चलें, इसके लिए आवश्यक है कि गमनागमन के लिए क्षेत्र, दिशा आदि की मर्यादा निश्चित की जाए, उपभोग-परिभोग में आने वाली सामग्री निश्चित की जाए, निष्प्रयोजन होने वाली हिंसा को रोका जाए। यही गुणव्रत है। जीवन में आयी विषमता और विचलन को रोकने के लिए समभाव की साधना आवश्यक है। दैनन्दिन प्रवृत्तियां मन को चंचल बनाती हैं। अत: आवश्यक है कि प्रतिदिन उपयोग में आने वाले पदार्थों को नियंत्रित किया जाए। आत्मगुणों का पोषण हो, इसके लिए इन्द्रियों का संयमन किया जाए और जो कुछ अपने पास है, उसका उपयोग दूसरों के लिए हो, ऐसी प्रवृत्ति की जाए, ताकि मोह और आसक्ति को छोड़ने का अभ्यास बना रहे, यही शिक्षाव्रत है। अणुव्रतधारी गुणव्रत और शिक्षाव्रतों को धारण करके पडिमाधारी बन जाता है, जिसे हम "व्रत प्रतिमा" कह सकते हैं अर्थात् व्रत को केवल उसने रस्मी तौर पर नहीं धारण किया है, बल्कि अपने जीवन में उनका परिपालन कर स्वयं व्रत का प्रतीक बन गया है, व्रत की प्रतिमा बन गया है। ऐसा व्यक्ति ही आज के संदर्भ में आदर्श नागरिक है, विश्व-नागरिक है, विश्व मानवता का सच्चा प्रतिनिधि है, मानव देह में देवता है।

वर्तमान में श्रावक व्रतों की उपयोगिता

● डॉ. सुभाष कोठारी
प्रभारी एवं शोध अधिकारी
आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे समाज, परिवार, राष्ट्र से जुड़े होने के कारण प्रत्येक क्षेत्र में अपने कार्य व्यवहार को करना पड़ता है और करता है। २५०० वर्ष प्राचीन महावीर समाज की तुलना वर्तमान समाज से करें तो हम पाते हैं कि महावीर के प्रचलित सिद्धान्त व उपदेश दोनों ही समयों में युगानुकूल थे एवं हैं। आवश्यकता सिर्फ उसे अन्त:स्पर्शित कर समझने की है। यह अवश्य है कि देश काल की परिस्थितियों से आज का मानव तार्किक व वक्र हो गया है।

विभिन्न धर्म ग्रन्थों में साधना की मुख्य रूप से दो ही विधियां प्रचलित हैं। प्रथम गृहस्थावस्था का त्याग कर सन्यासी, योगी, मुनि व भिक्षु बनना व द्वितीय गृहस्थावस्था में रहकर श्रावक, उपासक, अनुयायी व गृही बनना। दोनों ही के पालन करने योग्य कुछ नियम पूर्वाचार्यों ने धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित किये हैं। यह एक अलग बात है कि वे नियम कहां तक पालन होते हैं। जैन आचार ग्रन्थों में श्रावक व उसके पालन करने के नियमों का सविस्तार वर्णन है।

श्रावक : जैनागम ग्रन्थों में उपासक, श्रमणोपासक, गिही, अगार व सावय शब्द ग्रहस्थ के लिये प्रयुक्त हुए हैं। पं. आशाधर ने सागार धर्मामृत में पंच परमेष्ठी का भक्त, दान व पूजन करने वाला, मूलगुण व उत्तरगुण का पालन करने वाला श्रावक होता है, कहा है।[1] श्रावक शब्द "श्रु" धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है सुनने वाला। अर्थात् जो प्रतिदिन साधुओं से सम्यक् दर्शन आदि समाचारी को सुनता हो, वह परम श्रावक है।[2]

श्रावकाचार की पूर्वपीठिका : एक गृहस्थ का श्रावक कहलाने की स्थिति तक पहुंचने के लिए कुछ विशिष्ट गुणों को अपने अन्त: चेतन में स्थान देना आवश्यक होता है। वैसे इनका कोई आगम उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है। क्योंकि यह मानकर चला जाता है कि एक सद्ग्रहस्थ में ये गुण तो होंगे ही। उत्तरवर्ती आचार्यो, जिनमें हरिभद्र-धर्म विन्दुप्रकरण[3], हेमचन्द्र योगशास्त्र[4], पं. आशाधर सागार धर्मामृत[5] मुख्य हैं, ने इन सद्गुणों का उल्लेख किया है। योगशास्त्र ने इन्हें मार्गानुसारी के गुण कहकर इस प्रकार नामांकित किया है। १. न्याय- नीति से धन का उपार्जन करना। २. शिष्ट पुरुषों के आचार की प्रशंसा करना। ३. अपने कुल व शील के समान स्तर वालों से परिणय सम्बन्ध करना। ४. पापों से भय। ५. प्रसिद्ध देशाचार का पालन करना। ६. परनिन्दा नहीं करना। ७. एकदम खुले एवं बन्द स्थान पर घर का निर्माण नहीं करना। ८. घर के बाहर जाने के द्वार अनेक नहीं रखना। ९. सदाचारी पुरुषों की संगति करना। १०. माता-पिता की सेवा भक्ति करना। ११. चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाले स्थान से दूर रहना। १२. निन्दनीय काम में प्रवृत्ति नहीं करना। १३. आय के अनुसार व्यय करना। १४. आर्थिक स्थिति के अनुसार कपड़े पहनना। १५. बुद्धि के आठ गुणों से युक्त होकर धर्म श्रवण करना। १६. अजीर्ण होने पर भोजन नहीं करना। १७. नियत समय पर संतोष से भोजन करना। १८. चार पुरुषार्थ का सेवन करना। १९. अतिथि - आदि

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

१- सागार धर्मामृत - १।१।५, २- श्रावक प्रज्ञप्ति - गाथा २, ३- हरिभद्र, देवेन्द्र मुनि- जैन आचार सिद्धान्त व स्वरूप, पृ-२६७, ४- योगशास्त्र - हेमचन्द्र १।४७-५६, ५- सागार धर्मामृत - अध्याय-१,

का सत्कार करना। २०. कभी दुराग्रह से वशीभूत नहीं होना। २१. गुणों का पक्षपाती होना। २२. देश व काल के प्रतिकूल आचरण नहीं करना। २३. अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम करना। २४. सदाचारी का आदर करना। २५. अपने आश्रितों का पालन-पोषण करना। २६. दीर्घदर्शी होना। २७. अपने हित-अहित को समझना। २८. कृतज्ञ होना। २९. सदाचार व सेवा द्वारा जनता का प्रेम सम्पादित करना। ३०. लज्जाशील होना। ३१. दयावान होना। ३२. सौम्य होना। ३३. परोपकार करने में उद्यत होना। ३४. काम क्रोधादि के त्याग में उद्यत होना। ३५. इन्द्रियों को वश में रखना।

हालांकि इन गुणों की संख्या भी विभिन्न आचार्यों ने अलग-अलग वताई है। फिर भी इन पैंतीस गुणों में उन सबका समावेश हो जाता है। इन गुणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन आचार के नियम पूर्णत: व्यावहारिक व सामाजिक हैं। इन गुणों से व्यक्ति का स्वयं, परिवार व समाज का विकास निर्भर है। इन व्यावहारिक नियमों के बाद सैद्धान्तिक नियमों में तो अणुव्रतों, गुणव्रतों, शिक्षाव्रतों का पालन महत्वपूर्ण होता है।

पांच अणुव्रत : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह का स्थूल रूप से पालन करना अणुव्रत कहलाता है। हिंसा के दो भेद किये जा सकते हैं- सूक्ष्म व स्थूल। पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि व वनस्पति की हिंसा, सूक्ष्म व त्रस प्राणियों की हिंसा स्थूल हिंसा कही जाती है। श्रावक गृहस्थावस्था में रहकर सूक्ष्म हिंसा से नहीं बच पाता है और सामाजिक कार्यों में स्थूल हिंसा होती है अत: यह सिर्फ "मैं इसे मांरू" इस प्रकार की संकल्पी हिंसा का त्याग करता है। आज के व्यावहारिक जगत में भी सभ्य व्यक्ति अनावश्यक त्रसजिवों की हिंसा का विरोध करेगा ही।

द्वितीय असत्य भाषण नहीं करने की बात है, जिसमें लोक विरुद्ध, धर्म विरुद्ध झुठ नहीं वोलने का विधान है। दूसरों की निन्दा करना, गुप्त बातों को प्रकट करना, झुठा उपदेश देना, झुठे लेख लिखना इसमें दोष माने गये हैं।

स्थूल रूप में चोरी नहीं करना, किसी को चोरी के लिए नहीं भेजना, चोरी की वस्तु नहीं लेना, राज्यनियमों का उल्लंघन नहीं करना अस्तेय अणुव्रत है। सामान्यतया यह सामाजिक व आर्थिक अपराध भी है।

अपनी पत्नी की मर्यादा रखकर अन्य सभी स्त्रियों को माता एवं बहिन के सदृश्य समझना ब्रह्मचर्य सिद्धान्त है। किसी वेश्या आदि के साथ रहना, अश्लील काम क्रीड़ाएं करना, दूसरों का विवाह कराना, कामभोग की तीव्र अभिलाषा करना दोष है। इनसे बचने का निर्देश हुआ है। और आज भी बलात्कार, वेश्यावृत्ति हेय दृष्टि से देखे जाते हैं।

अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु का उपयोग नहीं करना, उसे दूसरे को बांट देना अपरिग्रह है। साथ ही अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं की मर्यादा निश्चित कर लेनी चाहिए, जिससे उससे अधिक परिग्रह से मुक्त रह सकें।

तीन गुणव्रत : इनमें दिशा व्रत, उपभोग परिभोग परिमाप व्रत एवं अनर्थ दण्ड का समावेश है। ये अणुव्रतों के विकास में सहायक होते हैं। दिशाव्रत दिशाओं की सीमा निर्धारण करता है उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम आदि में गमनाममन, व्यापार करने पर रोक लगाता है। अनर्थ दण्ड हरी वनस्पति काटना आदि अनर्थकारी हिंसा के त्याग का उपदेश देता है।

चार शिक्षाव्रत : इनमें सामायिक देशावकाशिक, पौषध व अतिथि संविभाग व्रत सम्मिलित हैं। ये मानव की अन्त: चेतना से जागृत संस्कार हैं जिनसे आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ जाता है। इनसे व्यक्ति सहिष्णु व आत्मजयी बनता है, विकारों व पापों का प्रायश्चित करता है व मुक्ति की ओर अग्रसर होने के लिए कदम बढ़ाता है। यद्यपि जैन आचार के ग्रंथों में गुणव्रतों

व शिक्षाव्रतों के नामों में भेद है फिर भी अर्थ व विवेचना की दृष्टि से सभी एक समान हैं।

वर्तमान परिस्थितियां : उपर्युक्त श्रावक आचार के व्यावहारिक व सैद्धान्तिक नियमों को जब आज के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो ग्लानि महसूस होती है। अपवाद की बात नहीं करता परन्तु साधु के लिये भी "अम्मा पिया" की उपाधि के अलंकृत श्रावक आज अपना अस्तित्व भुलाए बैठे हैं। आज अहिंसक होने के स्थान पर दूसरों पर दोषारोपण, बाह्य आडम्बर पूर्ण वैभव का प्रदर्शन व आयोजन, धर्म व सम्प्रदाय के नाम पर समाज के टुकड़े-टुकड़े कर देने वाला अहिंसा का पुजारी महावीर का अनुयायी यही श्रावक है।

अपना दोष दूसरों पर आरोपित कर सम्यक्त्वी कहलाने वाला श्रावक स्वधर्मी बंधु की आलोचना करता मिलता है। डॉ. दयानन्द भार्गव ने एक सभा में ठीक ही कहा था कि "घर में दिया पहले जला दे मंदिर में बाद में"। स्वयं के दोषों को पहले देख लें बाद में अन्य की आलोचना करें। धर्म व सिद्धान्त की बात करते हुए हम अपने अन्दर में हिंसा, स्वार्थ व आसक्ति के तत्व छिपाये घूम रहे हैं। सच तो यह है कि ऐसे दिखावटी श्रावकों का ही बोलबाला रहता है। साधु वर्ग सभा को धर्म, सदाचार व नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं और उनकी निगाहों के नीचे वह सब होता है, जो नहीं होना चाहिए। लाखों का दान देने वाला व्यक्ति समाज का नेता सुश्रावक, धर्मनिष्ठ, उपासक, उपाधियों से अलंकृत होता है। यह कैसा श्रावक व कहां का धर्मनिष्ठ, अगर सच पूछा जाय तो एक माह में एक घण्टा भी श्रावक आचार का पालन नहीं होता होगा।

आज श्रावक स्वयं के आचार से भी पूर्ण रूप से परिचित नहीं है तो पालन करने की तो बात ही क्या है। कहां है वह श्रमण महावीर के अनुयायियों की परम्परा जहां एक ओर आनन्द व कामदेव जैसे श्रावक थे, जयन्ती, शिवानन्दा, अग्निमित्रा जैसी श्राविकाएं थीं, जो साधुओं में भी उत्कृष्ट कोटि की साधना में रत थे। जो स्वयं के आचार-विचार के ज्ञाता होने के साथ-साथ साध्वाचार के भी पूर्ण ज्ञाता थे। जहां स्वयं के आचार में शिथिलता आती उसका भी प्रायश्चित करते थे। साथ ही मुनि आचार में शिथिलता दृष्टिगोचर होती तो उन्हें भी कर्त्तव्य बोध कराते थे, परन्तु आज इस दायित्व को सम्भालने वाला श्रावक वर्ग कहां है? कहां है वह लोंकाशाह जो समाज में क्रान्ति का अग्रदूत बन सके?

श्रावक बनने का पहला कदम सम्यक्त्व होता है यानि सुगुरु, सुदेव, सुधर्म पर श्रद्धा, परन्तु आज हमारे धर्माचार्य सम्यक्त्व के नाम पर अपनी-अपनी टीम बना रहे हैं, वे अलग-अलग गुरुओं से अलग-अलग सम्यक्त्व ग्रहण कराने पर जोर देते हैं। श्रावक आचार के नियमों को युगानुकूल परिस्थितियों में कहीं भी बदलने की आवश्यकता नहीं है।[1] क्या महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सदा कुव्यसन त्याग, मार्गानुसारी के गुण, बारह व्रतों की उपयोगिता तब थी अब नहीं है और उनमें परिवर्तन की गुंजाइश है? नहीं! ये तो जीवन के शाश्वत मूल्य हैं, जिनमें वर्षों क्या शताब्दियों तक परिवर्तन की गुंजाइश नहीं है।

मेरा तो यह मानना है कि वर्तमान में श्रावक के इन व्रतों की उपयोगिता और ज्यादा है। कारण भौतिकवादी संस्कृति का आगमन, मानव मन की वक्रता, सरलता का अभाव, परस्पर स्नेह विश्वास एवं सहयोग का अभाव, अर्थ प्रधानता आदि दुर्गुण इस समाज व देश में फैले हैं कि इन्हें महावीर के सदियों पुराने ये गृहस्थ के व्रत/नियम ही सीमित कर सकते हैं। जब तक मानव अपने इन सनातन प्राचीन जीवन मूल्यों को जीवन में आत्मसात् नहीं करेगा, वह शाश्वत शांति को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

इस लेख का आशय सिर्फ यही है कि अब भी श्रावक अपनी अस्मिता को पहचानें एवं अपने आचरण व व्यवहार में एकरूपता रखें। अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों को पहिचानने से ही समाज का अस्तित्व बना रह जायेगा।

---

१. श्रावक धर्म की प्रासंगिकता का प्रश्न- डॉ. सागरमल जैन

कर्म सिद्धान्त की जीवन में उपयोगिता

● कन्हैयालाल लोढ़ा
अधिष्ठाता, श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, जयपुर

कर्म-बंध का स्वरूप : कर्म शब्द का अर्थ क्रिया है अर्थात् जीव द्वारा की जाने वाली क्रिया या प्रवृत्ति को कर्म कहते हैं। प्रवृत्ति का प्रभाव प्राणी के अंतस्तल पर संस्कार रूप में अंकित होता है। इसे ही जैन दर्शन में कर्म-बंध कहा है।

जैन धर्म में प्रवृत्ति के मानसिक, वाचिक और कायिक ये तीन प्रकार कहे हैं। जिन प्रवृत्तियों से आत्म-प्रदेशों में स्पंदन (हलचल) हो, प्रभाव पड़े अर्थात् उनसे संबंध स्थापित हो जाय, उन प्रवृत्तियों को योग कहा है। कारण कि इससे प्राणी उस प्रवृत्ति या प्रकृति से जुड़ जाता है। योग से आत्म-प्रदेशों पर पड़े प्रभाव, चित्र या अंकित संस्कार जिस प्रकार का है उसे प्रकृति बंध कहते हैं। प्रवृत्तियों की प्रबलता से, सघनता से उस प्रभाव का चित्र जितना स्पष्ट अंकित होता है व प्रभाव जितना पुष्ट होता है, उसे प्रदेश बंध कहा जाता है। इसलिए प्रकृति और प्रदेश के बंध का कारण योग या प्रवृत्ति को बताया है। इन तीनों प्रवृत्ति में जैसी तीव्र भेद रसानुभूति होती है वैसा ही तीव्र-मंद रस बंध या अनुभाग बंध होता है। और उस रसानुभूति की प्रगाढ़ता, जितनी अधिक होगी उतने ही अधिक काल तक वह टिकने वाला होता है। इस काल मर्यादा को स्थिति बंध कहा है। रसानुभूति को जैन दर्शन में कषाय कहा है। अत: जैन दर्शन में कषाय को ही स्थिति व अनुभाग बंध का कारण कहा है। इस प्रकार कर्म बंध के १. प्रकृति बंध, २. स्थिति बंध, ३. अनुभाग बंध और ४. प्रदेश बंध, ये चार प्रकार हैं।

बंध-सत्ता-उदीरणा-उदय : कर्म-बंध के ये चारों प्रकार भविष्य में फल देने से संबंध रखते हैं। किसी क्रिया या कार्य का प्रभाव आत्मा में अंकित होना कर्म-बंध है। अंत:करण पर पड़े प्रभाव का प्रकाशन भविष्य में ही सम्भव है। प्रभाव का यह प्रकाशन ही कर्म का परिणाम है। कर्म के इस परिणाम को, कर्म विपाक या कर्मोदय कहा गया है। यह प्रभाव का प्रकाशन अथवा उदय तदनुकूल विभिन्न कारण मिलने पर ही प्रकट होता है। जब तक प्रकट नहीं होता, तब तक वह संस्कार अंत:करण में, अचेतन मन में, कारण शरीर में, कार्मण शरीर में अंकित रहता है, उसमें स्फुरणा नहीं होती। फिर भी संस्कार का सत्व विद्यमान रहता है। इसे कर्म की सत्ता कहा जाता है। निमित्त आदि किसी कारण से उस संस्कार में प्रकट या उदय होने के लिए स्फुरणा होना उदीरणा कहा जाता है और उस स्फुरणा का प्रवृत्ति रूप में प्रकट होना उदय कहा जाता है।

उपर्युक्त कर्म के चारों प्रकार के बंध तथा बंध, सत्ता, उदीरणा व उदय को एक उदाहरण से समझें— "क" और "ख" दो मित्र हैं। 'ख' को शराब पीने की आदत है उसने अपने मित्र "क" से जिसने कभी शराब नहीं पी है, शराब पीने का आग्रह किया। उसने मित्र का मन रखने के लिए शराब की घूंट ली। उसे शराब का स्वाद व गंध दोनों अरुचिकर लगे फिर भी उस शराब से उत्पन्न नशा कुछ रुचिकर लगा। फिर वह "क" अपने "ख" मित्र के आग्रह से बार-बार शराब पीने लगा जिससे धीरे-धीरे नशे का प्रभाव उस पर छाता गया। अब उसे शराब की गंध व स्वाद भी रुचिकर लगने लगे। इस प्रकार 'क' द्वारा शराब पीने की बार-बार की गई प्रवृत्ति ने शराब पीने की प्रकृति (आदत) का रूप धारण कर लिया। इसे कर्म साहित्य में प्रकृति बंध कहा जा सकता है। जितनी बार और जितनी अधिक शराब पियेगा उतनी ही उसकी यह आदत पुष्ट होती जायेगी, इसे कर्म का प्रदेश-बंध कहा जा सकता है। वह शराब पीने में जितना अधिक या कम रस लेगा उसे भविष्य में शराब पीने में उतना ही अधिक या कम सुख (रस) का अनुभव होगा, यह रस बंध है तथा अधिक तीव्र रस के साथ पी गई शराब का प्रभाव अधिक समय तक टिकने वाला होगा, इसे स्थिति बंध कह सकते हैं।

शराबी के इस उदाहरण में वर्तमान में शराब के सुख का भोग करने के कारण भविष्य में शराब के सुख (रस) के भोगने की इच्छा का प्रभाव अंकित होना बंध है। शराबी अपने व्यवसाय में लगा हुआ होने से कार्य में अत्यधिक व्यस्त है। उसमें इस समय शराब पीने की इच्छा जागृत नहीं है फिर भी अंत:करण में शराब पीने की इच्छा या संस्कार व उसका अस्तित्व सत्व विद्यमान है, यह कर्म की सत्ता है। वह शराब की दूकान के पास से निकला और शराब पीने की इच्छा स्फुरणा जागृत हुई, यह उदीरणा है और शराब पीकर उसका रसानुभव करना उदय है। इसी प्रकार हर प्रवृत्ति का बंध, सत्ता उदीरणा व उदय समझना चाहिये।

कर्म प्रकृतियां : कर्म की मूल प्रकृतियां आठ हैं : १. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गौत्र, ८. अन्तराय।

ज्ञानावरणीय : जो ज्ञान का, विवेक का आवरण करे, वह ज्ञानावरणीय है। आवरण उसी पर होता है जो वस्तु मौजूद है। शरीर आदि जो वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं उनका व्यय या विनाश अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार इन्द्रिय सुख, विषय सुख क्षणिक है, अस्थाई है। हमें विनाशी वस्तु या क्षणिक सुख नहीं चाहिए अपितु अविनाशी तत्व, स्थाई (शाश्वत), अक्षय, स्वाधीन सुख चाहिए, यह मांग सभी की है। जिसकी पूर्ति विनाशी के त्याग से तथा विषय सुख के त्याग से ही सम्भव है। यह सब ज्ञान सभी को है, यह निज ज्ञान है, आत्म-ज्ञान है। फिर भी हम क्षणिक सुख के नशे के मोह में मूर्च्छित होकर इस ज्ञान के अनुरूप आचरण नहीं करते। इस ज्ञान का अनादर, उपेक्षा करते हैं, फलत: इस ज्ञान का प्रभाव (प्रकाश) हमारे पर प्रकट नहीं होता, जिससे प्राणी विनाशी वस्तुओं के भोगों में गृद्ध रहता है। इस प्रकार जानने की शक्ति रूप ज्ञान का प्रकाशन न होना, आवृत रहना ज्ञानावरणीय कर्म है। कर्म की मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्याय और केवलज्ञान पर आवरण रूप ५ प्रकृतियां हैं।

दर्शनावरणीय : स्व-संवेदन को अर्थात् निजचेतना के अनुभव को दर्शन कहते हैं। विषय भोग के मोह व आसक्ति से जड़ता आती है, जिससे स्वसंवेदन रूप निज चेतना की शक्ति (अनुभव) प्रकट नहीं होती है, आवरित हो जाती है, इसे ही दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। इसकी पांच निद्रा एवं चार दर्शन पर आवरण रूप नौ प्रकृतियां हैं।

वेदनीय : जो संवेदना प्रकट होती है उसमें अनुकूल संवेदना का साता के रूप में और प्रतिकूल संवेदना का असाता के रूप में वेदन (अनुभव) करना ये वेदनीय कर्म के साता-असाता रूप दो भेद हैं।

मोहनीय : इन्द्रियों के विषय-भोगों में गृद्ध व मोहित (मूर्छित) होना अपने अविनाशी, निर्विकार, परमानन्द स्वरूप का भान भूल जाना, उससे विमुख हो जाना मोहनीय कर्म है। इसकी अनंतानुबंधी क्रोध, मान आदि २८ प्रकृतियां हैं।

आयु : आसुरी, पाशविक, मानवीय आदि प्रकृतियों का दृढ़तम होकर स्थायी रूप ले लेना फिर उसी प्रकार का शरीर व भव धारण करना आयु कर्म है। इसकी तिर्यंच, मनुष्य, देव और नरक चार प्रकृतियां हैं।

नामकर्म : शरीर, मन, वचन से संबंधित प्रकृतियां एवं प्रवृत्तियां नाम कर्म है। ये गति, जाति, शरीर, आदि के भेदों से ९३ प्रकृतियां हैं।

गौत्र : शरीर, रूप, बल, बुद्धि, वस्तु आदि की प्राप्ति के आधार पर अपना मूल्यांकन करना, अभिमान (मद) करना अर्थात् गौरव व हीनता का अनुभव करना गोत्र कर्म है, यह उच्च गौत्र व नीच गौत्र दो प्रकार का है।

अंतराय कर्म : दान (करुणा, उदारता, कृपा), लाभ, (अभाव का अभाव होना, पूर्णता)

भोग (निराकुल सुख का अनुभव) उपभोग (निराकुलता के सुख की प्रति क्षण अक्षय नूतन अनुभूति होना) वीर्य (सामर्थ्य या पराक्रम) ये जीव की पांच विशेष विभूतियां या उपलब्धियां हैं। इनकी अभिव्यक्ति में मोह के कारण विघ्न पड़ता है। यह विघ्न ही अंतराय कर्म है। जो दानान्तराय, लाभान्तराय आदि पांच प्रकार का है। मोह जितनी मात्रा में घटता जाता है उसी अनुपात में ये पांचों लब्धियां अधिकाधिक अभिव्यक्त या प्रकट होती जाती हैं। विषय-सुख का भोग रूप मोह ही इन उपलब्धियों में विघ्न व बाधा बन रहा है। इनसे अंतर उत्पन्न कर रहा है, इनसे दूर कर रहा है। अत: जहां विषय-सुख का जितना त्याग व संयम है वहां इतनी ही इनकी उपलब्धि है। पूर्ण वीतरागता में इनकी अनंत उपलब्धि है।

अंतराय कर्म घाती कर्म है। इसके क्षयोपशम या क्षय से जीव का स्वाभाविक गुण प्रकट होता है जो मोह के उदय से कभी सम्भव नहीं है। यहां दान का अर्थ दान लेना न होकर दूसरों के हित करने का भाव है। लाभ का अर्थ, अर्थ-लाभ नहीं होकर कामना के त्याग से, अभाव न रहना है। भोग का अर्थ विषय भोग न होकर विषय भोग के त्याग से निजानंद की उपलब्धि है। उपभोग का अर्थ उस निजानंद का बार-बार निरंतर रसास्वादन करना है। वीर्य का अर्थ शारीरिक सामर्थ्य न होकर परवशता रूपी असमर्थता से मुक्ति पाना है। इन सबकी उपलब्धि त्याग, संयम, दया, पराक्रम से ही सम्भव है।

कर्म विपाक के प्रकार : कर्म, प्रकृतियों को विपाक (फलदान) की दृष्टि से चार भागों में बांटा गया है। १. जीव विपाकी, २. भव विपाकी, ३. क्षेत्र विपाकी और ४. पुद्‌गल विपाकी। जिन प्रकृतियों के उदय से जीव के स्वभाव पर, चेतना पर सीधा प्रभाव पड़ता है वे प्रकृतियां जीवन विपाकी हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय ये चार घाती कर्म हैं। ये जीव के निज गुणों का सीधा घात करने वाले हैं। अत: इनकी क्रमश: पांच, नौ, छब्बीस एवं पांच ये पैंतालीस की पैंतालीस प्रकृतियां जीवन विपाकी हैं। वेदनीय का प्रभाव जीव पर साता (सुख) और असाता (दुख) वेदना रूप से तथा गौत्र कर्म का प्रभाव जीवन पर ऊंच-नीच भाव के रूप में होता है। अत: इन दोनों कर्मों की चार प्रकृतियां भी जीव विपाकी कही गई हैं तथा नाम कर्म की गति की चार, जाति की पांच शुभ और अशुभ विहायोगति तथा त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशकीर्ति ये सात एवं इन प्रकृतियों से इतर स्थावर आदि सात तथा श्वाच्छोश्वास तीर्थंकर नाम ये ७८ प्रकृतियां जीव को प्रभावित करती हैं अत: ये प्रकृतियां जीव विपाकी हैं।

पुद्‌गल-विपाकी : शरीर पुद्‌गल से निर्मित है अत: शरीर और शरीर से संबंधित प्रकृतियां पुद्‌गल विपाकी कही गई हैं। यथा— पांच शरीर, शरीरों की अस्थियों की रचना रूप छह संहनन, शरीरों की आकृति रूप छह संस्थान, शरीरों के तीन अंगोपांग, शरीरों के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श एवं शरीर से संबंधित अगुरु-लघु, निर्माण, आतप, उद्योत, उपघात, पराघात, साधारण, प्रत्येक, शुभ, अशुभ, स्थिर, अस्थिर, ये ३६ प्रकृतियां पुद्‌गल विपाकी हैं।

भव विपाकी : आयु कर्म की नरकादि चारों प्रकृतियों का विपाक भव आश्रित है। अत: ये चार प्रकृतियां भव विपाकी हैं।

क्षेत्र विपाकी : नरकादि चारों आनुपूर्वी की ये चार प्रकृतियों नरकादि गति की ओर ही गति कराती हैं, गति में आबद्ध रखती हैं, अत: ये नरकादि प्रकृतियां स्थिति या स्थान, क्षेत्र से संबंधित होने से क्षेत्र विपाकी कही गई हैं।

प्रकृतियों के विपाक का उपर्युक्त विभाजन बड़ा ही मौलिक, व्यावहारिक व युक्तियुक्त है। इन प्रकृतियों में प्राकृतिक घटनाओं व परिस्थितियों से उत्पन्न गर्मी, सर्दी, ऋतुएं, अकाल, सुकाल का होना, महामारी का होना एवं आर्थिक, सामाजिक पारिवारिक, राजनैतिक स्थितियों व व्यवस्थाओं को, कहीं भी, कुछ भी कर्मोदय के परिणाम के रूप में नहीं बताया गया हैं।[१]

संक्रमण : किसी प्रकार के विशेष परिवर्तन या संक्रान्ति को संक्रमण कहते हैं। जैसे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र (स्थान) में चले जाना क्षेत्र संक्रमण है। एक ऋतु के चले जाने से दूसरी ऋतु का आ जाना काल संक्रमण है। किसी व्यक्ति से प्रेम हटकर अन्य व्यक्ति से प्रेम हो जाना भाव संक्रमण है। इसी प्रकार कर्म जगत में भी संक्रमण होता है। इसका सामान्य नियम यह है कि पूर्व में बंधी हुई कर्म प्रकृतियों का संक्रमण या रूपान्तरण वर्तमान में बंधने वाली कर्म प्रकृतियों में होता है।

जीव के वर्तमान परिणामों के कारण से जो प्रकृति पूर्व में बंधी थी उसका न्यूनाधिक व अन्य प्रकृति रूप में परिवर्तन व परिणमन हो जाना कर्म का संक्रमण है। संक्रमण के चार भेद हैं- १. प्रकृति संक्रमण, २. स्थिति संक्रमण, ३. अनुभाग संक्रमण और ४. प्रदेश संक्रमण।

प्रकृति संक्रमण : कर्म की किसी प्रकृति का अन्य प्रकृति में परिवर्तन होना प्रकृति संक्रमण है। कर्म की ज्ञानावरणीय आदि आठ मूल प्रकृतियां हैं। इनमें परस्पर संक्रमण नहीं होता है। इन आठों कर्मों में से प्रत्येक की विभिन्न संख्या में उत्तर प्रकृतियां हैं। प्रत्येक कर्म की इन उत्तर प्रकृतियों में ही अर्थात् सजातीय कर्म प्रकृतियों में ही संक्रमण होता है। अन्य जातीय कर्म प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता। यह ध्रुव नियम है। इसमें कहीं अपवाद नहीं है। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म की किसी प्रकृति का दर्शनावरणीय आदि अन्य सात कर्मों की किसी प्रकृति में संक्रमण नहीं होता।ज्ञानवरणीय कर्म की मतिज्ञानावरणीय आदि पांचों उत्तर प्रकृतियों में ही संक्रमण होता है।

सजातीय कर्म की उत्तर प्रकृतियों में परस्पर संक्रमण होने का जो नियम है उसके भी कुछ अपवाद हैं— जैसे दर्शन मोहनीय की प्रकृतियों का चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता तथा आयु कर्म की चारों प्रकृतियों का परस्पर संक्रमण नहीं होता, इत्यादि।

स्थिति संक्रमण : कर्मों की स्थिति में संक्रमण अर्थात् परिवर्तन होना स्थिति संक्रमण है। यह १. अपवर्तना, २. उद्वर्तना व ३. पर प्रकृति रूप परिणमन से होता है। कर्म की स्थिति का घटना अपवर्तना या अपकर्षण है। स्थिति का बढ़ना उद्वर्तना या उत्कर्षण है। प्रकृति की स्थिति का समान जातीय अन्य प्रकृति की स्थिति में परिवर्तन करना प्रकृत्यन्तर परिणमन संक्रमण है।

अनुभाग संक्रमण : अनुभाग में परिवर्तन होना अनुभाग संक्रमण है। स्थिति संक्रमण के समान अनुभाग संक्रमण भी, १. अपकर्षण, २. उत्कर्षण, ३. पर प्रकृति रूप तीन प्रकार का है।

प्रदेश संक्रमण : प्रदेशाग्र का अन्य प्रकृति को ले जाया जाना प्रदेश संक्रमण है। प्रदेश संक्रमण पांच प्रकार का है : १. उद्वेलन, २. विध्यात, ३. अध:-प्रवृत्त, ४. गुण संक्रमण, ५. सर्व संक्रमण। इसका सामान्य नियम यह है कि जिस प्रकृति का जहां तक बंध होता है उस प्रकृति रूप अन्य प्रकृति का संक्रमण वहीं तक होता है। जैसे असातावेदनीय का बंध छठे गुणस्थान तक व साता वेदनीय का बंध तेरहवें गुणस्थान तक होता है। अत: साता वेदनीय का असातावेदनीय में संक्रमण छठे तथा असातावेदनीय का साता वेदनीय में संक्रमण तेरहवें गुणस्थान तक होता है।

उद्वेलन : संक्रमण अध: प्रवृत्तादि तीन करणों के बिना ही कर्म प्रकृतियों के परमाणुओं का अन्य प्रकृति रूप परिणमन होना। जैसे रस्सी निमित्त को पाकर उखल (उधड़) जाती है उसे उद्वेलन संक्रमण कहते हैं।

विध्यात संक्रमण : जिन कर्मों का गुण प्रत्यय या भव प्रत्यय से अर्थात् गुणस्थान निमित्त व नरक देव आदि भव निमित्त के कारण से जहां पर बंध नहीं होता, वहां पर उन कर्मों की सत्ता

---

१. [illegible]

में रही हुई प्रकृतियों का जो प्रदेश संक्रमण होता है, उसे विध्यात संक्रमण कहते हैं। यह अध: प्रवृत्त संक्रमण के रुकने पर ही होता है।

अध: प्रवृत्त संक्रमण : ध्रुव बंधिनी प्रकृतियों के बंध होने पर तथा स्व स्वभाव बंध योग्य परावर्तन प्रकृतियों के बंध और अबंध की दशा में जो स्वभावत: प्रकृतियों के प्रदेशों का संक्रमण होता रहता है, वह अध: प्रवृत्त संक्रमण है।

गुण संक्रमण : अपूर्व करणादि परिणामों का निमित्त पाकर प्रति समय जो प्रदेशों का असंख्यात गुण श्रेणी रूप संक्रमण होता है, उसे गुण संक्रमण कहते हैं।

सर्व संक्रमण : विवक्षित कर्म प्रकृति के सभी प्रदेशों का एक साथ पर प्रकृति रूप संक्रमण होना सर्वसंक्रमण होता है। यह उद्वेलन, विसंयोजन और क्षपणकाल में चरम स्थिति खंड के चरम समयवर्ती प्रदेशों का ही होता है अन्य का नहीं।

ऊपर वर्णित संक्रमण के चारों भेदों का संबंध संक्लेश्यमान एवं विशुद्धयमान अर्थात् पाप व पुण्य प्रवृत्तियों से है। जैसे जैसे वर्तमान में परिणामों में विशुद्धि आती जाती है वैसे वैसे पूर्व में बंधी हुई पाप प्रवृत्तियों का अनुभाग व स्थिति स्वत: घटती जाती है एवं पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग (रस) स्वत: बढ़ता जाता है। इसके विपरीत जैसे-जैसे परिणामों में मलीनता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे स्थिति बढ़ती जाती है एवं पाप प्रकृतियों का अनुभाग पहले से अधिक बढ़ता जाता है और पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग घटता जाता है। इस प्रकार प्रतिक्षण पूर्व में बंधे हुए समस्त कर्मो के स्थिति व अनुभाग बंध में घट-बढ़ निरन्तर चलती रहती है। एक क्षण भी ऐसा नहीं बीतता है, जिसमें पूर्व में बंध कर्मों की यह घट-बढ़ रुकती हो। संक्रमण-करण प्रक्रिया के इस सिद्धान्त से स्पष्ट है कि पूर्व उपार्जित कर्मों में सदैव परिवर्तन चलता रहता है, सामान्यत: कोई भी बंधा हुआ कर्म एक क्षण भी ज्यों का त्यों नहीं रहता है। संक्रमण की यह प्रक्रिया प्राकृतिक विधान से प्राणी मात्र में निरन्तर चलती रहती है। परन्तु यह किसी ईश्वर, देवी, देवता, व्यक्ति आदि की कृपा-अकृपा के आश्रय से नहीं चलती है, अपितु अपने ही परिणामों के कारण, कारण-कार्य के नियम के अनुसार चलती है। इसमें मनमानी को कहीं भी कोई भी स्थान नहीं है। संक्रमण प्रक्रिया का विवेचन 'जयधवला टीका', 'कर्म-प्रकृति' आदि ग्रन्थों में हजारों पृष्ठों में सूत्रात्मक रूप में है। यह सारी विवेचना मानसिक ग्रंथियों से मुक्ति पाने के उपाय के रूप में होने से बड़ी मनोवैज्ञानिक एवं मानव जाति के लिए अत्यन्त उपयोगी व महत्वपूर्ण है।

कर्मसिद्धान्त व मनोविज्ञान : जैन दर्शन जिसे कर्मबंध होना कहते हैं, उसे मनोविज्ञान में मानसिक ग्रंथि का निर्माण होना कहते हैं। इस कर्म बंध या मनोग्रंथि का निर्माण होता है भोग प्रवृत्ति से, सुख भोगने की इच्छा से, संकल्प से। भोग की रुचि को जैन दर्शन में रति कहा है। भोग के प्रति रति या रुचि तो रहे, परन्तु किसी भय से या अन्य सुख के प्रलोभन से उसे न भोगे अर्थात् उस ग्रन्थि का दमन करे तो वह नष्ट नहीं होती, प्रत्युत प्राकृतिक नियमानुसार वह दमित ग्रन्थि विशेष विकृत होकर विक्षिप्तता आदि किसी अन्य मार्ग से प्रकट (उदय) होती है। इसे जैन कर्म-सिद्धान्त में स्व-जातीय, पर-प्रकृति के रूप-संक्रमण का एक प्रकार कहा है। अर्थात् वह अन्य मानसिक रोग के रूप में प्रकट होती है। अत: मनोविज्ञान में इच्छा का दमन न करते हुए उसे भोगने पर बल दिया गया है। परन्तु इस प्रकार भोग रूप में प्रकट हुई इच्छा में सुख का अनुभव होता है, जो रुचिकर लगता है जिससे उसका संस्कार अंतस्तल पर अंकित हो जाता है। अर्थात् नवीन ग्रंथि (बंध) का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार इच्छाओं की उत्पत्ति-पूर्त्ति का, मानसिक ग्रन्थियों के उदय व निर्माण का प्रवाह या संतति निरन्तर चलती रहती है। उसका अंत नहीं होता है। भोग कर इच्छा की पूर्त्ति करना इस उपाय को पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि प्राणी मात्र जाने-अनजाने काम में ले रहे हैं, परन्तु ऐसा करके आज तक किसी ने भी मानसिक ग्रंथियों से छुटकारा नहीं

पाया।

वस्तुस्थिति यह है कि वर्तमान मनोविज्ञान कर्म-बंध व उदय की प्रक्रिया के स्थूलतम प्राकृतिक रूप को ही पकड़ पाया है। वह मानसिक ग्रंथियों जो भोगेच्छा के रूप में प्रकट या उदय होती हैं उनके भोगने का समर्थन करता है। इसका मानना है कि इनके दमन से कुंठाएं एवं जटिल मानसिक ग्रंथियों का निर्माण होता है। जिनका परिणाम विक्षिप्तता आदि भयंकर रोगों के रूप में प्रकट होता है। अतः इन रोगों से बचने के उपाय के रूप में मनोविज्ञान में मार्गान्तरीकरण (Redirection) और उदात्तीकरण (Sublimation) की प्रक्रिया सुझाई गई है। इनमें कला की साधना अथवा सेवा आदि लोकोपकारी कार्यों में काम ऊर्जा का उदात्तीकरण होना माना है। यह जैन दर्शन में वर्णित संक्रमण की प्रक्रिया का अत्यल्प अंश मात्र है। इच्छाओं को भोग से मिले सुख से नवीन इच्छाओं की मानसिक ग्रंथियों का निर्माण होता रहता है। फिर उन ग्रंथियों का भोगने के रूप में उदय होता है। इस प्रकार मानसिक ग्रंथियों का निर्माण और उदय का चक्र बराबर चलता ही रहता है। इस चक्र के भेदन का आधुनिक मनोविज्ञान में अभी तक कोई उपाय नहीं खोजा जा सका है। जबकि जैन दर्शन में प्रतिपादित कर्मसिद्धान्त में मानसिक ग्रंथियों के दमन किये बिना ही उनके विलय, विलय व क्षय का बड़ा ही सरल, सुगम, सुन्दर उपाय बताया गया है। जैन धर्म में इस बात पर बहुत जोर दिया गया है कि मानव-जीवन भोगेच्छाओं की पूर्ति करने के लिए नहीं मिला है। मानव जीवन तो भोगों पर विजय पाने के लिए मिला है।

वस्तुतः जैन दर्शन का कर्म सिद्धान्त मनोविश्लेषण का सर्वांग सम्पूर्ण रूप प्रस्तुत करता है। इसमें मानसिक ग्रंथियों (कर्मबंधनों) के छेदन, भेदन एवं सदा के लिए पूर्ण रूपेण क्षय करने की प्रक्रिया का क्रम-बद्ध युक्तियुक्त एवं विधिवत् पूर्ण वर्णन विद्यमान है। जिस दिन मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर जायेगा और कर्म सिद्धान्त के वर्तमान जीवन में सम्बन्धित प्रायोगिक मर्म से वे परिचित होंगे, उस दिन मनोविज्ञान के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन व आश्चर्यजनक विकास होगा। फिर मनोविज्ञान मानव जाति की समस्त समस्याओं, अभावों, तनावों, दबावों, द्वन्द्वों, संघर्षों आदि दुःखों के नाश करने वाले एक विशिष्ट विज्ञान का रूप धारण कर लेगा। जैन दर्शन के साहित्य में कर्म का जितना विशद विवेचन है उतना विश्व के किसी भी अन्य दर्शन में नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि सभी दर्शनों के कर्म विषयक साहित्य को मिला लिया जाए तब भी जैन कर्म-सिद्धान्त साहित्य की तुलना में समान स्तर पर नहीं आ सकता। यह कहा जाय कि कर्म विषयक जैन साहित्य [illegible] महासागर के बराबर है तब भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। साथ ही जैन दर्शन का कर्म सिद्धान्त कारण कार्य के नियम पर आधारित है। अतः यह पूर्ण रूपेण वैज्ञानिक भी है। इसमें आकस्मिकता, दैव, नियति आदि को कोई भी स्थान नहीं है। इस में यह बताया गया है कि कर्म के बांधने या न बांधने में या [illegible] करने में प्राणी पूर्ण स्वतंत्र है। कर्म विषयक स्वतन्त्रता का यह सिद्धान्त अन्य दर्शनों से [illegible] विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है।

[illegible]

[illegible]

कर्मों को क्षय करने में भी साधक स्वाधीन है।

जैन दर्शन में कर्म क्षय कर मुक्ति रूप साध्य की प्राप्ति के दो प्रमुख साधन बताये गये हैं—१. संवर और २. निर्जरा। संवर है नये कर्म न बांधना अर्थात् कषाय युक्त प्रवृत्ति न करना। दूसरे शब्दों में विषय भोगों का त्याग करना और निर्जरा है पूर्व में बंधे कर्मों को बिना फल भोगे क्षय करना। अर्थात् ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि तपों द्वारा मोह-कषाय को गलाना, साथ ही पुण्य कार्य रूप सेवा द्वारा पाप कर्मों की स्थिति व अनुभाग का अपकर्षण करना। जैन धर्म में संवर और निर्जरा रूप साधना करने में मानव मात्र को पूर्ण समर्थ और स्वाधीन माना है। इसमें वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, जाति, अवस्था, देश, काल आदि को कहीं भी बाधक नहीं माना गया है।

आशय यह है कि जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित कर्म-सिद्धान्त प्राकृतिक विधान के आधार पर स्थित है, पूर्ण मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक है। इसे जानकर नवीन कर्म बंध को रोका जा सकता है, पुराने बंधे हुए पाप कर्मों को पुण्य में बदला जा सकता है अथवा उनका नाश भी किया जा सकता है और सदा के लिये शरीर और संसार से अतीत होकर देहातीत, लोकातीत, अजर, अमर, अविनाशी, अक्षय व अनंत सुखमय जीवन का अनुभव किया जा सकता है।

जैन दर्शन का कर्म सिद्धान्त जीवन विज्ञान है। जीवन विज्ञान होने से इसमें जीवन से संबंधित समस्त स्थितियों व अवस्थाओं का अर्थात् जीवन का सर्वांगीण विवेचन है। इसमें जीव का जन्म क्यों? कैसे? व कहां होता है? जन्म लेने के पश्चात् तन, मन, वचन व चेतन तथा इनसे संबंधित विकारों की उत्पत्ति, उसका कारण तथा निवारण आदि समस्त विषयों पर विशद प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः कर्म-सिद्धान्त जीवन शास्त्र है। जिसमें राग-द्वेष आदि बंधनों, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय, पराधीनता, अभाव, तनाव, दबाव आदि दुःखों से मुक्ति प्राप्ति का अत्यन्त सरल, सहज, सुगम मार्ग भी बताया है, जिसे मानव मात्र अपना कर सदा के लिये इन दुःखों से मुक्त होकर शरीर और संसार के अतीत के अविनाशी, अजर, अमर जीवन व अक्षय अव्याबाध, अनंत सुख का स्वामी हो सकता है। ऊपर कह आए हैं कि जैन दर्शन का समस्त कर्म सिद्धान्त प्राकृतिक विधान पर आधारित है। प्राकृतिक विधान सर्वत्र, सब पर समान रूप से लागू होता है, वह कभी बदलता नहीं है और न उसमें कोई अपवाद होता है। अतः वह सार्वजनीन, सार्वदेशिक, सार्वकालिक होता है। वह कभी नूतन व पुरातन न होकर सनातन होता है। जैन धर्म ऐसा ही सनातन धर्म है। युग चाहे कितना ही बदले, विज्ञान प्रगति कर अपनी कुछ भी देन दे, कुछ भी मान्यता प्रदान करे, उसका प्रभाव जैन धर्म के इन सनातन, नैसर्गिक सिद्धान्तों पर किंचित भी नहीं पड़ने वाला है। प्रत्युत जैसे-जैसे विज्ञान भोग की विविध नवीन-नवीन सामग्री प्रस्तुत करता जायेगा, मानव में भोग वृत्ति बढ़ती जायेगी। वैसे ही वैसे मानव जाति में अभाव, तनाव, दबाव, नीरसता, हीनभाव का तथा स्वार्थपरता से उत्पन्न संकीर्णता आदि का दुःख बढ़ता जायेगा और इस दुःख से मुक्ति पाने के लिये इस सनातन धर्म की आवश्यकता व उपयोगिता बढ़ती जायेगी। अतः विवश हो मानव जाति को जैन धर्म में प्रतिपादित सिद्धान्तों की शरण लेनी ही पड़ेगी।

अपरिग्रहवाद के नए आयाम

● **डॉ. प्रेम सुमन जैन**, सह-आचार्य एवं अध्यक्ष,
जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

वर्तमान युग के विकासशील व्यक्ति एवं समाज के जीवन में जितनी अधिक भौतिक समृद्धि आई है, उतनी मात्रा में ही उसे अनुभव होने लग गया है कि वास्तविक सुख वस्तुओं के संग्रह में नहीं है। धन के संविभाग, विसर्जन से ही कुछ आत्मिक शान्ति मिल सकती है। जीवन का सार ग्रन्थी होने में नहीं है, निर्ग्रन्थ के पथ की तलाश में है। तृष्णा के तिरोहित करने में है। भारतीय धर्म-दर्शन में तृष्णा से मुक्ति एवं त्याग की भावना आदि का अनेक ग्रन्थों में प्रतिपादन है, किन्तु अपरिग्रह के स्वरूप एवं उसके परिणामों का सूक्ष्म विवेचन जैन ग्रन्थों में ही अधिक हुआ है। पार्श्वनाथ के चातुर्याम विवेचन से लेकर पं. आशाधर तक के श्रावकाचार ग्रन्थों में पांच व्रतों के अन्तर्गत परिग्रह-परिमाण व्रत की सूक्ष्म व्याख्या की गई है। उस सबका विवेचन यहां प्रतिपाद्य नहीं है। मूल बात इतनी है कि जैन गृहस्थ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ अपरिग्रह व्रत को भी जीवन में उतारे। वस्तुत: यह पांचवां व्रत कसौटी है— श्रावक व साधु के लिये। यदि वह अहिंसा आदि व्रतों के पालन में प्रामाणिक रहा है तो वह परिग्रही हो नहीं सकता। और यदि वह परिग्रही है तो अहिंसा आदि व्रत उससे सधे नहीं हैं। अपरिग्रह के इस दर्पण में आज के भारतीय समाज का मुखौटा दर्शनीय है।

परिग्रह की सबसे सूक्ष्म परिभाषा तत्वार्थसूत्र में दी गई है- 'मूर्च्छा परिग्रह:'। भौतिक वस्तुओं के प्रति तृष्णा व ममत्व का भाव रहना मूर्च्छा है। इसी बात को प्रश्नव्याकरण सूत्र आदि ग्रन्थों में विस्तार से दिया गया है। अन्तरंग परिग्रह और बाह्य परिग्रह की बात कही गई है। आत्मा के निज गुणों को छोड़कर क्रोध, लोभ आदि परभावों को ग्रहण करना अन्तरंग परिग्रह तथा ममत्व भाव से धन, धान्य आदि भौतिक वस्तुओं का संग्रह करना बाह्य-परिग्रह है। शास्त्रों में परिग्रह को एक महावृक्ष कहा गया है। तृष्णा, आकांक्षा आदि जिसकी जड़ें तथा छलकपट, कामभोग आदि शाखाएं व फल हैं। परिग्रह के तीस नामों का उल्लेख जैन ग्रन्थों में है, जो उसके स्वरूप के विभिन्न आयामों को प्रगट करते हैं। वस्तुत: परिग्रह में समस्त विश्व एवं व्यक्ति का सम्पूर्ण मनोलोक समाहित है। अपरिग्रह में वह इन दोनों से क्रमश: निर्लिप्त होकर आत्म-स्वरूप मात्र रह जाता है। जैन दर्शन की दृष्टि से आत्मज्ञान की यह दशा ही चरम उपलब्धि है।

प्रश्न यह है कि जिस परम्परा के चिन्तक परिग्रह से सर्वथा निर्लिप्त होकर विचरे, जिनके उपदेशों में सबसे सूक्ष्म व्याख्या परिग्रह के दुष्परिणामों की गई, उसी परम्परा के अनुयायियों ने परिग्रह को इतना क्यों पकड़ रखा है? भौतिक समृद्धि के कर्णधारों में जैन समाज के श्रावक अग्रणी क्यों है? भगवान् महावीर के समय में भी श्रेष्ठिजन थे। उनके बाद भी जैन धर्म में सार्थवाहों की कमी नहीं रही। मध्ययुग के शाह और साहूकार प्रसिद्ध हैं। वर्तमान युग में भी जैन धर्म के श्रीमन्तों की कमी नहीं है। ढाई हजार वर्षों के इतिहास में देश की कला, शिक्षा व संस्कृति इन श्रेष्ठिजनों के आर्थिक-अनुदान से संरक्षित व पल्लवित हुई है। किन्तु इस वर्ग द्वारा संचित सम्पत्ति से पीड़ित मानवता का भी कोई इतिहास है क्या? इनके अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक पीड़ा का लेखा-जोखा किया है किसी ने? भौतिक समृद्धि की नश्वरता का आठों पहर व्याख्यान सुनते हुए भी परिग्रह के पीछे यह दीवानगी क्यों है? कौन है इसका उत्तरदायी? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने से ही व्यक्ति और समाज के परिप्रेक्ष्य में अपरिग्रह को समझा जा सकेगा।

भारतीय समाज को संरचना की दृष्टि से देखें तो महावीर के युग तक वर्णगत व्यवस्था प्रचलित

हो चुकी थी, किन्तु अहिंसा की उसमें सर्वाधिक प्रमुखता होने से कृषि और युद्धवृत्ति को अपना वाले वर्ग ने जैन धर्म को अपना कुलधर्म बनाने में अधिक उत्साह नहीं दिखाया। व्यापार व वाणिज्य में हिंसा का सीधा सम्बन्ध नहीं था। अत: जैनधर्म वैश्यवर्ग के लिये अधिक अनुकूल प्रतीत हुआ और वह क्रमश: श्रेष्ठिजनों का धर्म बनता गया। इस तरह श्रीमन्तों के साथ व्यापारिक समृद्धि औ जैन धर्म दोनों जुड़े रहे। विभिन्न प्रकार के दानों द्वारा परिग्रह-संग्रह की अपरोक्ष स्वीकृति मिलती रही।

श्रेष्ठिजनों के साथ जैनधर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध होने से वह दिनों-दिन महंगा होता गया। मूर्ति-प्रतिष्ठा, मंदिर-निर्माण, दान की अपार महिमा, आदि धार्मिक-कार्य बिना धन के सम्भव नहीं रह गये। साथ ही इन धार्मिक-कार्यों को करने से स्वर्ग की अपार सम्पदा की प्राप्ति का प्रलोभन भी जुड़ गया व्यापार-बुद्धि वाले श्रावक को यह सौदा सस्ता जान पड़ा। वह अपार धन अर्जित करने लगा उसमें से कुछ खर्च कर देने से स्वर्ग की सम्पदा भी सुरक्षित होने लगी। साथ ही उसे वर्तमान जीवन में भी महान् दानी व धार्मिक कहा जाने लगा। इस तरह परिग्रह और धर्म एक दूसरे के बराबर आकर खड़े हो गये। महावीर के चिन्तन से दोनों परे हट गये।

परिग्रह-संचय का तीसरा कारण मनोवैज्ञानिक है। हर व्यक्ति सुरक्षा में जीना चाहता है। सुरक्षा निर्भयता से आती है और निर्भयता पूर्णता से। व्यक्ति अपने शरीर की क्षमता को पहिचानता है। उसे अंगरक्षक चाहिये, सवारी चाहिये, धूप एवं वर्षा से बचाने के लिये महल चाहिये। और वे सब चीजें चाहिये जो शरीर की कोमलता को बनाये रखें। इसीलिए इस जगत में अनेक वस्तुओं का संग्रह है। शरीर की अपूर्णता वस्तुओं से पूरी की जाती है। शरीर के सुख का जिसे जितना अधिक ध्यान है, वह उतनी ही अधिक वस्तुओं के संग्रह का पक्षपाती है। इन वस्तुओं के सामीप्य से व्यक्ति निर्भय बनना चाहता है। धर्म, दान-पुण्य उसके शरीर को स्वर्ग की सम्पदा प्रदान करेंगे, इसलिए उसने धर्म को भी वस्तुओं की तरह संग्रह कर लिया है। वस्तुओं को उसने अपने महल में संजोया है। धर्म को अपने बनाये हुए मंदिर में रख दिया है। इस तरह इस लोक और परलोक दोनों जगह परिग्रही अपनी सुरक्षा का इंतजाम करके चलता है।

आधुनिक युग में परिग्रही होने के कुछ और कारण विकसित हो गये हैं। भय के वैज्ञानिक उपकरण बढ़े हैं। अत: उनसे सुरक्षित होने के साधन भी खोजे गये हैं। वर्तमान से असंतोष एवं भविष्य के प्रति निराशा ने व्यक्ति को अधिक परिग्रही बनाया है। पहले स्वर्ग के सुख के प्रति आस्था होने से व्यक्ति इस लोक में अधिक सुखी होने का प्रयत्न नहीं करता था। अब वह भ्रम टूट गया है। अत: साधन सम्पन्न व्यक्ति यहीं स्वर्ग बनाना चाहता है। स्वर्ग के सुखों के लिये रत्न, अप्सराएं आदि चाहिये सो व्यक्ति जिस किसी तरह से उन्हें जुटा रहा है। और उस अपव्यय को रोक रहा है जो वह धर्म पर खर्च करता था। पहले व्यापार और धर्म साथ-साथ थे। अब धर्म में भी व्यापार प्रारम्भ हो गया है।

परिग्रह के प्रति इस आसक्ति के विकसित होने में आज की युवापीढ़ी भी एक कारण है। पहले व्यक्ति अपने परिवार व सम्पत्ति के प्रति इसलिए ममत्व को कम कर देता था कि उसे विश्वास होता था कि उसके परिवार व व्यापार को उसकी सन्तान सम्हाल लेगी। वृद्धावस्था में वह नि:संग होकर धर्म ध्यान कर सकेगा। कारण कुछ भी हो किन्तु परिवार के मुखिया को आज की युवापीढ़ी में यह विश्वास नहीं रहा। वह अपने लिये तो परिग्रह करता ही है, पुत्र में ममत्व होने से उसके लिये भी जोड़कर रख जाना चाहता है। न केवल पुत्र अपितु दामादों का पोषण भी पुत्री के पिता के ऊपर आ गया है। ऐसी स्थिति में यदि वह परिग्रह न करे तो करे क्या? समाज में तो उसे रहना है। पहले एक पिता अपने चार बेटों का भरण-पोषण कर लेता था, किन्तु आज चार बेटे एक पिता के भार को नहीं उठा पा रहे हैं। यह सब मनोवृत्तियों के परिवर्तन का खेल है।

वर्तमान सामाजिक मूल्यों से भी परिग्रह-वृत्ति प्रभावित हुई है। चक्रवर्तियों व सामन्तों का वैभव साहित्य में पढ़ते-पढ़ते हमारी आंखें उससे चौंधिया गई हैं। समाज में हमने उसे प्रतिष्ठा देनी प्रारम्भ कर दी है जो वैभव सम्पन्न है। नैतिक-मूल्यों के धनी हमारी उंगलियों पर नहीं चढ़ते। युवापीढ़ी के कलाकारों, चरित्रवान युवकों व चिन्तनशील व्यक्तियों की हमें पहिचान नहीं रही। बनावटीपन की हमें पहिचान नहीं रही। बनावटीपन की इस भीड़ में महावीर का चिन्तन कहीं खो गया है। जीवन-मूल्य को हमने इतना अधिक पकड़ लिया है कि जीव-मूल्य हमारे हाथ से छिटक गया है। और जब जीव का, आत्मा का, निर्मलता का मूल्य न रह जाये तो जड़ता ही पनपेगी। कीचड़ ही कीचड़ नजर आयेगा। जड़ता में मूर्च्छा बढ़े तो आश्चर्य नहीं।

निर्ग्रन्थ दर्शन इसी मूर्च्छा को तोड़ने की बात करता है। भगवान् महावीर का चिन्तन यहीं से प्रारम्भ होता है। परिग्रह के इन परिणामों से वे परिचित थे। वे जानते थे कि व्यक्ति जब तक स्वयं का स्वामी नहीं होगा, वस्तुएं उस पर राज्य करेंगी। उसे इतना मूर्च्छित कर देंगी कि वह स्वयं को न पहिचान सके। जिस शरीर को उसने धरोहर के रूप में स्वीकार किया है, उस शरीर की वह स्वयं धरोहर हो जाय इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी? अत: महावीर ने आत्मा और शरीर के भेद-विज्ञान से ही अपनी बात प्रारम्भ की है। बिना इसके अहिंसा, अपरिग्रह आदि कुछ फलित नहीं होता। अत: अपरिग्रह की साधना के लिये मूर्च्छा को तोड़ना आवश्यक है।

व्यक्ति और समाज के सन्दर्भ में अपरिग्रही होना कठिन नहीं है। समझ का फेर है। साधन-सम्पन्न व्यक्ति आज हर तरह से पूर्ण होना चाहता है। निर्भय होना चाहता है और चाहता है कि उसका सुख अपरिमित हो, कभी न समाप्त होने वाला। इस सबके साथ वह धार्मिक भी रहना चाहता है। समाज में प्रतिष्ठित भी। इस सबके लिये उसने दो रास्ते अपनाकर देख लिये। त्याग का और संग्रह का मार्ग। हजारों वर्षों से वह दान करता आ रहा है। करोड़ों का उसने संग्रह भी किया है, किन्तु छोड़ने और बटोरने की इस आपाधापी में उसने जीवन को जिया नहीं। हमेशा उसका कर्त्तापन, अहं सिर उठाकर खड़ा रहा है। इसीलिए उसकी अन्य उपलब्धियां बौनी रह गईं। वह जमाखोर, पूंजीपति, पाखण्डी न जाने किन-किन नामों से जाना जाता रहा है। अत: अब ये दोनों रास्ते बदलने होंगे। केवल दान देने से अपरिग्रही नहीं हुआ जा सकता, उसके लिये आसक्ति का त्याग भी जरूरी है।

महावीर का चिन्तन सही मार्ग खोजने में बहुत उपयोगी है। उन्होंने अहिंसा से अपरिग्रह तक का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी पहली शर्त है कि तुम अपना गन्तव्य निश्चित करो। बनावटीपन के रास्ते पर चलना है तो स्वप्न में जीने के अनेक ढंग हैं। और यदि बाहर-भीतर एक-सा रहना है तो आत्मा और शरीर की सही पहिचान कर लो। आत्म-ज्ञान जितना बढ़ता जायेगा, उतने तुम अहिंसक होते जाओगे। जगत के प्राणियों के अस्तित्व को अपने जैसा स्वीकारने से तुम उनके साथ झूठ नहीं बोल सकते। कपट नहीं कर सकते। शरीर से स्वामित्व मिटते ही चोरी नहीं की जा सकती। क्योंकि तुम्हारी आत्मा के विकास के लिये किसी पराई वस्तु की अपेक्षा नहीं है। सत्य और अस्तेय को जीने वाला व्यक्ति परिग्रह में प्रवृत्त ही नहीं हो सकता। किसके लिए वस्तुओं का संग्रह? आत्मा निर्भयी है। पूर्ण है। सुखी है। फिर परिग्रह का क्या महत्व? वह तो शरीर के ममत्व के त्याग के साथ ही विसर्जित हो गया। यह है महावीर की दृष्टि में अपरिग्रही होने का महत्व। इसी के लिए है- अणुव्रतों और महाव्रतों की साधना।

प्रश्न हो सकता है कि परम्परा से परिग्रह में आकंठ डूबे रहने से एकाएक आत्म-ज्ञान की समझ कैसे जागृत हो सकती है? व्यापार-वाणिज्य को अचानक छोड़ देने से देश की अर्थ-व्यवस्था का क्या होगा? अथवा किसी एक या दो व्यक्तियों के अपरिग्रही हो जाने से शोषण तो समाप्त नहीं होगा? प्रश्नों की इस भीड़ में महावीर की वाणी हमें सम्बल प्रदान करती है।

जैन धर्म को कितना ही निवृत्तिमूलक कहा जाय, किन्तु वह प्रवृत्तिमार्ग से अलग नहीं। उसमें केवल वैराग्य की बात नहीं है। समाज के उत्थान की भी व्यवस्था है। स्थानांगसूत्र में दस प्रकार के जिन धर्मों का विवेचन है, वे गृहस्थ के सामाजिक दायित्वों को ही पूरा करते हैं। अणुव्रतों का पालन बिना समाज के सम्भव नहीं है। श्रावक जिन गुणों का विकास करता है, उनकी अभिव्यक्ति समाज में ही होती है। अतः महावीर ने अपरिग्रही होने की प्रक्रिया में समाज के अस्तित्व को निरस्त नहीं किया है।

गृहस्थ-जीवन में रहते हुए हिंसा, परिग्रह आदि से बचा नहीं जा सकता, यह ठीक है। किन्तु महावीर का कहना है कि श्रावक अपनी दृष्टि को सही रखे। जो काम वह करे उसके परिणामों से भलीभांति परिचित हो। आवश्यकता की उसे सही पहिचान हो। जीवन-यापन के लिए किन वस्तुओं की आवश्यकता है, उनको प्राप्त करने के क्या साधन हैं तथा उनके उपभोग से दूसरों के हित का कितना नुकसान है आदि बातों को विचारकर वह परिग्रह करने में प्रयुक्त हो तो इससे कम से कम कर्मों का बन्ध उसे होगा। श्रावक के बारह व्रत एवं ग्यारह प्रतिमाएं आदि का पालन गृहस्थ को इसी निस्पृही वृत्ति का अभ्यास कराता है। इसी से उसे आत्म-ज्ञान की समझ विकसित होती है। व्यक्ति को उपभोग एवं उपयोग के अन्तर को समझना होगा। वस्तुओं के उपयोग से वे दूसरों के काम भी आ सकती हैं। किन्तु जब उनका उपभोग होने लगता है तब वे एक के पास संग्रहीत हो जाती हैं। उनका संविभाग नहीं हो पाता।

अपरिग्रही होने के लिये दूसरी बात प्रामाणिक होने की है। उसमें वस्तुओं की मर्यादा नहीं, अपनी मर्यादा करना जरूरी है। सत्य-पालन का अर्थ यह नहीं है कि व्यापारिक गोपनीयता को उजागर करते फिरें। इसका आशय केवल इतना है कि आपने जिस प्रतिशत मुनाफे पर व्यापार करना निश्चित किया है, उसमें खोट न हो। जिस वस्तु की आप कीमत ले रहे हैं, वह मिलावटी न हो। और अस्तेय का अर्थ है कि आपकी जो व्यापारिक सीमा है उसके बाहर की वस्तु का अनावश्यक संग्रह नहीं किया जाय। इन अतिचारों से बचाते हुए यदि जैन गृहस्थ व्यापार करता है तो वह देश के व्यापार को प्रामाणिक बनायेगा। आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुरूप समृद्ध भी। तब उसकी दुकान और मंदिर में कोई फरक नहीं होगा। व्यापार और धर्म एक दूसरे के पूरक होंगे।

प्रश्न रह जाता है समाज में व्याप्त शोषण व जमाखोरी की प्रवृत्ति को बदलने का। महावीर का चिन्तन इस दिशा में बड़ा संतोषी है। पूरे समाज को बदलने का दिवा स्वप्न उसमें कभी नहीं देखा गया, किन्तु व्यक्ति के बदलने का पूरा प्रयत्न किया है। इसलिए महावीर का समाज अशुभ से शुभ की ओर, हेय से उपादेय की ओर जाने में किसी समारोह की प्रतीक्षा नहीं करता। भीड़ का अनुगमन नहीं चाहता। और न ही किसी राजनेता या बड़े व्यक्ति के द्वारा उसे उद्घाटन की आवश्यकता होती है। क्योंकि ये सभी मूर्च्छा के कार्य हैं, ममत्व और आकांक्षा के। इसीलिए महावीर की दृष्टि से तो कोई भी व्यक्ति, किसी भी स्थिति से बदलाहट के लिये आगे आ सकता है। उसके परिवर्तन की रश्मियां समाज को प्रभावित करेंगी ही। व्यक्ति में जब अनासक्त दृष्टि हो तो समाज में संविभाग स्वयमेव आयेगा। ममत्व के हटते ही समत्व का द्वार खुलेगा।

जैन दर्शन में ध्यान का स्वरूप एवं महत्व

● डॉ. शेखरचन्द्र जैन
६, उमियादेवी सोसाइटी नं. २, अमराईबाड़ी,
अहमदाबाद-३८००२६

प्राय: प्रत्येक दर्शन में आराध्य के साथ तादात्म्य स्थापना हेतु चित्त की एकाग्रता या ध्यान का उल्लेख अवश्य मिलेगा। भारतीय दर्शनों में इसकी विशेष महत्ता को स्वीकार किया गया है उसमें भी जैन दर्शन ने ध्यान की क्रिया को सविशेष स्वीकारा है। इस विशेष स्वीकृति में एक विशेष कारण भी है। अन्य दर्शनों या धर्मों में ईश्वर को पाने की क्रिया या प्रयास है जबकि जैन धर्म में स्वयं ईश्वर बनने का आत्म-संकल्प होता है। जितना अधिक साधक अपने आत्मप्रदेश से जुड़ता है उतना ही अधिक वह मुक्ति के निकट पहुंचता जाता है। वैसे भी जैन धर्म में "सामायिक" का सर्वाधिक महत्व माना गया है। आचार्यों ने 'समय' का अर्थ आत्मा किया है और आत्मा के साथ नैकट्य प्राप्त करना अथवा आत्मामय होने का अभ्यास ही सामायिक है।

हमारी समस्त विकृतियों, मानसिक संत्रास एवं असंयम का मूल कारण हमारी इन्द्रियों की विच्छृंखलता है। इन्द्रियों की यह चंचलता निरन्तर विकार, विलास, भोग, क्रोधादि कषाय, अभक्ष्य भक्षण एवं पंचपापों की ओर उन्मुख करती रहती है। इससे मनुष्य अपने आत्मा के स्वाभाविक गुण क्षमा, दया, करुणा, निरभिमानता एवं करणीय अकरणीय के ज्ञान को भूल जाता है। उसका मन निरन्तर भटकता रहता है। एषणाओं के आवरण में सत्य छिप जाता है। इससे वह अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों का शिकार बनता है। परम तत्व ईश्वर या आत्मा के वास्तविक स्वरूप को वह विस्मृत कर देता है। इससे ठीक विपरीत जब उसे साधु भगवंत से ज्ञान प्राप्त होता है तो वह अपने अन्तरंग में देखने के लिए इन्द्रिय/चित्त को एकाग्र बनाने का प्रयास करता है तब उसे अपने मूल उत्तम स्वभाव का ज्ञान होता है। यही आत्म स्वभाव को जानने की विधि सामायिक है। यही ध्यान है, यही आत्मा के साथ योग है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि "इन्द्रिय संयम ही ध्यान है"। यही तप है। आचार्यों ने कहा है "इन्द्रिय निरोध्स्तप:"। आत्मप्रदेश पर छाये परिग्रह का आवरण हटाना ध्यान है। जो इसे हटाता है, वही व्रती है। कहा गया है "नि:शल्योव्रती"। जैन दर्शन की परिभाषा में कहूं तो कृष्ण लेश्याओं के निवारणार्थ, इन्द्रिय संयम द्वारा आत्मा से नैकट्य प्राप्त करने का उपक्रम ही ध्यान है। ध्यान की गहराई तप की उन्नति है। निर्विकार होना उसकी परिणति है। तनावमुक्ति, संतोष के भावों का पनपना उसका परिणाम है।

ध्यान या सामायिक के सन्दर्भ में जैनाचार्यों ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें आचार्य शुभचंद का ज्ञानार्णव, हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्र प्रमुख है। वैसे उत्तराध्ययन सूत्र में या अन्य महान् आचार्यों ने इसे जीवन शैली के रूप में प्रस्तुत किया है। इन्हीं आचार्यों के ग्रंथों के आधार पर मैं यहां अपनी बात कहने का प्रयत्न करूंगा।

जैन दर्शन में ध्यान का उद्देश्य ही आत्म-मुक्ति एवं प्राणीमात्र के कल्याण की भावना है। जो ध्यान का उपयोग मंत्र-तंत्र की साधना द्वारा विद्या प्राप्त कर लोगों का अहित करने के लिए करते हैं। जैनचार्यों ने ऐसे ध्यान को आर्त एवं रौद्र ध्यान के अन्तर्गत रखकर उन्हें "कुध्यान" कहा है। ऐसे ध्यान का आराधक निरन्तर कषाय से पीड़ित एवं परपीड़ा करने के लिए ही उद्विग्न रहता है। वह वर्तमान जन्म एवं भावी जीवन को कष्टप्रद बनाता है। ऐसा ध्यान सर्वथा त्याज्य बताया गया है। अन्य दो ध्यान, धर्म-ध्यान एवं शुक्ल ध्यान की महत्ता को स्वीकार किया है। धर्म ध्यान हम सबके लिए आवश्यक है। धर्मध्यान की उत्कृष्ट परिणति एवं उर्ध्वारोहण शुक्ल ध्यान तक विकसित

ो सकता है। वैसे वर्तमान युग में शुक्ल ध्यान इस क्षीण शरीरी व्यक्ति के लिए असम्भव है पर नरिहंत व सिद्धत्व प्राप्त करने के लिए शुक्ल ध्यान ही श्रेष्ठ है। हम इस दृष्टि से "धर्म ध्यान" र अपना विचार केन्द्रित करेंगे।

ध्यान के मूल में चित्त की एकाग्रता के सन्दर्भ में कहीं कोई मतभेद नहीं। पतंजलि ने अपने न्थ "योग दर्शन" में चित्त की पांच भूमिकाओं का वर्णन करते हुए उनकी चंचलता का निषेध नावश्यक माना है। चित्त की ऐसी ही एकाग्रता को "धर्म ध्यान" में आवश्यक माना है। "ध्यान" वयं का परीक्षण करने की क्रिया है। यह शरीर मेरा नहीं है परन्तु मैं स्वयं आत्मा हूं, यह चिन्तन ा भाव चित्त की एकाग्रता से ही सम्भव हो सकता है। इससे भी आगे इस ध्यान की प्रक्रिया तन के साथ मन-वचन की एकाग्रता भी आवश्यक है। संयम के मार्ग में जितेन्द्रियता तक पहुंचने ः लिए समता को अपना ध्येय बनाना ध्यान का मुख्य अंग है। ध्यान का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही कि "विकारों की झंझा में साधना की ज्योति बुझ न जाये"।

जैनेन्द्र सिद्धान्तकोष एवं तत्वानुशासन में एकाग्रता को ध्यान कहा है। सर्वार्थसिद्धि में चित्त के वक्षेपों का त्याग करना ध्यान है। आ० विद्यानन्दजी के अनुसार "ध्यान द्वारा कर्मों की जो संवर-निर्जरा ोती है उसका फल मुक्ति है, आत्म-शांति है, अनंत और अखंड आनन्द है"। धवला, सर्वार्थसिद्धि, जवार्तिक, उत्तराध्ययन सूत्र, भगवती सूत्र, योगशास्त्र सभी ने चित्त की एकाग्रता पर बल दिया । राग-द्वेष, कषाय आदि का सर्वथा त्याग अनिवार्य माना है। कर्मास्रव को रोकने के लिए ध्यान ी आवश्यकता होती है।

पतंजलि के अनुसार योग के आठ अंगों में ध्यान को विशेष स्थान दिया है। बौद्धधर्म में यही माधि है। आ० हेमचन्द्राचार्य ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य को ही योग ध्यान माना है। उनके अनुसार ो यह ध्यान ही विपत्तिरूपी बल्ली समूह को नाश करने के लिए परशु है। मोक्ष लक्ष्मी को वश करने के लिए औषधी, यंत्र-तंत्र या वशीकरण है। इससे अनेक विद्यायें उपलब्ध होती हैं जो ोक्ष में ले जाने वाली हैं।

आ० शुभचन्द्र चार पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति का साधन इसी ध्यान को मानते हैं। ा ज्ञानपूर्वक ध्यान को ही फलदायी मानते हैं। भौतिक सुखों के लिए ध्यान को मिथ्या मानते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में साधना के अन्तर्गत दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य, तप, स्वाध्याय, ध्यान, भावना, थान, गमन और आतापना को स्वीकार किया है। इन समस्त भावनाओं में पंच महाव्रत की धारणा, ारह भावनाओं की आराधना एवं विविध आसनों का निर्देश है। जैन दर्शन में पाप कार्य, वासना ी तृप्ति या भौतिक सुख से किये गये आर्त्त और रौद्र ध्यान का सर्वथा निषेध है। ध्यान का ूल उद्देश्य परमात्म-पद प्राप्ति होने से धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान की महत्ता है। धर्मध्यान में साधक मस्त विषय, कषाय संसार से मुक्त होते हुए आत्मा के साथ गहराई से जुड़ता है। वह तीर्थंकर ारा निर्देशित वस्तु के स्वभाव का यथातथ्य चिन्तन करता हुआ जिनवाणीमय बनता है। वह आत्म-विकृति ः कारणों और उन्हें दूर करने के उपायों पर सोचता है। कर्मफल के प्रति तटस्थ होने लगता है भौर उन्हें भोगकर भी साधना में लीन रहता है। इसी क्रम में वह प्रेक्षा करते हुए आत्मदर्शन की मता प्राप्त करता है। ये हैं धर्म ध्यान के आज्ञा, अपाय, विकाय एवं संस्थान विचय की उत्तरोत्तर गति के सूत्र। धर्मध्यान की दृढ़ता, तल्लीनता एवं पूर्ण वैराग्य की स्थिरता के बाद साधक स्वयं ीर्थंकरत्व की अवस्था में स्थित होकर शुक्ल ध्यान में आरूढ़ होने लगता है। वह सालंबन ध्यान ो भी ऊपर उठकर निरालंब ध्यान अर्थात् आत्मा में ही सर्वस्व के दर्शन करने लगता है। ऐसा यान मुनियों को ही सम्भव है। इस श्रेणी का साधक क्षोभ, सम्मोह से मुक्त, शरीर की किसी ी वेदना से अनासक्त रहता है। इससे क्षमा, निर्लोभता, मृदुता आदि आत्मा के दस धर्म प्रकट होने लगते हैं।

इन चार ध्यान के विविध प्रकारों के उपरांत जैन शास्त्रों में पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत प्रकारों का भी उल्लेख है। इनको जैनाचार्य शुभचन्द्र, हेमचन्द्र एवं उत्तराध्ययनकार ने धर्म ध्यान के संस्थान विचय उपभेद के अन्तर्गत माना है। पिंडस्थ ध्यान में शरीर के विविध अंगों का अवलंबन लेकर साधक पार्थिवी, आग्नेयी, मारूती, वारुणी और तत्वरूपवती धारणाओं द्वारा यही चिन्तन करता है कि वह गम्भीर समुद्र के मध्य हजार पंखुड़ियों वाले कमल के सिंहासन पर बैठकर समस्त रागद्वेषों का क्षय कर रहा है। उसे कमल पत्र पर "अर्हं" के स्वराक्षर से स्फुलिंग झरते दिखाई देते हैं। इससे उसके कर्म जलकर भस्मीभूत हो रहे हैं। झंझावाती वायु में यह भस्म उड़ रही है और मूसलाधर वर्षा में बह जाती है अर्थात् समस्त कर्मक्षय होकर उसका आत्मप्रदेश निर्मल चन्द्र-सा बन जाता है। आ० हेमचन्द्र इसे "तत्वम्" धारणा भी कहते हैं।

पदस्थ ध्यान में अक्षरात्मक स्वरूपों का आलंबन लिया जाता है जिसके अन्तर्गत शरीर के विविध स्थानों पर, विविध कमल पंखुड़ियों पर स्वर व्यंजन के मंत्र की कल्पना की जाती है। रूपस्थ ध्यान में समस्त दोषों से रहित अरिहंतों की आराधना की जाती है। और अंत में इस रूप से भी ऊपर रूपातीत अरूपी परमात्मा का ध्यान किया जाता है।

आचार्यों ने ध्यान की महत्ता, प्रकार और स्पष्ट उद्देश्य के सन्दर्भ में ध्यान, ध्येय और ध्याता का स्वरूप गुण वर्णन किया है। हम ध्यान, ध्येय को समझ चुके हैं। ध्याता के गुण उसी में विद्यमान है। "यथाध्यान तथा ध्याता" उत्कृष्ट ध्येय का ध्याता भी निर्मोही, कषाय रहित, शांतचित्त, तत्व का श्रद्धालु एवं निस्पृही परमात्मा की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रभुमय रहता है। मैत्री आदि चार भावनाएं, बारह अनुप्रेक्षा उसका अवलम्ब होता है।

इस ध्यान या सामायिक के लिए आचार्यों ने कुछ प्रयोगात्मक पक्ष भी निर्देशित किये हैं। उस पर अति संक्षेप में दिशानिर्देश करना चाहूंगा। आचार्यों ने ध्यान के हेतु, स्थान, चयन एवं देह शुद्धि की महत्ता पर विशेष जोर दिया है। ध्यान के लिए उत्तम स्थान है शांत मन्दिर, स्वाध्याय भवन, उपाश्रय, एकांत पर्वत की गुफा, नदी का किनारा या घर का एकांत कक्ष। जगह पूर्ण हवादार, मच्छर आदि से मुक्त, मनुष्य या पशु के भय से मुक्त, अभक्ष्य के उपयोग से रहित एवं कुशील व्यक्तियों के आवागमन से रहित हो। इसी प्रकार साधक की देह शुद्धि, वस्त्र शुद्धि भी आवश्यक है। सामायिक के योग्य आसन होना जरूरी है। देह शुद्धि के साथ खानपान की शुद्धि व नियम पर आचार्यों ने विशेष जोर दिया है। आचार्यों ने बारह व्रतों के बाह्य तप में भोजन की शुद्धि एवं परिमाण पर ही ध्यान केन्द्रित किया है। उपवास, एकाशन, आयंबिल ध्यान की स्थिरता के पोषक तत्व माने गये हैं।

इन दो शुद्धियों के साथ ध्यान की विधिवत् उपासना के लिए साधक का यह जानना आवश्यक है कि वह शुद्ध भावना के साथ ध्यान में कैसे बैठे, कैसे श्वास ले, कैसे और कहां देखे, शरीर में कैसे ऊर्जा प्राप्त करे, उसका उच्चारण कैसा हो, किस स्थान पर ध्यान करे, ध्यान में उसका सोच क्या है और किन रंगों का साक्षात्कार करे? आचार्यों ने ध्यान में सर्वाधिक महत्व बैठने या आसन को दिया है। मुख्यत: पद्मासन या वीरासन को श्रेष्ठ माना है। यही जिनेन्द्र-मुद्रा है। रीढ़ की हड्डी का पूरा ९० डिग्री पर लंब रूप में खिंचाव सहित होना आवश्यक है। गर्दन सीधी, छाती निकली हुई, दृष्टि नासाग्र एवं शरीर पूर्ण रूपेण खिंचा हो। इससे चेतना जागती है। मस्तिष्क को संकेत मिलते रहते हैं। ऊर्जा अधिक होती है। साधक निरन्तर सावधान, जागृत रहता है। शिथिलता के अभाव के लिए यह श्रेष्ठ बैठक है।

उत्तराध्ययन सूत्र में इन्द्रिय निग्रह, विशिष्ट विशुद्धि के लिए पद्मासन को श्रेष्ठ माना है। यद्यपि आ० शुभचन्द्र व हेमचन्दाचार्य ने साधक की अनुकूलता को ही श्रेष्ठ माना है। जैनेन्द्र सिद्धान्त-कोष में जिन मुद्रा को ही श्रेष्ठ माना है। प्राय: सभी आचार्यों ने शरीर की सम-अवस्था के लिए वीरासन

को श्रेष्ठ कहा है। भगवती आराधना, महापुराण सभी में इसकी विशद चर्चा है। जिसे बैठना आ गया उसका आधा कार्य मानो सम्पन्न हो गया। ध्यान में 'श्वासोच्छ्वास' दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश है। दीर्घश्वास का अभ्यास साधक को बांधता है, शक्ति देता है और अन्तर में ऊर्जा उत्पन्न करता है। यद्यपि जैनाचार्यों ने पतंजलि की तरह प्राणायाम पर जोर नहीं दिया, पर यहीं दीर्घश्वास की पूरक, कुम्भक व रेचक क्रिया को स्वीकार किया है। इससे शरीर का अणु-अणु प्राणवायु से भरकर चेतनवंत हो जाता है। आराधना में इसका विशद वर्णन दृष्टव्य है।

साधक बैठने और श्वास लेने की योग्यता से शरीर को साध लेता है। उसका मन भी बंधने लगता है। उसकी दृष्टि संसार से हटकर आत्मलक्षी या अन्तर्मुखी होने लगती है। वह दृष्टि को नासाग्र बनाता है, इससे ध्यान में एकाग्रता बनती है। इन तीनों की क्षमता से एक अपूर्व शक्ति और शांति प्राप्त होती है। ध्यान में साधक किसी मंत्र विशेष का उच्चारण करता है। जैनधर्म में ओऽम एवं णमोकार मंत्र है, श्रेष्ठ माना गया है।

उच्चारण की भी एक वैज्ञानिक पद्धति है। साधक नाभि से उच्चारण कर मंत्र शब्द को विविध चक्रों (शरीर के स्थानों) से यात्रा कराता हुआ मस्तिष्क तक ले जाता है। वह ओऽम के 'म' या णमोकार पद के अंतिम 'म' द्वारा ऐसी अनुगूंज उत्पन्न करता है कि पूरा सहस्रार चक्र अनुगूंजित हो जाता है। इस उच्चारण में दो क्रियाएं एक बोलने की एवं दूसरे पंचपरमेष्ठी के दर्शन की होती है। साधक पंचपरमेष्ठी के एक-एक पद का उच्चारण करने के साथ आज्ञाचक्र ललाट के मध्य दोनों भौहों के बीच पर उनके स्वरूप के दर्शन करता है। आराध्य के दर्शन करके उसका मन विभोर हो जाता है। मंत्र में संगीतात्मकता आ जाती है। क्रमशः ध्यानस्थ साधक मंत्रमय होने की अवस्था में पहुंच जाता है। यही समाधि की अवस्था है। यद्यपि शास्त्रों में नाभि से मस्तिष्क तक के विविध स्थानों में विविध कमलों की चर्चा है, उन पर ध्यान करने की पद्धति व विशेषताओं का वर्णन है। इस ध्यान के साथ लौकिक उपलब्धियों को भी जोड़ दिया है, पर लक्ष्य तो परमात्मपद का ही रहता है।

ध्याता ध्यान में स्थिर होने पर निरन्तर यही सोचता है कि मैं देह से देहातीत हो रहा हूं। मैं आत्मा हूं। बाह्य जगत से मेरे सम्पर्क टूट रहे हैं। मैं अन्तर्मुखी होकर आत्मा के दर्शन कर रहा हूं। मैं सभी अन्य विचारों, विकारों व चिन्ता से मुक्त होकर निर्विचार, निर्विकार एवं निर्भार हूं। इस प्रकार निरन्तर यही सोच उसे संसार के दुख, वेदना, मानसिक तनाव व विकारों से मुक्त बनाकर हल्का-फुल्का बना देता है। जितना अधिक वह हल्कापन महसूस करता है, उतना ही उसका चित्त आज्ञाचक्र पर परमेष्ठी के दर्शन में लगता है। उसका मन बंधता है। संयम की दृढ़ता बढ़ती है। साधक यह भी महसूस करता है कि उसके आज्ञाचक्र पर बालरवि की कोमल गुलाबी और पीत किरणों का मिश्रित रंग फैल रहा है। उसके दिव्य प्रकाश में आराध्य का स्वरूप उसे और भी तन्मय बनाता है। वह अनुभव करता है कि उसका अंग-अंग इस प्रकाश से आलोकित हो रहा है। ध्यान की इस अवस्था तक पहुंचते-पहुंचते उसमें आत्म-संयम की इतनी क्षमता बढ़ जाती है कि वह मन और इन्द्रियों का स्वामी हो जाता है। उनकी गुलामी से मुक्त हो जाता है, यही जितेन्द्रियता है।

संक्षेप में इतना ही कि लौकिक दृष्टि से आज मनुष्य भोगविलास में डूबता जा रहा है। ऐषणाओं का दास हो गया है। इनकी उपलब्धि के लिए वह हिंसादि पापों को कर रहा है। धन एवं सत्ता का लोभ उसे उकसा रहा है। वह निरन्तर दूसरों के प्रति कषायों से भरता जा रहा है। परस्व हरण व पर छिद्रान्वेण की भावना के कारण वह निरन्तर आर्त्त, रौद्र भावों से पीड़ित है। मानसिक रोगों का शिकार हो रहा है। शरीर रोगों का घर बन गया है। अपने ही असंयम के जाल में वह फंस गया है।

आज व्यक्ति व्यक्ति के, समाज के, राष्ट्र के समस्त संघर्षों के मूल में मनुष्य के मन का विशद कषाय व असंयम है। इन सबको रोकने के लिए ध्यान एक उत्तम औषधि या उपाय है। व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाये कि उसके ये कृत्य उसके व सभी के लिए कष्टदाई हैं, तो वह सम्हल जाता है। ध्यान में वह क्रमश: संयम से बंधता है। पर से मुक्त होने की चेष्टा करता है। अपने को पहचानने के उपाय करता है। यह आत्म-परिचय ही ध्यान की प्रथम सिद्धि है। जब व्यक्ति सुधरेगा तो समाज, राष्ट्र और विश्व को सुधरने का स्वयं अवसर प्राप्त होगा।

आध्यात्मिक दृष्टि से संसार में भ्रमण व समस्त आधि-व्याधि-उपाधि का मूल मनुष्य की वासनायें हैं। इन्हीं वासनाओं पर अंकुश रखकर इन्द्रिय-निग्रह ध्यान का मूल आशय है। स्वयं के बहिरात्मा से अन्तरात्मा की यात्रा करता हुआ साधक संसार से मुक्त होकर परमात्मा बनने का मार्ग ग्रहण करता है। जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति उसका परम ध्येय होता है। वह प्राणीमात्र के प्रति सदय होता है। करुणा उसकी आंखों से छलकती है। उपसर्ग सहनशक्ति का विकास हो जाता है। मुक्ति के लिए यही ध्यान परमावश्यक है। सभी तीर्थंकरों, सिद्धपुरुषों ने इसी के द्वारा मुक्ति प्राप्त की है, यह निर्विवाद सत्य है।

सामायिक इस ध्यान की जननी है। हम सब इसे अपनायें जिससे लौकिक और पारलौकिक जीवन सार्थक हो।

The Eternal Rock of Wisdom

● Dr. Bhaniram, Calcutta

In this era of guided missiles and misguided man Mahavir pus the challenge of survival before humanity in its plain and simple majesty-love or die. There is no alternative. No third way. Our blood-lust for wealth and fame has driven us to the very precipice of universal neuclear holocaust. The megaton bombs that we have assembled to crush our foes with are ominously looming overhead us. The price of a war now is not victory of one at the cost of defeat of the other. It is universal death of humanity. Nothing can save us from ourselves except ourselves. The only path that can lead us to survival and further evolution of our species is love which is ahimsa. Ahimsa is not the negation of slaying. It is love, regard for dignity of all beings and things including men, animals, plants, birds, insects and even invisible micro-organisms.

Time the Hero

On the vast canvass of the history of this planet and cosmos itself time alone seems to move and all else stand still. Time is the hero. All else are puppets whose strings are in the strong hands of time. Empires rise and fall. Planets are created and destroyed by the inexorable forces of nature, even galaxies burn like tall candles and are lost at last in smoke. And besides time there is only one entity that remains fixed it its inscrutable majesty- the spirit, the being, changing yet remaining the same. Here all systems of philosophy start.

According to modern science man is not the welcome guest, let alone master, of the planet or glaxy. He is an event, an accident, a turn of genetic dice which could have resulted in something else. The present galaxy is calculated to be 15 billion years old. The sun is only 7 billion years old and the earth is a fragment of it only 5 billion years old it is. The ascent of biological life took place on it only 10 million years ago and the oldest species of humanoid creatures is found to be only 2.5 lakhs years old. Our present biological race-homo sapeins has a history of only 8 thousand years. And these years of our species have been the years of transition from universal violence to non-violence. The sinanthropus pekinese ate his fellow human beings, knew no relations, had no family. The pithakanthropus javanese was not a cannibal, but a hunter with no family. The Neanderthal man was a hunter but had a family in the crude sense. He at least did not eat his wife when hungry in the dark of night after love-making. The homo sapeins was more organised, hence less violent. He has a family in the true sense of the word and worked in groups which had its rival groups. The history of development of human civilisation is the history of ascendency of non-violence over violence, of co-operation over combate, of love and fellow feeling over rivalism. But we carry our animal past within us even to this very day.

When Mahavir speaks of ahimsa he speaks of it as a cosmic law that is inviolable. The story of cosmic evolution is the story of co-operation and not of conflict, of love and not of hatred or cynical disregard of all life around us. All civilized races have an ever-increasing regard for life- though through its thin curtain we see shocking spectacles of our old animal instincts.

Darwin : A New Face

Much has been written about Darwin's theory of evolution through natural selection. Poets like Tennison wrote of nature as red in tooth and claw. But a close scrutiny of the facts of life on this planet repudiates and falsifies this notion. Only those species that remain friendly, and not hostile, to their environment survive, in the face of great

cataclysms that take place in our environment. The last ice-age swept over the most gigantic and ferocious predators that the world has ever seen the dianosaurus, the pterodectyle and the like and their skeletons are scattred all over in the womb of the earth as well as in the museums. The message is very simple. It would help us to be strong. The strong are defeated when they stand against the irreversible laws of nature. It is the intelligent and the sensitive, the mild and the cooperative with nature and their fellow beings who survive. Man's survival through the ice-age is attributed to his being a social animal, more adeptable, more cooperative and more able to sacrifice his personal interests for the well-being of the clan or community. And that is the message Mahavir is driving home to us. Ahimsa is the sole symbol of our future evolution and survival from the nuclear holocaust planned by us for ourselves.

The Essence

Mahavir does not claim to have discovered anything new. He says it is the cosmic truth, the eternal law of life, written as well as unwritten, spoken in different languages as well as not spoken at all -
not too hurt
not to force in to submission
not to indignify
not to subject to chagrin
not to disturb
any
living being or thing or essence or existence is the eternal truth never changing and never being untrue or inplicalbe. (acharanga)

Different versions of this may be found in the religious texts of others as the golden mean or the commandment of love or the rules of gentlemanly living. But this is indisputable fact of life-evertrue.

तीर्थंकरों में मान्यता भेद

● सुरेश सिसोदिया

सहशोधाधिकारी

आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान

पद्मिनी मार्ग, उदयपुर (राज.)

जैन धर्म की सामान्य अवधारणा तो यह है कि सभी तीर्थंकर समान धर्म का ही प्रतिपादन करते हैं तथा उनके आचार-नियमों में भी एकरूपता ही है, किन्तु सचेल परम्परा में प्राचीन आगमिक व्याख्या साहित्य, विशेष रूप से निर्युक्ति साहित्य में एवं अचेल परम्परा के मान्य ग्रन्थ भगवती आराधना और मूलाचार में यह माना गया है कि तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित आचार-नियमों में देश और काल के अनुसार कथंचित अन्तर होता है। यद्यपि यह सत्य है कि धर्म के सामान्य तत्व सभी में समान रूप से निहित रहे हैं, तथापि दर्शन और आचार संबंधी विशेपताओं के कारण उनमें अन्तर तो है। तीर्थंकरों की मान्यता भेद को स्पष्ट करना ही प्रस्तुत लेख का अभीष्ट है।

तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के जीवन एवं आचार-विचार से संबंधित उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के आचार-विचार में कोई भेद नहीं रहा है, किन्तु मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों की आचार-विचार सम्बन्धी मान्यताएं इनसे भिन्न रही हैं। उपलब्ध स्रोतों का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात होता है कि आचार-विचारगत यह भिन्नता भी अकारण नहीं है वरन् वह उस युग के मानव स्वभाव के वैशिष्ट्य पर आधारित है।

जैसा कि हम व्यवहार में भी देखते हैं कि कोई व्यक्ति सरलचित्त वाला होता है तो कोई वक्र चित्तवाला (कपटी)। कोई व्यक्ति प्राज्ञ होता है तो कोई मूढ़। तीर्थंकरों के उपदेश की भिन्नता भी मानव स्वभाव की भिन्नता पर आधारित रही है।

श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ उत्तराध्ययन सूत्र में विभिन्न तीर्थंकरों के समय का मानव स्वभाव इस प्रकार बतलाया गया है—

"पुरिमा उज्जडा उ, वक्कजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उजुपन्ना उ, तेण धम्मे दुहा कए।।"[१]

अर्थात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के समय मनुष्य सरल किन्तु मन्द बुद्धि वाले थे तथा अन्तिम तीर्थंकर महावीर के समय में मनुष्य कुटिल एवं मंद बुद्धि वाले थे और (पार्श्व आदि) मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के समय में मनुष्य सरल और समझदार होते थे।

यहां हम देखते हैं कि ऋषभदेव और महावीर के समय का मानव स्वभाव पार्श्व आदि मध्यवर्ती २२ तीर्थंकरों के समय के मानव स्वभाव से भिन्न था। महावीर और ऋषभदेव के समय के मानव स्वभाव में आंशिक समानता और आंशिक भिन्नता दोनों थीं।

दिगम्बर परम्परा द्वारा मान्य ग्रन्थ मूलाचार में विभिन्न तीर्थंकरों के समय का मानव स्वभाव इस प्रकार उल्लिखित है—

"मज्झिमया दिढ़बुद्धि एयग्गमणा अमोहलक्खा य।
तह्मा हु जह्मा चरंति तं गरहंता वि सुज्झंति।।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र - सम्पा. मुनि मधुकर, प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, वर्ष १९८४, सूत्र २३/२६

पुरिमचरिमादु जह्मा चलचित्ता चेव मोहलक्खा य।
तो सव्वपडिक्कमणं अंधलयघोडय दिट्ठंतो।।

अर्थात् मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के समय में मानव दृढ़बुद्धि वाले, एकाग्र मन वाले तथा अमूढ मत वाले होते थे किन्तु ऋषभदेव और महावीर के समय में मानव चंचल चित्त वाले तथा मूढ मन वाले होते थे।

पार्श्व और महावीर की मान्यता में भेद

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्परा के मान्य ग्रन्थों में बाईस तीर्थंकरों की आचार-विचारगत मान्यताएं एक-सी बतलाई गई हैं इसलिए हम पार्श्व को उन सबका प्रतिनिधि मानकर यहां चर्चा करेंगे। इसी प्रकार ऋषभ और महावीर का आचार-विचार लगभग समान रहा है इसलिए हम महावीर को उनका प्रतिनिधि मानकर यहां पार्श्व और महावीर की आचार-विचारगत मान्यताओं में भेद दर्शाने का प्रयास कर रहे हैं।

सचेलकत्व और अचेलकत्व[१]

जैन श्रमण परम्परा में आज सचेलक और अचेलक- ये जो दो भिन्न रूप पाये जाते हैं, यह वस्तुत: पार्श्व और महावीर की पृथक-पृथक परम्परा के कारण ही है। एक और जहां पार्श्व सचेल परम्परा के पोषक हैं वहीं दूसरी और महावीर अचेल परम्परा के पोषक हैं। उत्तराध्यनसूत्र के केशी-गौतम सम्वाद में महावीर को अचेल धर्म का और पार्श्व को सचेल धर्म का प्रतिपादक कहा गया है।[१]

सचेलकत्व और अचेलकत्व रूप इस द्विविध कल्प को और अधिक स्पष्ट करते हुए प्रो. सागरमल जैन लिखते हैं कि उत्तराध्ययन सूत्र में पार्श्व की वस्त्र व्यवस्था के सन्दर्भ में 'सन्तरूत्तरो' शब्द आया है। श्वेताम्बर आचार्यों ने इसका अर्थ विशिष्ट मूल्यवान एवं बहुरंगी वस्त्र किया है, किन्तु यह बात इस शब्द के मूल अर्थ से संगति नहीं रखती है। यदि हम इस शब्द के मूल अर्थ को देखें तो ज्ञात होता है कि इसका अर्थ किसी भी स्थिति में रंगीन अथवा मूल्यवान वस्त्र नहीं है। इसका स्पष्ट अर्थ है- अन्तरवासक और उत्तरीय। इससे यही प्रतिफलित होता है कि पार्श्व परम्परा के साधु एक अन्तरवासक और एक उत्तरीय अथवा ओढ़ने का वस्त्र रखते हैं।[२] उत्तराध्यनसूत्र में महावीर की परम्परा को अचेल कहा गया है। अत: एक शाटकधारी निग्रन्थों के जो उल्लेख महावीर की परम्परा में मिलते हैं, वे महावीर और पार्श्व की विचारधारा के समन्वय का ही परिणाम है।

चातुर्याम और पंच महाव्रत

पार्श्व और महावीर की परम्परा का एक महत्वपूर्ण अन्तर चातुर्याम धर्म और पंच महाव्रत रूप धर्म का है। सूत्रकृतांगसूत्र[३], स्थानांग सूत्र[४], समवायांगसूत्र[५], उत्तराध्ययनसूत्र[६], आवश्यकनिर्युक्ति[७] और ऋषिभाषित[८] आदि ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है कि पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की थी, जबकि महावीर ने पंच महाव्रत रूप धर्म की प्ररूपणा की थी। समवायांगसूत्र में उल्लिखित पार्श्व

---

१. मूलाचार (वट्टकेर) - सम्पा. पं. केलाशचन्द्र शास्त्री, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, वर्ष १९४४, गाथा ६३१, ६३२

२. उत्तराध्यनसूत्र २३/२८-३३,

३. सूत्रकृतांगसूत्र- संपा. मुनि मधुकर, प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, वर्ष १९८२, सूत्र २/७/८७२, ४. स्थानांगसूत्र- संपा. मुनि मधुकर प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, वर्ष १९८१, सूत्र ४/१३६, ५. समवायांगसूत्र- संपा. मुनि मधुकर, प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, वर्ष १९८२, सूत्र २५/१६६, ६. उत्तराध्यनसूत्र, २३/२१-२७, ७. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २३६, ८. इसिभासियाइं- संपा. महो. विनयसागर, प्रका. प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, वर्ष १९८८, अध्याय ३१

के चातुर्याम धर्म से ऐसा प्रतीत होता है कि पार्श्व की परम्परा में परिग्रह व्रत में ही ब्रह्मचर्य व्रत समाहित था। ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में पुण्डरीक द्वारा चातुर्याम धर्म स्वीकार करने का कथन उल्लिखित है।[१] राजप्रशनीयसूत्र में ऐसा उल्लेख है कि केशीकुमार श्रमण चित्त सारथी को चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया।[२] ज्ञातव्य है कि केशीकुमार श्रमण पार्श्वनाथ के अनुयायी माने जाते हैं।

प्रतिक्रमण प्ररूपणा की भिन्नता

महावीर की परम्परानुसार अपराध हो अथवा न हो, प्रत्येक साधु-साध्वी को प्रातःकाल एवं सायंकाल नियमित रूप से प्रतिक्रमण करना ही होता है, किन्तु पार्श्व की परम्परा में अपराध होने पर ही प्रतिक्रमण करने का विधान है। पार्श्व और महावीर की प्रतिक्रमण प्ररूपणा संबंधी उक्त मान्यता भेद की पुष्टि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं के मान्य ग्रन्थों से हो जाती है।

श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ सूत्रकृतांगसूत्र[३], व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र[४] तथा आवश्यकनिर्युक्ति[५] में महावीर के धर्म को सप्रतिक्रमण धर्म कहा है इसी प्रकार दिगम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ मूलाचार में भी महावीर के धर्म को प्रतिक्रमण सहित बतलाया है।[६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं ने तीर्थंकरों की मान्यता में प्रतिक्रमण संबंधी यह भेद समान रूप से स्वीकारा है।

सामाजिक और छेदोपस्थापना संयम का भेद

पार्श्व और महावीर की परम्परा में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह था कि महावीर ने छेदोपस्थापना संयम का उपदेश दिया था जबकि पार्श्व सहित मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों ने मात्र सामायिक संयम का उपदेश दिया था। इस कथन के समर्थन में श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ आवश्यकनिर्युक्ति तथा दिगम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ मूलाचार में कहा गया है—

"बावीसं तित्थयरा सामाइयसंजमं उवइसंति।
छेओवट्ठावणयं पुण वयन्ति उसभो य वीरो य।।[७]"

चरित्र के पांच प्रकारों में से पहला प्रकार सामायिक चारित्र है तथा छेदोपस्थापना दूसरा चारित्र है इसमें पूर्वपर्याय का छेदन करके महाव्रतों का आरोपण किया जाता है। सामान्य शब्दों में कहें तो सामायिक संयम का तात्पर्य छोटी दीक्षा से है जबकि छेदोपस्थापनीय संयम का तात्पर्य बड़ी दीक्षा से है।

---

१. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग- संपा. मुनि मधुकर, प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, वर्ष १९८१, सूत्र १९/२३
२. राजप्रश्नीयसूत्र- संपा. मुनि मधुकर, प्रका. श्री आगम प्रकाश समिति, ब्यावर, वर्ष १९८२, सूत्र २१९
३. "तुब्भं अतिए चाउज्झामातो धम्मातो पंचमहव्वतियं।
सपडिक्कमणं धम्मं उपसंपज्जित्ताणं विहरत्तए।" सूत्रकृतांग सूत्र, २/७/८७२
४. "सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जिताणं विहरई।" व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र, १/९/२३/२
५. सपडिक्कमणं धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
मज्झिमयाणं जिणाणं कारणजाए पडिक्कमणं।।" - आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १२५८
६. "सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
अवराहे पडिक्कमणं मज्झिमयाणं जिणवराणं।। - मूलाचार, गाथा ६२८
७. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १२६०, (ख) मूलाचार, गाथा ५३५

रात्रि भोजन निषेध का भेद

पार्श्व की परम्परा में रात्रिभोजन प्रचलन में था अथवा इसका निषेध था तथा रात्रिभोजन निषेध को पांच महाव्रतों के समतुल्य मान्यता प्रदान की गई थी अथवा नहीं, इस विषयक यद्यपि कोई साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है तथापि महावीर ने रात्रि भोजन का पृथक रूप से निषेध किया था। यह संकेत हमें दशवैकालिक सूत्र में मिलता है जहां रात्रिभोजन निषेध को भी पांच महाव्रतों के समान ही महत्व देकर छठे व्रत के रूप में स्थापित किया गया है।[१] सम्भव है कि पार्श्व के काल तक रात्रि भोजन निषेध अहिंसा महाव्रत की भावना में आलोकित भोजन पान में गृहित रहा होगा, किन्तु महावीर ने अलग से छठे व्रत के रूप में मान्यता देकर इस व्रत के महत्व को स्थापित किया है।

ज्येष्ठ कल्प का भेद

ज्ञान, दर्शन और चारित्र में बड़े को ज्येष्ठ कहते हैं। महावीर की परम्परा में जो साधु बड़ी दीक्षा में बड़े होते हैं, वे ही श्रेष्ठ माने जाते हैं, जबकि पार्श्व की परम्परा में उन्हीं साधुओं को श्रेष्ठ माना गया है जो निरतिचार चारित्र का पालन करते हैं। उनकी मान्यता में छोटी-बड़ी दीक्षा के कारण कोई छोटा-बड़ा नहीं होता है।[२]

मासकल्प का भेद

पार्श्व की परम्परा में श्रमणों के लिए ऐसा कोई नियम नहीं था कि वे चातुर्मास के अतिरिक्त किसी एक स्थान पर एक माह से अधिक नहीं ठहरें किन्तु महावीर ने अपने श्रमणों के लिए मासकल्प का विधान कर चातुर्मास के अतिरिक्त अन्य समय किसी स्थान पर एक माह से अधिक ठहरने का निषेध कर दिया था।[३]

पर्यूषण कल्प का भेद

वर्षाकाल में एक स्थान पर रहना पर्यूषण कल्प कहलाता है। पार्श्व की परम्परा में श्रमणों के लिए वर्षाकाल में एक ही स्थान पर रहना आवश्यक नहीं था, किन्तु महावीर ने पर्यूषण कल्प का विधान कर अपनी परम्परा में रहनेवाले श्रमणों को वर्षाकाल (आषाढ़ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक) में एक ही स्थान पर रहने के स्पष्ट निर्देश दिये थे।[४]

राजपिण्ड कल्प का भेद

राजा द्वारा प्रदत्त अथवा राजा के लिए बना हुआ भोजन ग्रहण करना राजपिण्ड है। पार्श्व की परम्परा के श्रमण राजपिण्ड ग्रहण कर सकते थे। किन्तु महावीर ने अपनी परम्परा में श्रमणों के लिए राजपिण्ड ग्रहण करना निषिद्ध कर दिया था।[५]

पार्श्व और महावीर की मान्यता संबंधी भेदों की जो चर्चा हमने यहां की है उससे ज्ञात होता है कि पार्श्व और महावीर की परम्परा का जो भी भेद रहा है वह सब आचार सम्बन्धी मान्यताओं को

---

१. "इच्चेइयाइं पंचमहव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए।" - दशवैकालिक सूत्र ४/१७

२. श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह - सम्पा. भेरोदान सेठिया, प्रका. श्री अगरचन्द भेरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर, भाग ३, पृष्ठ २३९

३. वही, पृष्ठ २४०-२४१, ४. वही, पृष्ठ २४१, ५. वही, पृष्ठ २३७-२३८

लेकर ही है। दर्शन विषयक कोई भेद इन दोनों की मान्यताओं में रहा हो, ऐसा हमें ज्ञात नहीं हुआ है। डॉ. ए.एन. उपाध्ये और श्रीमती स्टीवेन्सन भगवान पार्श्व और महावीर के शिष्यों के मतभेदों से ही जैन परम्परा में सम्प्रदाय भेद मानते हैं।[1] यहां हम इतना ही कहना चाहेंगे कि महावीर ने अपने शासन में यद्यपि मूल परम्परा को यथावत् रखा तथापि पार्श्व की सुविधावादी आचार-व्यवस्था में अनेक संशोधन एवं परिवर्तन कर उन्होंने एक कठोर एवं व्यवस्थित आचार-व्यवस्था का निरूपण कर दिया था।

---

१. उद्धृत - यापनीय और उनका साहित्य- सम्पा. श्रीमती कुसुम पटोरिया, प्रकाशक वीर सेवा मन्दिर, ट्रस्ट प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष १९८८, पृष्ठ २

सांस्कृतिक चेतना और जैन पत्रकारिता

- डॉ. संजीव भानावत
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता, जन-संचार केन्द्र, राज. विश्वविद्यालय, जयपुर

आधुनिक युग में पत्रकारिता का विशिष्ट महत्व है। पत्रकारिता के तेजी से होते विकास के कारण आज विश्व एक परिवार-सा लगता है। भारत में पत्रकारिता की औपचारिक शुरुआत हुए लगभग दो शताब्दियों से अधिक का समय हो गया है। पत्रकारिता की विकास-यात्रा में धार्मिक तथा सामाजिक पत्रकारिता की विशेष भूमिका रही है। इस पत्रकारिता का लक्ष्य मुख्य रूप से अपने धर्म व दर्शन का सार्वजनीन प्रचार-प्रसार करते हुए सांस्कृतिक चेतना जागृत करना रहा है। धार्मिक-सामाजिक पत्रकारिता ने व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा से दूर रहते हुए सदा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक चेतना के विकास के साथ-साथ जन-कल्याण और विश्व-बन्धुत्व की भावना का प्रचार-प्रसार किया है। इस दृष्टि से जैन पत्रकारिता की अपनी विशिष्ट पहचान और भूमिका है। जैन पत्रकारिता का मुख्य लक्ष्य उच्च मानवीय मूल्यों का विकास करते हुए सांस्कृतिक जागरण पैदा करना रहा है। इसकी परिधि में समग्र मानव जाति से लेकर प्राणीमात्र तक का हित निहित है।

जैन पत्रकारिता की आयु सौ वर्षों से अधिक की हो चुकी है। इस एक शताब्दी की विकास-यात्रा का अध्ययन इस बात को संकेतित करता है कि यह व्यावसायिकता से आज तक अछूती रही है। जैन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन लाभ अर्जन अथवा अन्य संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिए नहीं किया गया। ये पत्र विशुद्ध रूप से समाज-सुधार के संकल्प तथा अपने धार्मिक आदर्शों और सांस्कृतिक जागरण के प्रचार-प्रसार के लिए प्रकाशित किये जाते रहे हैं। यही कारण है जैन पत्रों में प्रकाशित सामग्री मुख्यत: विचार प्रधान तथा नैतिक, सामाजिक उद्‌बोधनों से युक्त होती है। इस प्रकार की सामग्री से जैन पत्र "समाचार पत्र" कम हैं तथा "विचार पत्र" अधिक हैं। व्यावसायिक पत्रकारिता में जहां आज दिन-प्रतिदिन की घटनाओं को प्राथमिकता व प्रमुखता दी जाती है, वहीं जैन पत्रों ने इस बाहरी परिवेश को अधिक व्यक्त न कर महत्वपूर्ण घटनाओं पर विचारप्रधान सम्पादकीय टिप्पणियां एवं विशेष लेख प्रकाशित किये हैं। व्यावसायिक पत्रकारिता जहां हमारे मन में सनसनी, उत्तेजना, हड़बड़ाहट-घबराहट आदि के भाव उत्पन्न करती है, वहां जैन पत्रकारिता शांति, संवेदना, आत्म-विश्वास तथा आत्म-जागृति का भाव प्रस्फुटित करती है।

व्यावसायिक पत्रकारिता का मुख्य ध्यान राजनीतिक घटनाक्रम पर अधिक केन्द्रित रहता है। प्राय: अधिकांश समाचार-पत्रों के मुख पृष्ठ राजनेताओं के चित्रों तथा उनके वक्तव्यों से भरे रहते हैं। इसके विपरीत विकासात्मक समाचारों, साहित्यिक, सांस्कृतिक समाचारों आदि को अपेक्षाकृत कम स्थान दिया जाता है। राजनीति के साथ-साथ समाचार पत्रों में राष्ट्रीय विकास तथा अन्य क्षेत्रों की गतिविधियों को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। इस बात को जैन पत्रों ने वर्षों पूर्व ही महसूस कर लिया था। जैन पत्रों में प्रकाशित समाचारों के पीछे एक विशेष दृष्टि रहती है। ये समाचार पत्र का प्रसार बढ़ाने के लिए सनसनी उत्पन्न नहीं करते वरन् ये सामाजिक-धार्मिक गतिविधियों व सांस्कृतिक मूल्यपरक समाचारों को प्राथमिकता देते हैं। जैन पत्रकारिता चूंकि वैयक्तिक चरित्र व संयम-साधना पर विशेष बल देती है, अत: इनसे जुड़े समाचार विशेष स्थान प्राप्त करते हैं। व्यसन-मुक्ति, ब्रह्मचर्य पालन, व्रत दान आदि के समाचार वैयक्तिक जीवन-शुद्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। इसी प्रकार संतों की विहारचर्या से संबंधित समाचार भी इन पत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित होते हैं। जैन पत्रों में प्रकाशित समाचारों में जहां सामाजिकता के दर्शन होते हैं, वहीं वे धार्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण के प्रति भी समर्पित होते हैं। इन पत्रों के माध्यम से हमें धार्मिक, सामाजिक व संस्थागत प्रवृत्तियों के समाचार भी प्राप्त होते हैं।

व्यावसायिक पत्रों में जहां जननेताओं के वक्तव्यों को प्रमुखता दी जाती है, वहीं जैन पत्रकारिता का मूल कथ्य धार्मिक-सांस्कृतिक होने के कारण इनमें धर्म-गुरुओं, धर्माचार्यों व समाज-सेवियों के प्रवचन एवं विचारों को प्राथमिकता दी जाती है। यहां राजनेताओं के वक्तव्यों तथा गतिविधियों को विशेष स्थान नहीं दिया जाता वरन् तपस्वियों व मुनियों के गुणों का गुणगान किया गया है। जैन पत्रों ने व्यावसायिक पत्रकारिता की भांति "स्कैण्डल" छापने में रुचि प्रदर्शित नहीं की। इनमें देश के नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास की बात तो है, किन्तु वैयक्तिक लांछन के भाव अपेक्षाकृत कम हैं। कुछ जैन पत्रों में अपने मत व सम्प्रदाय की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने की प्रतिस्पर्धा में कभी-कभी अन्य पत्रों व व्यक्तियों पर अवश्य छींटाकशी मिलती है, किन्तु इस प्रकार की प्रवृत्ति का समाज में विरोध भी होता रहा है। जैन पत्रों में प्रकाशित समाचारों का स्वरूप व शैली सार्वजनिक पत्रों से भिन्न रहती है। जैन पत्रों में प्रकाशित समाचारों में तात्कालिकता का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि ये पत्र साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक रूप में ही अधिक प्रकाशित होते हैं। अत: समाचारों के पुरानेपन के बावजूद उनके सूचनात्मक महत्व पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

व्यावसायिक पत्रकारिता का लक्ष्य उपभोक्तावादी संस्कृति को विकसित करना है। उसमें प्रकाशित समाचारों व विज्ञापनों की शैली व विषयवस्तु का उद्देश्य व्यक्ति के मन में भोगोपभोग की लालसा उत्पन्न कर अधिकाधिक इच्छाओं को जागृत कर आवश्यकताओं को बढ़ाना है, जबकि जैन पत्रकारिता का लक्ष्य आवश्यकताओं को सीमित कर, इच्छाओं को नियंत्रित करने का रहा है। व्यावसायिक पत्रकारिता यदि उपभोग्य पदार्थों का प्रचार-प्रसार करती है तो जैन पत्रकारिता विवेकपूर्ण वस्तुओं के मर्यादित उपभोग पर बल देती है।

जैन पत्रकारिता का आरम्भ मिशन भावना से हुआ। जैन पत्रकारिता के उद्भव व विकास की कहानी इस समाज के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जागरण की कहानी है। जैन पत्रकारिता की यह विकास-यात्रा सरल व सहज नहीं रही है। नाना प्रकार के संघर्षों को झेलकर ही जैन पत्रकारिता का तप एवं साधनामय रूप उभर सका है। आर्थिक कठिनाइयां, उचित मुद्रण सुविधाओं का अभाव, अवैतनिक सम्पादक, सम्पादकीय टीम व कार्यालयी सुविधाओं का अभाव आदि कठिनाइयों के बावजूद जैन पत्रकारिता अपने आदर्शों व उद्देश्यों के प्रति ईमानदारी से समर्पित रही है।

जैन धर्म, दर्शन, इतिहास व संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा अपने-अपने मत व सम्प्रदाय के आदर्शों के प्रति आस्थावान रहते हुए भी जैन पत्रों ने अपने गहरे सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया है। अपवादस्वरूप कुछ पत्रों ने परम्परागत रीति-रिवाजों का भले ही समर्थन किया हो, किन्तु वर्तमान जैन पत्रकारिता अपने व्यापक परिवेश में इस बात को महसूस कर रही है कि साम्प्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता में ही मानवता का हित समाहित है। भारतीय समाज पर्दाप्रथा, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, कन्या विक्रय, दहेज, मृत्यु-भोज जैसी कुप्रथाओं से लम्बे समय तक आक्रान्त रहा है। इनमें से कुछ प्रथाएं आज भी जारी हैं। जैन पत्रकारिता ने हमारे समाजिक जीवन को शुद्ध एवं संस्कारवान बनाने की दृष्टि से इन सामाजिक विकृतियों पर कड़े प्रहार किये हैं। नारी जाति के सामाजिक स्तर पर उसके अधिकारों का समर्थन कर उसके गौरवमय चरित्र को जैन पत्रों ने प्रकट किया है। समाज में पिछड़ी और निम्न जातियों के विकास व उनके जीवन-स्तर को सुधारने की प्रेरणा भी जैन पत्रों ने दी है। इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में जैन पत्रकारिता ने समतावादी, रूढ़िविहीन, चरित्र-निष्ठ व व्यसन-मुक्त समाज की कल्पना का आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

जैन पत्रकारिता का मुख्य धरातल धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों के विकास के साथ सम्बद्ध है। राजनीतिक क्षेत्र में भी जैन पत्रकारिता ने इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठापना पर बल दिया है। अंग्रेजों की गुलामी से इस देश को स्वतंत्रता दिलाने के प्रयत्नों में जैन पत्रकारिता का भी अपना विशिष्ट स्तर रहा है। अहिंसावादी मूल्यों की संवाहिका जैन पत्रकारिता ने राष्ट्रीय सुरक्षा

व अखण्डता जैसे संवेदनशील प्रश्नों पर कायरता का परिचय नहीं दिया वरन् जनमानस को साहस और शौर्य के साथ इन खतरों से जूझने की प्रेरणा दी है। गांधीजी के "स्वदेशी" तथा "भारत छोड़ो" जैसे आंदोलनों को जैन पत्रकारिता ने सदा अपना रचनात्मक सहयोग दिया। स्वातन्त्र्योतर भारत में देश के पुनर्निर्माण के साथ भी जैन पत्रकारिता जुड़ती है और महत्वपूर्ण घटनाओं पर विचारोत्तेजक टिप्पणियां लिखकर अपनी राजनीतिक चेतना के प्रखर पक्ष का परिचय देती है। भारतीय संविधान में निहित मानवीय मूल्यों यथा वैचारिक स्वतंत्रता, सामाजिक समानता, धर्म-निरपेक्षता आदि को आम जन से जोड़ने और उनका प्रचार-प्रसार करने की दृष्टि से जैन पत्रकारिता सदा प्रयत्नशील रही।

जैन पत्रकारिता को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- **विचार-सामग्री तथा समाचार-सामग्री**। वैचारिक दृष्टि से जैन पत्रकारिता धार्मिक तत्व दर्शन के विवेचन-विश्लेषण से जुड़कर अपने व्यापक अर्थों में आत्म-कल्याण, विश्व शांति व विश्वमैत्री की बात करती है। जैन पत्रकारिता की धार्मिक, आध्यात्मिक चेतना, धार्मिकता के संकीर्ण घेरे में आवद्ध नहीं है। उसने धर्म के व्यापक मानवीय स्वरूप को स्वीकार कर उसके मर्म को प्रकट किया है। धर्म के शुद्ध स्वरूप को प्रकट करते हुए जैन पत्रकारिता ने धर्म के स्वरूप को विकृत करने वाली विकृतियों व आडम्बरों पर प्रहार भी किये हैं। साधुवर्ग के शिथिलाचार को भी जैन पत्रों ने प्रकट किया है। इस प्रकार जैन पत्रकारिता की यह धार्मिक-आध्यात्मिक चेतना मूलत: व्यक्ति चेतना को विकसित करती हुई उसे व्यापक सामाजिक-राष्ट्रीय हितों से जोड़ती है।

जैन पत्रकारिता ने सिर्फ सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक-आध्यात्मिक जागरण की दिशा में ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं किया है, वरन् साहित्यिक-चेतना के विकास में भी विशेष योगदान दिया है। जैन पत्रकारिता ने एक ओर यदि साहित्य की विविध-विधाओं के रचनात्मक लेखन को प्रकट किया है, वहीं दूसरी ओर संस्कृति की गौरवमयी परम्पराओं को भी बनाये रखा है। प्राचीन जैन साहित्य के अन्वेषण, समीक्षण व संरक्षण की दिशा में जैन पत्रों के प्रयासों व प्रेरणा से ही आज न सिर्फ जैन साहित्य वरन् हिन्दी साहित्य भी समृद्ध हुआ है और पारम्परिक रूप से मान्य काव्य रूपों, आदिकालीन काव्य प्रवृत्तियों, मध्यकालीन प्रेम और भक्ति विषयक साहित्य-धाराओं में शोध-सर्वेक्षण की नई सम्भावनाओं को उद्घाटित किया है। हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार व उसके अधिकाधिक उपयोग की दिशा में भी जैन पत्रों के प्रयत्न उल्लेखनीय हैं।

साहित्य की भांति कला एवं पुरातत्व के क्षेत्र में भी जैन पत्रकारिता की उल्लेखनीय भूमिका रही है। प्राचीन जैन कला व शिल्प के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए तत्सम्बन्धी शोधपूर्ण जानकारी प्रकाशित कर जैन पत्रकारिता ने देश की सांस्कृतिक सम्पदा को अक्षुण्ण बनाये रखा।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जैन पत्रकारिता की यह गैर व्यावसायिक धारा अविच्छिन्न रूप से व्यावसायिक पत्रकारिता के समानान्तर चली आ रही है जो अनेक बाधाओं व संकटों के बावजूद भी अपनी आन्तरिक तेजस्विता के कारण सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक तथा कला एवं पुरातत्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है। अब तक साढ़े चार सौ से अधिक जैन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो चुका है। इन पत्रों की सामग्री का विवेचन-विश्लेषण इस बात का जीवन्त प्रमाण है कि गैर व्यावसायिक, धार्मिक तथा लोक सेवापरक पत्रकारिता में जैन पत्रकारिता का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक भारत के सांस्कृतिक इतिहास-लेखन में जैन पत्रकारिता एक प्रभावी, प्रामाणिक और विश्वसनीय स्रोत है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता।

जैन सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार में महिलाओं की भूमिका

● श्रीमती डॉ. शान्ता भानावत
प्रिंसिपल, श्री वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर

जैन सिद्धान्त प्रकृति और जीवन के सत्य को अभिव्यक्त करने वाले सिद्धान्त हैं। यह सत्य है कि व्यक्ति स्वयं अपने सुख-दुःख का निर्माता है। सत्कर्म व्यक्ति को महान् बनाते हैं और दुष्कर्म उसे पतन की ओर ले जाते हैं। हम जैसा अपने साथ व्यवहार चाहते हैं वैसा ही व्यवहार सभी प्राणियों के प्रति करें। यह सभी धर्मों का सार है। जैन तीर्थंकरों और आचार्यों ने अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म की प्ररूपणा कर जैन सिद्धान्त को जीवनव्यापी बनाया है। इसकी परिपालना के लिये तीर्थंकरों ने चतुर्विध संघ की स्थापना की है जिसके अंग हैं- साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका।

यद्यपि समाज में पुरुष वर्ग की प्रधानता रही है पर स्त्री वर्ग हमेशा धर्माराधना में अग्रणी रहा है। भगवान महावीर के शासन में साधुओं की अपेक्षा साध्वियों की, श्रावक की अपेक्षा श्राविकाओं की संख्या अधिक रही है। यही बात अन्य तीर्थंकरों के धर्म संघ पर भी लागू होती है। आज भी हम देखते हैं कि तप, त्याग-प्रत्याख्यान, धार्मिक अनुष्ठान, व्रत-नियम ग्रहण आदि में महिलाएं अधिक सक्रिय हैं।

जैन सिद्धान्त किसी जाति, वर्ण, वर्ग या सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं हैं। वे सार्वजनीन और सार्वभौमिक हैं। उन्हें जीवन में उतारकर प्रत्येक व्यक्ति आत्मिक सुख और स्थाई शान्ति का अनुभव कर सकता है। जैन सिद्धान्तों में अंध विश्वास के लिये कोई स्थान नहीं है। वे वैज्ञानिक दृष्टि और लोक कल्याण की भावना पर आधारित होने के साथ-साथ आत्मानुभव और इन्द्रियजयता से संपुष्ट हैं। आज के भौतिकवादी विभिन्न प्रकार के तनावों और दबावों से घिरे हुए युग में सुख और शान्ति के लिये, युद्ध और हिंसा से मानवता को बचाने के लिए जैन सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की महती आवश्यकता है।

जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में महिलाओं की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। नारी एक ऐसी धुरी है जिस पर परिवार का सारा चक्र घूमता है। यदि नारी समझदार है, अपने दायित्वों का बोध उसे है तो वह पूरे परिवार को संस्कारों की डोर से बांधे रक्खेगी। वह चाहेगी कि संस्कार परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र में व्याप्त हों। नारी का जीवन देहरी पर रक्खे दीपक के समान है, जिससे घर-आंगन दोनों प्रकाशित होते हैं। नारी दो परिवारों से जुड़ती है- पितृ पक्ष और ससुराल पक्ष। जो नारी सम्यक् दृष्टि वाली है वह अपने प्रत्येक व्यवहार से प्रेम, स्नेह, सहकार, सत्य, अहिंसा, अनेकान्त आदि दृष्टिकोणों से परिवार में अपनी भूमिका निभायेगी, अपने बच्चों को अपने रिश्तेदारों को ऐसी बातें बतायेगी जिससे सामनेवाला व्यक्ति, जो उससे मिलता है उस पर उसकी छाप पड़ेगी और वह उससे पूछ ही बैठेगा आप कौन हैं? क्या जैन हैं?

उदाहरण के लिए एक छोटी-सी बात। हम रेलवे स्टेशन पर हों या बस स्टैण्ड पर। यदि वहां हम पानी छान कर भरते हैं तो सामने खड़ा व्यक्ति यह समझेगा कि आप जैन हैं। यदि हमने रात्रि भोजन न करने या जमींकंद न खाने के सौगन ले रक्खे हैं तो हमारे सामने बैठे व्यक्ति को यह समझने में देर न लगेगी कि हम जैन हैं। इसी तरह प्राणिमात्र पर दया करना, जीव को बचाना, दीन-दुखियों की सेवा करना, स्वधर्मी वात्सल्य की भावना रखना आदि लक्षण भी जैनियों के हैं। संस्कारित मां अपने बच्चे को दूध की घूंट के साथ ही मांसाहार, शराब, बीड़ी, जुआ आदि दुर्व्यसनों से मुक्त रहकर सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देती है। बालक जब बड़ा हो जाता है तो उसकी दिनचर्या, व्यवहार आदि के बारे में भी उसे जागरूक कर देती है। माता के द्वारा प्राप्त संस्कार

बालक के मन और मस्तिष्क में इतने जम जाते हैं कि बड़े होने पर विषम से विषम परिस्थिति में भी उसकी मनोवृत्ति अपनी प्रतिज्ञा पर अडोल-अकम्प रहती है।

जैन समाज के चतुर्विध संघ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जो अपने सामने आये संकट के समक्ष अपने जीवन मूल्यों पर डटे रहे पर हटे नहीं। अरिष्टनेमि वाड़े में बंधे पशुओं का करुण क्रन्दन सुन विवाह का विचार छोड़ विरागी बन गये तो राजुल को भी अपना मन्तव्य निश्चित करने में समय नहीं लगा। महासती चन्दनबाला को वेश्या का भोगमय जीवन रास न आया। मूला सेठानी के आक्रोश ने चन्दना को विचलित नहीं किया। प्रभु महावीर का अभिग्रह फलित न होते हुए देख वह पश्चाताप से पीड़ित हो उठी। माता धारिणी ने अपने शील धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण दे दिये। विजय कंवर और विजया कंवरी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के धारक बने।

इन सभी प्रसंगों, उदाहरणों से स्पष्ट है कि जैन धर्म के मूल्यों, सिद्धान्तों के संरक्षण में नारी की बहुत बड़ी भूमिका रही है। मां, दादी, नानी, ताई, चाची आदि पारिवारिक महिलाओं ने कथा-कहानी, भजन-स्तवन, सोगन-पच्चक्खाण, तप-त्याग, देव-मुनि दर्शन, सामायिक-प्रतिक्रमण, दयाव्रत-उपवास आदि के माध्यम से अपने परिवार एवं समाज में अपनी परम्पराओं और जीवन मूल्यों को कायम रक्खा।

आज का युग विज्ञान का युग है। यातायात के साधनों से देश-विदेश की सीमाएं टूट गई हैं। हम विदेशी संस्कृति 'खाओ, पीओ, मौज करो' की भोगवादी संस्कृति से बहुत प्रभावित हो रहे हैं। परिणाम स्वरूप जीवन से सादगी, पवित्रता, शांति समाप्त होती जा रही है। अधिक कमाने-खाने, सुख-सुविधा भोगने की लालसा से व्यक्ति, बेतहाशा भाग रहा है, दौड़ रहा है। कुंठाओं, निराशाओं का जीवन जी रहा है। आज की महिला जो गृहलक्ष्मी है, सजीव लक्ष्मी है वह जड़ लक्ष्मी के पीछे भागती दिखाई दे रही है। परिवार के संस्कारों की ओर उसका ध्यान कम होता जा रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि अध्यात्म प्रधान भारत देश की निर्मल लोक-गंगा में चरित्रहीनता की बाढ़ आ गई है। देश में मिलावटखोरी, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, जमाखोरी जैसी दुष्प्रवृत्तियां पनप रही हैं। ऐसी स्थिति में नारी को फिर से अपनी खोई अस्मिता की पहचान करनी है।

आज के युग की आवश्यकता है कि नारी का जैन सिद्धान्तों के संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा परिवार, समाज में उनके प्रतिष्ठापन के लिए निम्नलिखित की ओर ध्यान आवश्यक है :

१. महिलाएं प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि विश्राम तक के समय का सदुपयोग करें। प्रतिदिन कम से कम एक घण्टा धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए रखें।

२. परिवार में बच्चों को नमस्कार मंत्र, जैन ध्वज, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि के बारे में जानकारी दें।

३. जैन व्रत-नियम, जप-तप आदि के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्वयं समझें और परिवार को समझायें।

४. पानी छान कर पीवें तथा आहार-पानी की शुद्धता, शाकाहार के महत्व को स्वयं समझें और परिवार को समझायें।

५. पर्व-त्यौहार, जन्मदिन, सामूहिक उत्सव आदि पर जैन तत्व दर्शन की पुस्तकें प्रभावना के रूप में बांटें।

६. लड़की को विवाह के अवसर पर स्वाध्याय योग्य पुस्तकें एवं धार्मिक उपकरणादि भेंट स्वरूप दें।

७. महिलाएं पास-पड़ौस में एकत्रित होकर अथवा जैन महिला मण्डल द्वारा गठित समिति के माध्यम से विचार गोष्ठियों का आयोजन करें, जिसमें जैन तत्व दर्शन एवं आचरण पर विचार हो।

८. महिलाएं अपने आस-पास चल रही शिक्षण संस्थाओं में जायें और वहां बालक-बालिकाओं के स्तर के अनुसार उन्हें धार्मिक जानकारी प्रदान करें। यह जानकारी प्रतियोगिताओं के रूप में भी रखी जा सकती है।

९. महिलाएं धार्मिक पाठशालाओं एवं चल पुस्तकालयों (घर-घर जाकर पुस्तकें देना) का संचालन करें।

१०. विवाह पर्व त्यौहार पर गाये जाने वाले गीतों में जैन भजनों का समावेश करें।

११. जैन आचारों की संहिता बनायें। घर में ऐसा प्रतीक हो जिससे बाहर से आने वाले को पता चले कि यह जैन परिवार है।

१२. ग्रीष्मकालीन शिविरों का आयोजन हो जिसमें सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन एवं आदर्शजीवन-चर्या पर चिन्तन हो।

१३. कषाय-विजय की ट्रेनिंग परिवार के सदस्यों को बचपन से दें। अनेकान्तवादी दृष्टि विकसित करें जिसमें परिवार में होने वाले झगड़ों से बचा जा सके।

१४. महिलाएं अपने बचे हुए समय को व्यर्थ की बातों में न गंवाकर सेवा कार्यों में लगायें। प्रतिदिन सम्भव न हो तो सप्ताह में एक बार निकट के अस्पताल में जाकर रोगियों को दवा, गरीबों को खाना, वस्त्र आदि वितरित करें। अपने जेब खर्च से पैसा बचा कर गरीब छात्र-छात्राओं के अध्ययन में मदद करें।

१५. छोटी-छोटी शिक्षाप्रद शक्तियों के स्टीकर बनवाकर परिवारों में वितरण करें।

नैतिक दायित्व का आरोपण सम्भव नहीं हो पाता है। यदि हम जो कुछ भी करते हैं औ
कुछ भी पाते हैं, उसका कारण बाह्य तथ्य ही है, तो फिर हम किसी भी कार्य के लिए
दृष्टि से उत्तरदायी ठहराये नहीं जा सकते। यदि व्यक्ति काल, स्वभाव, नियति अथवा ईश्व
इच्छाओं का एक साधन मात्र है, किन्तु ऐसी स्थिति में पुरुष में इच्छा-स्वातन्त्र्य का अभाव
पर नैतिक उत्तरदायित्व की समस्या उठती है। सामान्य मनुष्य को नैतिकता के प्रति आस्थ
बनाने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को उसके शुभाशुभ कर्मों के प्रति उत्तरदायी बनाय
सके और यह तभी सम्भव है कि जब उसके मन में विश्वास हो कि उसे उसकी स्वतन्त्र
से किये गये अपने ही कर्मों का परिणाम प्राप्त होता है। यही कर्म-सिद्धान्त है। ज्ञातव्य है
कर्म-सिद्धान्त ईश्वरीय कृपा या अनुग्रह के विरोध में जाता है। वह तो यह मानता है कि
भी कर्मफल-व्यवस्था को अन्यथा नहीं कर सकता है। कर्म का नियम ही सर्वोपरि है।

कर्मसिद्धान्त और कार्य-कारण का नियम

आचार के क्षेत्र में इस कर्मसिद्धान्त की उतनी ही आवश्यकता है जितनी विज्ञान के क्षे
कार्य-कारण-सिद्धान्त की। जिस प्रकार कार्यकारण-सिद्धान्त के अभाव में वैज्ञानिक व्याख्यायें अस
होती हैं, उसी प्रकार कर्म-सिद्धान्त के अभाव में नीतिशास्त्र भी अर्थ-शून्य हो जाता है।

प्रो. वेंकटरमण के शब्दों में "कर्म सिद्धान्त कार्य-कारण-सिद्धान्त के नियमों एवं मान्यत
का मानवीय आचार के क्षेत्र में प्रयोग है, जिसकी उपकल्पना यह है कि जगत में सभी कुछ
नियम के अधीन है[3]"। मैक्समूलर लिखते हैं कि यह विश्वास की कोई भी अच्छा बुरा कर्म
फल दिये समाप्त नहीं होता, नैतिक जगत का वैसा ही विश्वास है जैसा भौतिक जगत में
की अविनाशिता का नियम है[4]। यद्यपि कर्मसिद्धान्त एवं वैज्ञानिक कार्यकारण-सिद्धान्त में सा
रूप से समानता प्रतीत होती है, किन्तु उनमें एक मौलिक अन्तर भी है। यह कि जहां कार्यव
सिद्धान्त का विवेच्य जड़ तत्व के क्रिया-कलाप हैं वहीं कर्म-सिद्धान्त का विवेच्य चेतना
के क्रिया-कलाप हैं। अत: कर्मसिद्धान्त में वैसी पूर्ण नियतता नहीं होती, जैसी कार्य-कारण-सि
में होती है। यह नियतता एवं स्वतंत्रता का समुचित संयोग है। कर्म सिद्धान्त की मौलिक स्वी
यही है कि प्रत्येक शुभाशुभ क्रिया का कोई प्रभाव या परिणाम अवश्य होता है। साथ ही
कर्म-विपाक या परिणाम का भोक्ता वही होता है, जो क्रिया का कर्ता होता है और कर्म
विपाक की यह परम्परा अनादि काल से चल रही है।

कर्मसिद्धान्त की उपयोगिता

कर्मसिद्धान्त की व्यावहारिक उपयोगिता यह है कि वह न केवल हमें नैतिकता के प्रति आस्था
बनाता है, अपितु वह हमारे सुख-दुख आदि का स्रोत हमारे व्यक्तित्व में ही खोजकर ईश्वर
प्रतिवेशी अर्थात् अन्य व्यक्तियों के प्रति कटुता का निवारण करता है। कर्मसिद्धान्त की स्था
का प्रयोजन यही है कि नैतिक कृत्यों के अनिवार्य फल के आधार पर उनके पूर्ववर्ती एवं अनु
परिणामों की व्याख्या की जा सके तथा व्यक्तियों को अशुभ या दुष्कर्मों से विमुख किया जा सके

जैन कर्मसिद्धान्त और अन्य-दर्शन

ऐतिहासिक दृष्टि से वेदों में उपस्थित ऋत का सिद्धान्त कर्म-नियम का आदि स्रोत है। य
उपनिषदों के पूर्व के वैदिक साहित्य में कर्मसिद्धान्त का कोई सुस्पष्ट विवेचन नहीं मिलता,
भी उसमें उपस्थित ऋत के नियम की व्याख्या इस रूप में की जा सकती है। प्रो. दलसुख मालवणि
के शब्दों में कर्म जगत् वैचित्र्य का कारण है, ऐसा वाद उपनिषदों का सर्व-सम्मत वाद ही
कहा जा सकता। भारतीय चिन्तन में कर्म सिद्धान्त का विकास जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों परम्परा

नैतिक दायित्व का आरोपण सम्भव नहीं हो पाता है। यदि हम जो कुछ भी करते हैं और जो कुछ भी पाते हैं, उसका कारण बाह्य तथ्य ही है, तो फिर हम किसी भी कार्य के लिए नैतिक दृष्टि से उत्तरदायी ठहराये नहीं जा सकते। यदि व्यक्ति काल, स्वभाव, नियति अथवा ईश्वर की इच्छाओं का एक साधन मात्र है, किन्तु ऐसी स्थिति में पुरुष में इच्छा-स्वातन्त्र्य का अभाव मानने पर नैतिक उत्तरदायित्व की समस्या उठती है। सामान्य मनुष्य को नैतिकता के प्रति आस्थावान बनाने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को उसके शुभाशुभ कर्मों के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके और यह तभी सम्भव है कि जब उसके मन में विश्वास हो कि उसे उसकी स्वतन्त्र इच्छा से किये गये अपने ही कर्मों का परिणाम प्राप्त होता है। यही कर्म-सिद्धान्त है। ज्ञातव्य है कि कर्म-सिद्धान्त ईश्वरीय कृपा या अनुग्रह के विरोध में जाता है। वह तो यह मानता है कि ईश्वर भी कर्मफल-व्यवस्था को अन्यथा नहीं कर सकता है। कर्म का नियम ही सर्वोपरि है।

कर्मसिद्धान्त और कार्य-कारण का नियम

आचार के क्षेत्र में इस कर्मसिद्धान्त की उतनी ही आवश्यकता है जितनी विज्ञान के क्षेत्र में कार्य-कारण-सिद्धान्त की। जिस प्रकार कार्यकारण-सिद्धान्त के अभाव में वैज्ञानिक व्याख्यायें असम्भव होती हैं, उसी प्रकार कर्म-सिद्धान्त के अभाव में नीतिशास्त्र भी अर्थ-शून्य हो जाता है।

प्रो. वेंकटरमण के शब्दों में "कर्म सिद्धान्त कार्य-कारण-सिद्धान्त के नियमों एवं मान्यताओं का मानवीय आचार के क्षेत्र में प्रयोग है, जिसकी उपकल्पना यह है कि जगत में सभी कुछ किसी नियम के अधीन है[३]"। मैक्समूलर लिखते हैं कि यह विश्वास की कोई भी अच्छा बुरा कर्म बिना फल दिये समाप्त नहीं होता, नैतिक जगत का वैसा ही विश्वास है जैसा भौतिक जगत में ऊर्जा की अविनाशिता का नियम है[४]। यद्यपि कर्मसिद्धान्त एवं वैज्ञानिक कार्यकारण-सिद्धान्त में सामान्य रूप से समानता प्रतीत होती है, किन्तु उनमें एक मौलिक अन्तर भी है। यह कि जहां कार्यकारण सिद्धान्त का विवेच्य जड़ तत्व के क्रिया-कलाप हैं वहीं कर्म-सिद्धान्त का विवेच्य चेतना सत्ता के क्रिया-कलाप हैं। अतः कर्मसिद्धान्त में वैसी पूर्ण नियतता नहीं होती, जैसी कार्य-कारण-सिद्धान्त में होती है। यह नियतता एवं स्वतंत्रता का समुचित संयोग है। कर्म सिद्धान्त की मौलिक स्वीकृति यही है कि प्रत्येक शुभाशुभ क्रिया का कोई प्रभाव या परिणाम अवश्य होता है। साथ ही उस कर्म-विपाक या परिणाम का भोक्ता वही होता है, जो क्रिया का कर्त्ता होता है और कर्म एवं विपाक की यह परम्परा अनादि काल से चल रही है।

कर्मसिद्धान्त की उपयोगिता

कर्मसिद्धान्त की व्यावहारिक उपयोगिता यह है कि वह न केवल हमें नैतिकता के प्रति आस्थावान बनाता है, अपितु वह हमारे सुख-दुख आदि का स्रोत हमारे व्यक्तित्व में ही खोजकर ईश्वर एवं प्रतिवेशी अर्थात् अन्य व्यक्तियों के प्रति कटुता का निवारण करता है। कर्मसिद्धान्त की स्थापना का प्रयोजन यही है कि नैतिक कृत्यों के अनिवार्य फल के आधार पर उनके पूर्ववर्ती एवं अनुवर्ती परिणामों की व्याख्या की जा सके तथा व्यक्तियों को अशुभ या दुष्कर्मों से विमुख किया जा सके।

जैन कर्मसिद्धान्त और अन्य-दर्शन

ऐतिहासिक दृष्टि से वेदों में उपस्थित ऋत का सिद्धान्त कर्म-नियम का आदि स्रोत है। यद्यपि उपनिषदों के पूर्व के वैदिक साहित्य में कर्मसिद्धान्त का कोई सुस्पष्ट विवेचन नहीं मिलता, फिर भी उसमें उपस्थित ऋत के नियम की व्याख्या इस रूप में की जा सकती है। प्रो. दलसुख मालवणिया के शब्दों में कर्म जगत् वैचित्र्य का कारण है, ऐसा वाद उपनिषदों का सर्व-सम्मत वाद ही नहीं कहा जा सकता। भारतीय चिन्तन में कर्म सिद्धान्त का विकास जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों परम्पराओं

में हुआ है। यद्यपि यह एक भिन्न बात है कि जैनों ने कर्म सिद्धान्त का जो गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया वह अन्य परम्पराओं में उपलब्ध नहीं है[5]। वैदिकों के लिए जो महत्व ऋत का, मीमांसकों के लिए अपूर्व का, नैयायिकों के लिए अदृष्ट का, वेदान्तियों के लिए माया का और सांख्यों के लिए प्रकृति का है, वही जैनों के लए कर्म का है। यद्यपि सामान्य दृष्टि से देखने पर वेदों का ऋत, मीमांसकों का अपूर्व, नैययिकों का अदृष्ट, अद्वैतियों की माया, सांख्यों की प्रकृति एवं बौद्धों की अविद्या या संस्कार पर्यायवाची से लगते हैं, क्योंकि व्यक्ति के बंधन एवं उसके सुख-दुःख की स्थितियों में इनकी मुख्य भूमिका है, फिर भी इनके स्वरूप में दार्शनिक दृष्टि से अन्तर है, यह बात हमें दृष्टिगत रखनी होगी। ईसाई धर्म और इस्लाम में भी कर्म-नियम को स्थान मिला है... फिर भी ईश्वरीय अनुग्रह पर अधिक बल देने के कारण उनमें कर्म-नियम के प्रति आस्था के स्थान पर ईश्वर के प्रति विश्वास ही प्रमुख रहा है। ईश्वर की अवधारणा के अभाव के कारण भारत की श्रमण परम्परा तो कर्म-सिद्धान्त के प्रति आस्थावान रही ही, बौद्ध-दर्शन में भी जैनों के समान ही कर्मनियम को सर्वोपरि माना गया। हिन्दूधर्म में भी ईश्वरीय व्यवस्था को कर्मनियम के अधीन लाया गया, उसमें ईश्वर कर्मनियम का व्यवस्थापक होकर भी उसके अधीन ही कार्य करता है।

जैन कर्मसिद्धान्त का विकास क्रम

जैन कर्मसिद्धान्त का विकास किस क्रम में हुआ इस प्रश्न का समाधान उतना सरल नहीं है, जितना हम समझते हैं। सामान्य विश्वास तो यह है कि जैन धर्म की तरह यह भी अनादि है, किन्तु विद्वत्-वर्ग इसे स्वीकार नहीं करता है। यदि जैन कर्मसिद्धान्त के विकास एवं कार्यक्रम का कोई समाधान देना हो तो वह जैन आगम एवं कर्मसिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थों के कालक्रम के आधार पर ही दिया जा सकता है, उसके अतिरिक्त अन्य विकल्प नहीं है। जैन आगमसाहित्य में आचारांग प्राचीनतम है। उस ग्रंथ में जैन कर्मसिद्धान्त का चाहे विकसित स्वरूप उपलब्ध न हो, किन्तु उसकी मूल-भूत अवधारणाएं अवश्य उपस्थित हैं। कर्म से उपाधि या बन्धन होता है। कर्म रज है, कर्म का आश्रव होता है। साधक को कर्मशरीर को धुन डालना चाहिए आदि विचार उसमें परिलक्षित होते हैं। इससे यह फलित होता है कि आचारांग के काल में कर्म को स्पष्ट रूप से बन्धन का कारण माना जाता था और कर्म के भौतिक पक्ष की स्वीकृति के साथ यह भी माना जाता था कि कर्म की निर्जरा की जा सकती है। साथ ही आचारांग में शुभाशुभ कर्मों का शुभाशुभ विपाक होता है, यह अवधारणा भी उपस्थित है। उसके अनुसार बन्धन का मूल कारण ममत्व है। बन्धन से मुक्ति का उपाय ममत्व का विसर्जन और समत्व का सर्जन है[6]।

सूत्रकृतांग का प्रथम श्रुतस्कन्ध भी आचारांग से किंचित ही परवर्ती माना जाता है। सूत्रकृतांग के काल में यह प्रश्न बहुचर्चित था कि कर्म का फल संविभाग सम्भव है या नहीं? इसमें स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्ति अपने स्वकृत कर्मों का ही विपाक अनुभव करता है। बन्धन के सम्बन्ध में सूत्रकृतांग स्पष्ट रूप से कहता है कि कुछ व्यक्ति, कर्म को वीर्य (पुरुषार्थ) और कुछ अकर्म को वीर्य कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कर्म के सन्दर्भ में यह विचार लोगों के मन में उत्पन्न हो गया था कि यदि कर्म ही बन्धन है तो फिर अकर्म अर्थात् निष्क्रियता ही बन्धन से बचने का उपाय होगा, किन्तु सूत्रकृतांग के अनुसार अकर्म का अर्थ निष्क्रियता नहीं है। इसमें प्रतिपादित है कि प्रमाद कर्म है और अप्रमाद अकर्म है। वस्तुतः किसी क्रिया की बन्धकता उसके क्रिया-रूप होने पर नहीं, अपितु उसके पीछे रही प्रमत्तता या अप्रमत्तता पर निर्भर है। यहां प्रमाद का अर्थ है आत्मचेतना (Sell awareness) का अभाव। जिस आत्मा का विवेक जागृत नहीं है और जो कषाययुक्त है वही परिसुप्त या प्रमत्त है और जिसका विवेक जागृत है और जो वासना मुक्त है वही अप्रमत्त है। सूत्रकृतांग में ही हमें क्रियाओं के दो रूपों की चर्चा भी मिलती

है ---१. साम्परायिक और २. ईर्यापथिक[७]। राग, द्वेष, क्रोध आदि कषायों से युक्त क्रियायें साम्परायिक कही जाती हैं। जबकि इनसे रहित क्रियायें ईर्यापथिक कही जाती हैं। साम्परायिक क्रियायें बन्धक होती है जबकि ईर्यापथिक बन्धनकारक नहीं होती। इससे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूत्रकृतांग में कौन सा कर्म बन्धन का कारण होगा और कौन सा बन्धन का कारण नहीं होगा- इसकी एक कसौटी प्रस्तुत कर दी गई है। आचारांग में प्रतिपादित ममत्व की अपेक्षा इसमें प्रमत्तता और कषाय को बन्धन का प्रमुख कारण माना गया है।

यदि हम बन्धन के कारणों का ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि प्रारम्भ में ममत्व (मेरेपन) को बन्धन का कारण माना गया, फिर आत्मविस्मृति या प्रमाद को। जब प्रमाद की व्याख्या का प्रश्न आया, तो स्पष्ट किया गया कि राग-द्वेष की उपस्थिति ही प्रमाद है। अत: राग-द्वेष को बन्धन का कारण बताया गया। उत्तराध्ययन में राग-द्वेष व मोह को बन्धन का कारण बताया गया है[८]। इनमें मोह मिथ्यात्व और कषाय का संयुक्त रूप है। प्रमाद के साथ इनमें अविरति एवं योग के जुड़ने पर जैन परम्परा में बन्धन के ५ कारण माने जाने लगे[९]। समयसार आदि में प्रमाद को कषाय का ही एक रूप मानकर बन्धन के चार कारणों की व्याख्यायें मिलती हैं[१०]। इनमें योग बन्धनकारक होते हुए भी वस्तुत: जब तक कषाय के साथ युक्त नहीं होता है, बन्धन का कारण नहीं बनता है। अत: प्राचीन ग्रन्थों में बन्धन के कारणों की चर्चा में मुख्य रूप से राग-द्वेष (कषाय) एवं मोह (मिथ्यादृष्टि) की ही चर्चा हुई है।

जैन कर्मसिद्धान्त के इतिहास की दृष्टि से कर्मप्रकृतियों का विवेचन भी महत्वपूर्ण माना जाता है। कर्म की अष्ट मूलप्रकृतियों का सर्वप्रथम निर्देश हमें ऋषिभाषित के पार्श्व नामक अध्ययन में उपलब्ध होता है[११]। इसमें ८ प्रकार की कर्मग्रन्थियों का उल्लेख है। यद्यपि वहीं इनके नामों की कोई चर्चा उपलब्ध नहीं होती। ८ कर्मप्रकृतियों के नामों का स्पष्ट उल्लेख हमें उत्तराध्ययन के ३३वें अध्याय में और स्थानांग में मिलता है[१२]। स्थानांग की अपेक्षा भी उत्तराध्ययन में यह वर्णन विस्तृत है, क्योंकि इसमें अवान्तर कर्म प्रकृतियों की चर्चा भी हुई है। इसमें ज्ञानावरण कर्म की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २ एवं २८, नामकर्म की २ एवं अनेक, आयुष्यकर्म की ४, गोत्रकर्म की २ और अन्तराय कर्म की ५ अवान्तर प्रकृतियों का उल्लेख मिलता है[१३]। आगे जो कर्मसाहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ निर्मित हुए उनमें नामकर्म की प्रकृतियों की संख्या में और भी वृद्धि हुई। साथ ही उनमें आत्मा में किस अवस्था में कितनी कर्मप्रकृतियों का उदय, सत्ता, बंध आदि होते हैं, इसकी भी चर्चा हुई। वस्तुत: जैन कर्मसिद्धान्त ई.पू. आठवीं शती से लेकर ईस्वीसन् की सातवीं शती तक लगभग पन्द्रह सौ वर्ष की सुदीर्घ अवधि में व्यवस्थित होता रहा है। यह एक सुनिश्चित सत्य है कि कर्मसिद्धान्त का जितना गहन विश्लेषण जैन परम्परा के कर्मसिद्धान्त सम्बन्धी साहित्य में हुआ उतना अन्यत्र किसी भी परम्परा में नहीं हुआ है।

कर्म शब्द का अर्थ

जब हम जैन कर्मसिद्धान्त की बात करते हैं, तो हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि उसमें कर्म शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वह अर्थ कर्म के उस सामान्य अर्थ की अपेक्षा अधिक व्यापक है। सामान्यतया कोई भी क्रिया कर्म कहलाती है, प्रत्येक हलचल चाहे वह मानसिक हो, वाचिक हो या शारीरिक हो, कर्म है, किन्तु जैन परम्परा में जब हम कर्म शब्द का प्रयोग करते हैं, तो वहीं ये क्रियायें तभी कर्म बनती हैं जब ये बन्धन का कारण हों। मीमांसादर्शन में कर्म का तात्पर्य यज्ञ-याग आदि क्रियाओं से लिया जाता है। गीता आदि में कर्म का अर्थ अपने वर्णाश्रम के अनुसार किये जाने वाले कर्मों से लिया गया है। यद्यपि गीता एक व्यापक अर्थ में भी कर्म शब्द का प्रयोग करती है। उसके अनुसार मनुष्य जो भी करता है या करने का आग्रह रखता है, वे सभी प्रवृत्तियाँ कर्म की श्रेणी में आती है। बौद्धदर्शन में चेतना को ही कर्म कहा गया है। बुद्ध

कहते हैं कि "चेतना ही भिक्षुओं का कर्म है, ऐसा मैं इसलिए कहता हूं कि चेतना के द्वारा ही व्यक्ति कर्म को करता है काया से, मन से या वाणी से"[१४]। इस प्रकार बौद्धदर्शन में कर्म के समुत्थान या कारक को ही कर्म कहा गया है। बौद्धदर्शन में आगे चलकर चेतना कर्म और चेतयित्वा कर्म की चर्चा हुई है। चेतना कर्म, मानसिक कर्म है, चेतयित्वा कर्म वाचिक एवं कायिक कर्म है[१५]। किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि जैन कर्मसिद्धान्त में कर्म शब्द अधिक व्यापक अर्थ में गृहीत हुआ है। उसमें मात्र क्रिया को ही कर्म नहीं कहा गया, अपितु उसके हेतु (कारण) को भी कर्म कहा गया है। आचार्य देवेन्द्र सूरि लिखते हैं--- जीव की क्रिया का हेतु ही कर्म है[१६]। किन्तु हम मात्र हेतु को भी कर्म नहीं कह सकते हैं। हेतु, उससे निष्पन्न क्रिया और उस क्रिया का परिणाम, सभी मिलकर जैन दर्शन में कर्म की परिभाषा को स्पष्ट करते हैं। पं. सुखलाल जी संघवी लिखते हैं कि मिथ्यात्व, कषाय आदि कारणों से जीव द्वारा जो किया जाता है, कर्म कहलाता है[१७]। साथ ही साथ कर्म में उस क्रिया के विपाक को भी सम्मिलित करना होगा। इस प्रकार कर्म के हेतु, क्रिया और क्रिया-विपाक, सभी मिलकर कर्म कहलाते हैं। जैन दार्शनिकों ने कर्म के दो पक्ष माने हैं- राग-द्वेष, कषाय आदि मनोभाव, जो मनोजन्य कर्म होते हैं और कर्म-पुद्‌गल, जो कर्म का परिणाम होता है और वही मनोजन्य कर्म की उत्पत्ति का निमित्त कारण भी होता है। यह भी स्मरण रखना होगा कि ये कर्महेतु (मनोभाव) और कर्मपरिणाम भी परस्पर कार्य-कारण भाव रखते हैं।

सभी आस्तिक दर्शनों ने एक ऐसी सत्ता को स्वीकार किया है जो आत्मा या चेतना की शुद्धता को प्रभावित करती है। उसे वेदान्त में माया, सांख्य में प्रकृति, न्यायदर्शन में अदृष्ट एवं मीमांसा में अपूर्व कहा गया है। बौद्धदर्शन में उसे ही अविद्या और संस्कार (वासना) के नाम से जाना जाता है। योगदर्शन इसे आशय कहता है, तो शैवदर्शन में यह पाश कही जाती है। जैनदर्शन इसी आत्मा की विशुद्धता को प्रभावित करने वाली शक्ति को कर्म कहता है। जैन दर्शन में कर्म के निमित्त कारणों के रूप में कर्म-पुद्‌गल को भी स्वीकार किया गया है। जबकि इसके उपादान के रूप में आत्मा को ही माना गया है। आत्मा के बन्धन में कर्म-पुद्‌गल निमित्त कारण हैं और स्वयं आत्मा उपादान कारण होता है।

कर्म का भौतिक स्वरूप

जैन दर्शन में कर्म चेतना से उत्पन्न क्रिया मात्र नहीं है, अपितु यह स्वतंत्र तत्व भी है। आत्मा के बन्धन का कारण क्या है? जब यह प्रश्न जैन दार्शनिकों के समक्ष आया तो उन्होंने बताया कि आत्मा के बन्धन का कारण केवल आत्मा नहीं हो सकती। वस्तुत: कषाय (राग-द्वेष) अथवा मोह (मिथ्यात्व) आदि जो बन्धक मनोवृत्तियां हैं, वे भी स्वत: उत्पन्न नहीं हो सकतीं, जब तक कि वे पूर्वबद्ध कर्मवर्गणाओं के विपाक (संस्कार) के रूप में चेतना के समक्ष उपस्थित नहीं होती हैं। जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शरीररसायनों के परिवर्तन से संवेग (मनोभाव) उत्पन्न होते हैं और उन संवेगों के कारण ही शरीररसायनों में परिवर्तन होता है। यही स्थिति आत्मा की भी है। पूर्व कर्मों के कारण आत्मा में राग-द्वेष आदि मनोभाव उत्पन्न (उदित) होते हैं और इन उदय में आये मनोभावों के क्रियारूप परिणित होने पर आत्मा नवीन कर्मों का संचय करता है। बन्धन की दृष्टि से कर्मवर्गणाओं के कारण मनोभाव उत्पन्न होते हैं और उन मनोभावों के कारण जड़ कर्मवर्गणाएं कर्म का स्वरूप ग्रहण कर आत्मा को बन्धन में डालती हैं। जैन विचारकों के अनुसार एकान्त रूप से न तो आत्मा स्वत: ही बन्धन का कारण है, न कर्मवर्गणा के पुद्‌गल ही। दोनों निमित्त एवं उपादान के रूप से एक दूसरे से संयुक्त होकर ही बन्धन की प्रक्रिया को जन्म देते हैं।

द्रव्यकर्म और भावकर्म

कर्मवर्गणाएं या कर्म का भौतिक पक्ष, द्रव्यकर्म कहलाता है। जबकि कर्म की चैतसिक अवस्थाएं

अर्थात् मनोवृत्तियां, भावकर्म हैं। आत्मा के मनोभाव या चेतना की विविध विकारित अवस्थाएं भावकर्म हैं और ये मनोभाव जिस निमित्त से उत्पन्न होते हैं, वह पुद्गल-द्रव्य द्रव्यकर्म है। आचार्य नेमिचन्द्र गोम्मटसार में लिखते हैं कि पुद्गल द्रव्यकर्म है और उसकी चेतना को प्रमाणित करने वाली शक्ति भावकर्म है[१८]। आत्मा में जो मिथ्यात्व और कषाय अथवा राग-द्वेष आदि भाव हैं, वे ही भाव कर्म हैं और उनकी उपस्थिति में कर्मवर्गणा के जो पुद्गल परमाणु ज्ञानावरण आदि कर्मप्रकृतियों के रूप में परिणत होते हैं, वे ही द्रव्यकर्म हैं। द्रव्यकर्म का कारण भावकर्म है और भावकर्म का कारण द्रव्य कर्म है। आचार्य विद्यानन्दि ने अष्टसहस्त्री में द्रव्यकर्म को आवरण व भावकर्म को दोष कहा है। चूंकि द्रव्यकर्म आत्मशक्ति के प्रकटन को रोकता है, इसलिए वह आवरण है और भाव कर्म स्वयं आत्मा की विभाव अवस्था है अत: वह दोष है[१९]। कर्मवर्गणा के पुद्गल तब तक कर्म रूप में परिणति नहीं होते हैं, जब तक ये भावकर्मों द्वारा प्रेरित नहीं होते हैं, किन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना होगा कि आत्मा में जो विभावदशाएं हैं, उनके निमित्त कारण के रूप में द्रव्यकर्म भी अपना कार्य करते हैं। यह सत्य है कि दूषित मनोविकारों का जन्म आत्मा में ही होता है, किन्तु उसके निमित्त (परिवेश) के रूप में कर्मवर्गणाएं अपनी भूमिका का अवश्य निर्वाह करती है। जिस प्रकार हमारे स्वभाव में परिवर्तन का कारण हमारे जैव-रसायनों एवं रक्त-रसायनों का परिवर्तन है। उसी प्रकार कर्मवर्गणाएं हमारे मनोविकारों के सृजन में निमित्त कारण होती हैं। पुन: जिस प्रकार हमारे मनोभावों के आधार पर हमारे जैव-रसायन एवं रक्त-रसायन में परिवर्तन होता है, वैसे ही आत्मा में विकारी भावों के कारण जड़ कर्मवर्गणा के पुद्गल कर्म रूप में परिणित हो जाते हैं। अत: द्रव्यकर्म और भावकर्म में परस्पर सापेक्ष है। पं. सुखलाल जी लिखते हैं भावकर्म के होने में द्रव्यकर्म निमित्त है और द्रव्यकर्म के होने में भावकर्म निमित्त है[२०]। दोनों आपस में बीजांकुर की तरह सम्बद्ध हैं। जिस प्रकार बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है। उनमें किसी को पूर्वापर नहीं कहा जा सकता है, वैसे इनमें भी किसी की पूर्वापरता का निश्चय नहीं हो सकता है। प्रत्येक द्रव्यकर्म की अपेक्षा से भावकर्म पूर्व होगा तथा प्रत्येक भावकर्म की अपेक्षा से द्रव्यकर्म पूर्व होगा।

द्रव्यकर्म एवं भावकर्म की इस आवधारणा के आधार पर जैन-कर्मसिद्धान्त अधिक युक्तिसंगत बन गया है। जैन कर्मसिद्धान्त कर्म के भावात्मक पक्ष पर समुचित बल देते हुए भी जड़ और चेतन के मध्य एक वास्तविक सम्बन्ध बनाने का प्रयास करता है। कर्म जड़ जगत एवं चेतना के मध्य एक योजक कड़ी है। जहां एक ओर सांख्य-योग दर्शन के अनुसार कर्म-पूर्णत: जड़ प्रकृति से सम्बन्धित है, अत: उनके अनुसार वह प्रकृति ही है, जो बन्धन में आती है और मुक्त होती है। वहीं दूसरी ओर बौद्ध दर्शन के अनुसार कर्म संस्कार रूप है अत: वे चैत्तसिक हैं। इसलिए उन्हें मानना पड़ा कि चेतना ही बन्धन एवं मुक्ति का कारण है, किन्तु जैन विचारक इन एकांगी दृष्टिकोणों से सन्तुष्ट नहीं हो पाये। उनके अनुसार संसार का अर्थ है- जड़ और चेतन का पारस्परिक बन्धन या पारस्परिक प्रभावशीलता तथा मुक्ति का अर्थ है- जड़ व चेतन की एक दूसरे को प्रभावित करने की सामर्थ्य का समाप्त हो जाना।

भौतिक एवं अभौतिक पक्षों की पारस्परिक प्रभावकता

जिन दार्शनिकों ने चरम-सत्य के सम्बन्ध में अद्वैत की धारणा के स्थान पर द्वैत की धारणा स्वीकार की, उनके लिए यह प्रश्न बना रहा कि वे एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। अनेक विचारकों ने द्वैत को स्वीकारते हुए भी उनके पारस्परिक सम्बन्ध को अस्वीकार किया, किन्तु जगत की व्याख्या इनके पारस्परिक सम्बन्ध के अभाव में सम्भव नहीं है। पश्चिम में यह समस्या देकार्त के सामने प्रस्तुत हुई थी। देकार्त ने इसका हल पारस्परिक प्रतिक्रियावाद के आधार पर किया भी, किन्तु स्पीनोजा उससे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने प्रश्न उठाया कि दो स्वतंत्र सत्ताओं में परस्पर

प्रतिक्रिया सम्भव कैसे है? अत: स्पीनोजा ने प्रतिक्रियावाद के स्थान पर समानान्तरवाद की स्थापना की। लाईबिनीज ने पूर्वस्थापित सामंजस्य की अवधारणा प्रस्तुत की[21]। भारतीय चिन्तन में भी प्राचीन काल से इस सम्बन्ध में प्रयत्न हुए। यह प्रश्न उठाया गया कि लिंगशरीर या कर्मशरीर आत्मा को कैसे प्रभावित कर सकता है? सांख्य दर्शन पुरुष और प्रकृति के द्वैत को स्वीकार करके भी इनके पारस्परिक सम्बन्ध को नहीं समझा पाया, क्योंकि उसने पुरुष को कुटस्थ नित्य मान लिया था, किन्तु जैन दर्शन ने अपने वस्तुवादी और परिणामवादी विचारों के आधार पर इनकी सफल व्याख्या की है। वह बताता है कि जिस प्रकार जड़ मादक पदार्थ चेतना को प्रभावित करते हैं, यह एक अनुभूत सत्य है, उसी प्रकार जड़ कर्म वर्गणाओं का प्रभाव चेतन आत्मा पर पड़ता है, इसे स्वीकार किया जा सकता है। संसार का अर्थ है जड़ और चेतन का वास्तविक सम्बन्ध। इस सम्बन्ध की वास्तविकता को स्वीकार किये बिना जगत की व्याख्या सम्भव नहीं है।

मूर्तकर्म का अमूर्त आत्मा पर प्रभाव

यह भी सत्य है कि कर्म मूर्त है और वे हमारी चेतना को प्रभावित करते हैं। जैसे मूर्त भौतिक विषयों का चेतन व्यक्ति से सम्बन्ध होने पर सुख-दुख आदि का अनुभव या वेदना होती है, वैसे ही कर्म के परिणाम स्वरूप भी वेदना होती है, अत: वे मूर्त हैं। किन्तु दार्शनिक दृष्टि से यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि कर्म मूर्त है तो वह अमूर्त आत्मा पर प्रभाव कैसे डालेगा? जिस प्रकार वायु और अग्नि अमूर्त आकाश पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डाल सकती है, उसी प्रकार कर्म का अमूर्त आत्मा पर भी कोई प्रभाव नहीं होना चाहिए। जैन दार्शनिक यह मानते हैं कि जैसे अमूर्त ज्ञानादि गुणों पर मूर्त मदिरादि का प्रभाव पड़ता है, वैसे ही अमूर्त जीव पर भी मूर्त कर्म का प्रभाव पड़ता है। उक्त प्रश्न का दूसरा तर्कसंगत एवं निर्दोष समाधान यह भी है कि कर्म के सम्बन्ध से आत्मा कथंचित मूर्त भी है। क्योंकि संसारी आत्मा अनादिकाल से कर्मद्रव्य से सम्बद्ध है, इस अपेक्षा से आत्मा सर्वथा अमूर्त नहीं है, अपितु कर्म से सम्बद्ध होने के कारण स्वरूपत: अमूर्त होते हुए भी वस्तुत: कथंचित मूर्त है। इस दृष्टि से भी आत्मा पर मूर्तकर्म का उपघात, अनुग्रह और प्रभाव पड़ता है। वस्तुत: जिस पर कर्मसिद्धान्त का नियम लागू होता है, वह व्यक्तित्व अमूर्त नहीं है। हमारा वर्तमान व्यक्तित्व शरीर (भौतिक) और आत्मा (अभौतिक) का एक विशिष्ट संयोग है। शरीरी-आत्मा भौतिक वाह्य तथ्यों से अप्रभावित नहीं रह सकता। जब तक आत्मा शरीर (कर्म-शरीर) के बन्धन से मुक्त नहीं हो जाती, तब तक वह अपने को भौतिक प्रभावों से पूर्णतया अप्रभावित नहीं रख सकती। मूर्त शरीर के माध्यम से ही उस पर मूर्त-कर्म का प्रभाव पड़ता है।

आत्मा और कर्मवर्गणाओं में वास्तविक सम्बन्ध स्वीकार करने पर यह प्रश्न उठता है कि मुक्त अवस्था में भी जड़ कर्मवर्गणाएं आत्मा को प्रभावित किये बिना नहीं रहेंगी, क्योंकि मुक्ति-क्षेत्र में भी कर्मवर्गणाओं का अस्तित्व तो है ही। इस सन्दर्भ में जैन आचार्यो का उत्तर यह है कि जिस प्रकार कीचड़ में रहा लोहा जंग खाता है, स्वर्ण नहीं, उसी प्रकार जड़ कर्म पुद्गल उसी आत्मा को विकारी बना सकते हैं जो राग-द्वेष से अशुद्ध है। वस्तुत: जब तक आत्मा भौतिक शरीर से युक्त होता है तभी तक कर्मवर्गणा के पुद्गल उसे प्रभावित कर सकते हैं। आत्मा में पूर्व से उपस्थित कर्मवर्गणा के पुद्गल ही वाह्य जगत के कर्मवर्गणाओं को आकर्षित कर सकते हैं। मुक्त अवस्था में आत्मा अशरीरी होता है अत: उसे कर्मवर्गणा के पुद्गल प्रभावित करने में समर्थ नहीं होते हैं।

कर्म एवं उनके विपाक की परम्परा

कर्म एवं उनके विपाक की परम्परा से ही यह संसार चक्र प्रवर्तित होता है। दार्शनिक दृष्टि से यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि कर्म और आत्मा का सम्बन्ध कब से हुआ। यदि हम यह सम्बन्ध सादि अर्थात् काल विशेष में हुआ, ऐसा मानते हैं, तो यह मानना होगा कि उसके पहले आत्मा मुक्त

था और यदि मुक्त आत्मा को बंधन में आने की सम्भावना हो तो फिर मुक्ति का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता है। यदि यह माना जाय कि आत्मा अनादिकाल से बंधन में है तो फिर यह मानना होगा कि यदि बन्धन अनादि है तो वह अनन्त भी होगा और ऐसी स्थिति में मुक्ति की सम्भावना ही समाप्त हो जायेगी।

जैन दार्शनिकों ने इस समस्या का समाधान इस रूप में किया कि कर्म और विपाक की यह परम्परा कर्म विशेष की अपेक्षा से तो सादि और सान्त है, किन्तु प्रवाह की अपेक्षा से अनादि और अनन्त है। पुनः कर्म और विपाक की परम्परा का यह प्रवाह भी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से अनादि तो है, अनन्त नहीं। क्योंकि प्रत्येक कर्म अपने बन्धन की दृष्टि से सादि है। यदि व्यक्ति नवीन कर्मों का आगमन रोक सके तो यह परम्परा स्वतः ही समाप्त हो जायेगी, क्योंकि कर्म-विशेष तो सादि है तो और जो सादि है वह कभी समाप्त होगा ही।

जैन दार्शनिकों के अनुसार राग-द्वेष रूपी कर्म बीज के भून जाने पर कर्म प्रवाह की परम्परा समाप्त हो जाती है। कर्म और विपाक की परम्परा के सम्बन्ध में यही एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसके आधार पर बन्धन का अनादित्व व मुक्ति से अनावृत्ति की समुचित व्याख्या सम्भव है।

कर्मफलसंविभाग का प्रश्न

क्या एक व्यक्ति अपने शुभाशुभ कर्मों का फल दूसरे को दे सकता है या नहीं अथवा दूसरे के कर्मों का फल उसे प्राप्त होता है या नहीं, यह दार्शनिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। भारतीय चिन्तन में हिन्दू परम्परा मानती है कि व्यक्ति के शुभाशुभ कर्मों का फल उसके पूर्वजों व सन्तानों को मिल सकता है। इस प्रकार वह इस सिद्धान्त को मानती है कि कर्मफल का संविभाग सम्भव है[२२]। इसके विपरीत बौद्ध परम्परा कहती है कि व्यक्ति के पुण्यकर्म का ही संविभाग हो सकता है, पापकर्म का नहीं, क्योंकि पापकर्म में उसकी अनुमति नहीं होती है। पुनः उनके अनुसार पाप सीमित होता है अतः इसका संविभाग नहीं हो सकता, किन्तु पुण्य के अपरिमित होने से उसका ही संविभाग सम्भव है[२३]। किन्तु इस सम्बन्ध में जैनों का दृष्टिकोण भिन्न है, उनके अनुसार व्यक्ति अपने कर्मों का फल विपाक न तो दूसरों को दे सकता है और न दूसरे के शुभाशुभ कर्मों का फल उसे मिल सकता है।

जैन दार्शनिक स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि कर्म और उसका विपाक व्यक्ति का अपना स्वकृत होता है[२४]।

जैन कर्मसिद्धान्त में कर्मफलसंविभाग का अर्थ समझने के लिए हमें निमित्त कारण और उपादान कारण के भेद को समझना होगा। दूसरा व्यक्ति हमारे सुख-दुःख में और हम दूसरे के सुख-दुःख में निमित्त हो सकते हैं, किन्तु भोक्ता और कर्त्ता तो वही होता है। अतः उपादान की दृष्टि से तो कर्म और उसका विपाक अर्थात् सुख-दुख का अनुभव स्वकृत है। निमित्त की दृष्टि से उन्हें परकृत कहा जा सकता है, किन्तु निमित्त अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि कर्म संकल्प तो हमारा अपना ही होता है व कर्म के विपाक की अनुभूति भी हमारी ही होती है। अतः उपादान कारण की दृष्टि से तो कर्म एवं उसके विपाक में संविभाग सम्भव नहीं है। न तो दूसरा व्यक्ति हमें सुखी या दुःखी कर सकता है और न हम दूसरे को सुखी या दुःखी कर सकते हैं। हम अधिक से अधिक दूसरे के सुख-दुःख के निमित्त हो सकते हैं, लेकिन ऐसी निमित्तता तो भौतिक पदार्थों के सन्दर्भ में भी होती है। कर्म और उसका विपाक दोनों ही व्यक्ति के अपने होते हैं।

कर्मविपाक की नियतता व अनियतता

कर्म-सिद्धान्त की दृष्टि से यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि क्या जिन कर्मों का बंध किया गया

है, उनका विपाक व्यक्ति को भोगना ही होता है। जैन कर्मसिद्धान्त में कर्मों को दो भागों में बांटा गया है...१. नियतविपाकी और २. अनियतविपाकी। कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जिनका जिस फलविपाक को लेकर बंध किया गया है, उसी रूप में उनके फल के विपाक का वेदन करना होता है, किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं, जिनके विपाक का वेदन उसी रूप में नहीं करना होता, जिस रूप में उनका बंध होता है। जैन कर्मसिद्धान्त मानता है कि जो कर्म तीव्र कषायों से उद्भूत होते हैं उनका बंध भी प्रगाढ़ होता है और विपाक भी नियत होता है। पारम्परिक शब्दावली में उन्हें निकाचित कहते हैं। इसके विपरीत जिन कर्मों के सम्पादन के पीछे कषायभाव अल्प होता है, उनका बंधन शिथिल होता है और उनके विपाक का संवेदन आवश्यक नहीं होता है। वे तप एवं पश्चाताप के द्वारा अपना फल विपाक दिये बिना ही समाप्त हो जाते हैं।

वैयक्तिक दृष्टि से सभी आत्माओं में कर्मविपाक परिवर्तन करने की क्षमता नहीं होती है। केवल वे ही व्यक्ति जो आध्यात्मिक ऊंचाई पर स्थित हैं, कर्मविपाक में परिवर्तन कर सकते हैं, पुन: वे भी उन्हीं कर्मों के विपाक को अन्यथा कर सकते हैं, जिनका बंध अनियतविपाकी कर्म के रूप में हुआ है। नियतविपाकी कर्मों का भोग तो अनिवार्य है। इस प्रकार जैन कर्मसिद्धान्त अपने को नियतिवाद और यदृच्छावाद दोनों की एकांगिकता से बचाता है।

वस्तुत: कर्मसिद्धान्त में कर्मविपाक की नियतता और अनियतता की विरोधी धारणाओं के समन्वय के अभाव में नैतिक जीवन की यथार्थ व्याख्या सम्भव नहीं होती है। यदि एकान्त रूप से कर्मविपाक की नियतता को स्वीकार किया जाता है तो नैतिक आचरण का चाहे निषेधात्मक रूप में कुछ सामाजिक मूल्य बना रहे, लेकिन उसका विधायक मूल्य तो पूर्णतया समाप्त हो जाता है क्योंकि नियत भविष्य के बदलने की सामर्थ्य नैतिक जीवन में नहीं रह पाती है। दूसरे, यदि कर्मों को पूर्णत: अनियतविपाकी माना जावे तो नैतिक व्यवस्था का ही कोई अर्थ नहीं रह जाता है। विपाक की पूर्णनियतता मानने पर निर्धारणवाद और विपाक की पूर्ण अनियतता मानने पर अनिर्धारणवाद की सम्भावना होगी, लेकिन दोनों ही धारणाएं एकान्तिक रूप में नैतिक जीवन की समुचित व्याख्या कर पाने में असमर्थ है। अत: कर्मविपाक की आंशिक नियतता ही एक तर्कसंगत दृष्टिकोण है, जो नैतिक दर्शन की सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत करता है।

कर्म की विभिन्न अवस्थाएं[२५]

जैन दर्शन में कर्मों की विभिन्न अवस्थाओं पर चिन्तन हुआ है और बताया गया है कि कर्म के बन्ध और विपाक (उदय) के बीच कौन-कौन सी अवस्थायें घटित हो सकती हैं, पुन: वे किस सीमा तक आत्मस्वातंत्र्य को कुण्ठित करती हैं अथवा किसी सीमा तक आत्मस्वातन्त्र्य को अभिव्यक्त करती हैं, इसकी चर्चा भी की गई है। ये अवस्थाएं निम्न हैं---

१. बंध : कषाय एवं योग के फलस्वरूप कर्मवर्गणा के पुद्गलों का आत्मप्रदेशों से जो सम्बन्ध स्थापित होता है, उसे बंध कहते हैं।

२. संक्रमण : एक कर्म के अनेक अवान्तर भेद होते हैं। जैन कर्मसिद्धान्त के अनुसार कर्म का एक भेद अपने सजातीय दूसरे भेद में बदल सकता है। अवान्तर कर्म-प्रकृतियों का यह अदल-बदल संक्रमण कहलाता है। संक्रमण में आत्मा पूर्वकर्म प्रकृति का नवीन कर्मप्रकृति का बंध करते समय रूपान्तरण करता है। उदाहरण के रूप में पूर्ववद्ध दुःखद संवेदन रूप असातावेदनीय कर्म का नवीन सातावेदनीय कर्म का बंध करते समय सातावेदनीय कर्म के रूप में संक्रमण किया जा सकता है। संक्रमण की यह क्षमता आत्मा की पवित्रता के साथ ही बढ़ती जाती है। जो आत्मा जितनी पवित्र होती है, उसमें संक्रमण की क्षमता भी उतनी ही अधिक होती है। आत्मा में कर्मप्रकृतियों के संक्रमण की सामर्थ्य होना यह बताता है जहां अपवित्र आत्माएं परिस्थितियों की दास होती हैं, वहीं पवित्र

आत्मा परिस्थितियों की स्वामी होती है। यहां यह भी ज्ञातव्य है कि प्रथम तो मूल कर्मप्रकृतियों का एक दूसरे में कभी भी संक्रमण नहीं होता है जैसे ज्ञानावरण दर्शनावरण में नहीं बदलता है। मात्र यही नहीं, दर्शनमोह और चरित्रमोह कर्म का तथा आयुष्य कर्म की अवान्तर प्रकृतियों का भी परस्पर संक्रमण नहीं होता है।

३. उद्वर्तना : नवीन बन्ध करते समय आत्मा पूर्वबद्ध कर्मों की काल मर्यादा (स्थिति) और तीव्रता (अनुभाग) को बढ़ा भी सकता है। काल मर्यादा और तीव्रता को बढ़ाने की यह प्रक्रिया उद्वर्तना कहलाती है।

४. अपवर्तना : नवीन बन्ध करते समय पूर्वबद्ध कर्मों की काल मर्यादा (स्थिति) तीव्रता (अनुभाग) को कम भी किया जा सकता है, इसे अपवर्तना कहते हैं।

५. सत्ता : कर्म के बद्ध होने के पश्चात् तथा उसके विपाक से पूर्व बीच की अवस्था सत्ता कहलाती है। सत्ता काल में कर्म अस्तित्व में तो रहता है, किन्तु वह सक्रिय नहीं होता।

६. उदय : जब कर्म अपना फल देना प्रारम्भ करते हैं तो वह अवस्था उदय कहलाती है। उदय दो प्रकार का माना गया है... १. विपाकोदय और २. प्रदेशोदय कर्म का अपना अपने फल की चेतन अनुभूति कराये बिना ही निर्जारित होना प्रदेशोदय कहलाता है। जैसे अचेतन अवस्था में शल्य क्रिया की वेदना की अनुभूति नहीं होती, यद्यपि वेदना की घटना घटित होती है। इसी प्रकार बिना अपनी फलानुभूति करवाये जो कर्म परमाणु आत्मा से निर्जरित होते हैं, उनका उदय प्रदेशोदय होता है। इसके विपरीत जिन कर्मों की अपने विपाक के समय फलानुभूति होती है उनका उदय विपाकोदय कहलाता है। ज्ञातव्य है कि विपाकोदय में प्रदेशोदय अनिवार्य रूप से होता है, लेकिन प्रदेशोदय में विपाकोदय हो, यह आवश्यक नहीं है।

७. उदीरणा : अपने नियतकाल से पूर्व ही पूर्वबद्ध कर्मों को प्रयास पूर्वक उदय में लाकर उनके फलों को भोगना उदीरणा है। ज्ञातव्य है कि जिस कर्मप्रकृति का उदय या भोग चल रहा हो, उसकी सजातीय कर्मप्रकृति की ही उदीरणा सम्भव होती है।

८. उपशमन : उदय में आ रहे कर्मों के फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिए दबा देना अथवा काल विशेष के लिए उन्हें फल देने से अक्षम बना देना उपशमन है। उपशमन में कर्म की सत्ता समाप्त नहीं होती, मात्र उसे काल विशेष के लिए फल देने में अक्षम बना दिया जाता है। इसमें कर्म राख से दबी अग्नि के समान निष्क्रिय होकर सत्ता में बने रहते हैं।

९. निधत्ति : कर्म की वह अवस्था निधत्ति है, जिससे कर्म न तो अपने अवान्तर भेदों में रूपान्तरित या संक्रमित हो सकते हैं और न अपना फल प्रदान कर सकते हैं। लेकिन कर्मों की समय-मर्यादा और विपाक-तीव्रता (परिमाण) को कम अधिक किया जा सकता है अर्थात् इस अवस्था में उत्कर्षण और अपकर्षण सम्भव है, संक्रमण नहीं।

१०. निकाचना : कर्मों के बन्धन का इतना प्रगाढ़ होना कि उनकी काल-मर्यादा एवं तीव्रता में कोई भी परिवर्तन न किया जा सके, न समय से पूर्व उनका भोग ही किया जा सके, निकाचना कहलाता है। इस दशा में कर्म का जिस रूप में बन्धन हुआ होता है, उसको उसी रूप में अनिवार्यतया भोगना पड़ता है।

इस प्रकार जैन कर्मसिद्धान्त में कर्म के फल विपाक की नियतता और अनियतता को सम्यक् प्रकार से समन्वित करने का प्रयास किया गया है तथा यह बताया गया है कि जैसे-जैसे आत्मा कषायों से मुक्त होकर आध्यात्मिक विकास की दिशा में बढ़ता है, वह कर्म के फल विपाक की नियतता को समाप्त करने में सक्षम होता जाता है। कर्म कितना बलवान होगा यह बात मात्र कर्म के बल पर निर्भर नहीं है, अपितु आत्मा की पवित्रता पर भी निर्भर है। इन अवस्थाओं का चित्रण

यह भी बताता है कि कर्मों का विपाक या उदय एक अलग स्थिति है तथा उनसे नवीन कर्मो का बन्ध होना या न होना यह एक अलग स्थिति है। कषाययुक्त प्रमत्त आत्मा कर्मो के उदय में नवीन कर्मों का बन्ध करता है, इसके विपरीत कषाय-मुक्त अप्रमत्त आत्मा कर्मो के विपाक में नवीन कर्मों का बन्ध नहीं करता है, मात्र पूर्वबद्ध कर्मों को निर्जरित करता है।

कर्म का शुभत्व और अशुभत्व[२६]

कर्मों को सामान्यतया शुद्ध (अकर्म), शुभ और अशुभ, ऐसे तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से इन्हें निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है :-

कर्म	जैन	बौद्ध	गीता	पाश्चात्य
१. शुद्ध	ईर्यापथिककर्म	अव्यक्तकर्म	अकर्म	अनैतिक कर्म
२. शुभ	पुण्यकर्म	कुशल (शुक्ल) कर्म	कर्म	नैतिक कर्म
३. अशुभ	पाप कर्म	अकुशल (कृष्ण) कर्म	विकर्म	अनैतिक कर्म

जैन दर्शन में कर्म के बन्धक होने के आधार पर मुख्य रूप से दो विभाग किये गये... १. ईर्यापथिक और २. साम्परायिक। ईर्यापथिक कर्म अबन्धक होता है, जबकि साम्परायिक कर्म बन्ध करते हैं। ये साम्परायिक कर्म दो प्रकार के होते हैं... १. शुभ (पुण्य) और २ अशुभ (पाप)। आगे हम इन्हीं की चर्चा करेंगे।

अशुभ या पाप कर्म

जैन आचार्यों ने पाप की परिभाषा दो प्रकार से की है। वैयक्तिक सन्दर्भ में जो आत्मा को बन्धन में डाले, जिसके कारण आत्मा का पतन हो, जो आत्मा के आनन्द का शोषण करे और आत्मशक्तियों का क्षय करे, वह पाप है। सामाजिक सन्दर्भ में जो परपीड़ा या दूसरों के दुःख का कारण है, वह पाप है (पापाय परपीड़नं)। वस्तुतः जिस विचार एवं आचार से अपना और पर का अहित हो और जिससे अनिष्ट फल की प्राप्ति हो, वह पाप है। नैतिक जीवन की दृष्टि से वे सभी कर्म जो स्वार्थ, घृणा या अज्ञान के कारण दूसरे का अहित करने की दृष्टि से किये जाते हैं, पाप कर्म हैं। इतना ही नहीं, सभी प्रकार के दुर्विचार और दुर्भावनाएं भी पाप कर्म हैं।

पाप या अकुशल कर्मो का वर्गीकरण

जैन दृष्टिकोण— जैन दार्शनिक के अनुसार पाप कर्म १८ प्रकार के हैं— १. प्राणातिपात (हिंसा), २. मृषावाद (असत्य भाषण), ३. अदत्तादान (चौर्य कर्म), ४. मैथुन (काम-विकार), ५. परिग्रह (ममत्व, मूर्छा, तृष्णा या संचयवृत्ति), ६. क्रोध (गुस्सा), ७ मान (अहंकार), ८. माया (कपट, छल, षड़यंत्र और कूटनीति), ९. लोभ (संचय या संग्रह की वृत्ति), १०. राग (आसक्ति), ११. द्वेष (घृणा, तिरस्कार, ईर्ष्या आदि), १२. क्लेश (संघर्ष, कलह, लडाई, झगडा आदि), १३. अभ्याख्यान (दोषारोपण), १४. पिशुनता (चुगली), १५. पर-परिवाद (परनिन्दा), १६. रति-अरति (हर्ष और शोक), १७. माया-मृषा (कपट सहित असत्य भाषण), १८. मिथ्यादर्शनशल्य (अयथार्थ जीवनदृष्टि)।

पुण्य (कुशल कर्म)

पुण्य वह है जिसके कारण सामाजिक एवं भौतिक स्तर पर समत्व की स्थापना होती है। मन, शरीर और बाह्य परिवेश में सन्तुलन बनाना यह पुण्य का कार्य है। पुण्य क्या है इसकी व्याख्या में तत्त्वार्थसूत्रकार कहते हैं- शुभास्रव पुण्य है (६/४)। लेकिन पुण्य मात्र आस्रव नहीं है, वह बन्ध और विपाक भी है। वह हेय ही नहीं है, उपादेय भी है। अतः अनेक आचार्यों ने इसकी

व्याख्या दूसरे प्रकार से की है। आचार्य हेमचन्द्र योगशास्त्र (४/१०७) में पुण्य की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि पुण्य (अशुभ) कर्मों का लाघव है और शुभ कर्मों का उदय है। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र की दृष्टि में पुण्य अशुभ (पाप) कर्मों की अल्पता और शुभ कर्मों के उदय के फलस्वरूप प्राप्त प्रशस्त अवस्था का द्योतक है। पुण्य के निर्वाण की उपलब्धि में सहायक स्वरूप की व्याख्या आचार्य अभयदेव की स्थानांगसूत्र की टीका (१/११-१२) में मिलती है। आचार्य अभयदेव कहते हैं कि पुण्य वह है जो आत्मा को पवित्र करता है अथवा पवित्रता की ओर ले जाता है। आचार्य की दृष्टि में पुण्य आध्यात्मिक साधना में सहायक तत्व है। मुनि सुशील कुमार जैन धर्म पृ. ८४ पर लिखते हैं, "पुण्य मोक्षार्थियों की नौका के लिए अनुकूल वायु है जो नौका को भवसागर से शीघ्र पार करा देती है"। जैन कवि बनारसीदासजी समयसार नाटक उत्थानिका (२८) में कहते हैं कि "जिससे भावों की विशुद्धि हो, जिससे आत्मा आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ता है और जिससे इस संसार में भौतिक समृद्धि और सुख मिलता है, वही पुण्य है"।

जैन तत्त्वज्ञान के अनुसार, पुण्य-कर्म वे शुभ पुद्‌गल परमाणु हैं जो शुभवृत्तियों एवं क्रियाओं के कारण आत्मा की ओर आकर्षित हो बन्ध करते हैं और अपने विपाक के अवसर पर शुभ अध्यवसायों, शुभ विचारों एवं क्रियाओं की ओर प्रेरित करते हैं तथा आध्यात्मिक, मानसिक एवं भौतिक अनुकूलताओं के संयोग प्रस्तुत कर देते हैं। आत्मा की वे मनोदशाएं एवं क्रियाएं भी पुण्य कहलाती हैं जो शुभ पुद्‌गल परमाणु को आकर्षित करती हैं। साथ ही दूसरी ओर वे पुद्‌गल-परमाणु जो इन शुभ वृत्तियों एवं क्रियाओं को प्रेरित करते हैं और अपने प्रभाव से आरोग्य, सम्पत्ति एवं सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान एवं संयम के अवसर उपस्थित करते हैं, पुण्य कहे जाते हैं। शुभ मनोवृत्तियां भावपुण्य हैं और शुभ पुद्‌गल-परमाणु द्रव्यपुण्य है।

पुण्य या कुशल कर्मों का वर्गीकरण

भगवतीसूत्र (७/१०/१२१) में अनुकम्पा, सेवा, परोपकार आदि शुभ-प्रवृत्तियों को पुण्योपार्जन का कारण कहा गया है। स्थानांगसूत्र स्थान ९ में नौ प्रकार के पुण्य निरूपित हैं—

१. अन्नपुण्य- भोजनादि देकर क्षुधार्त की क्षुधा-निवृत्ति करना।
२. पानपुण्य- तृषा (प्यास) से पीड़ित व्यक्ति को पानी पिलाना।
३. लयनपुण्य- निवास के लिए स्थान देना जैसे धर्मशालाएं आदि बनवाना।
४. शयनपुण्य- शय्या, बिछौना आदि देना।
५. वस्त्रपुण्य- वस्त्र का दान देना।
६. मनपुण्य- मन से शुभ विचार करना। जगत् के मंगल की शुभकामना करना।
७. वचनपुण्य- प्रशस्त एवं संतोष देनेवाली वाणी का प्रयोग करना।
८. कायपुण्य- रोगी, दु:खित एवं पूज्यजनों की सेवा करना।
९. नमस्कारपुण्य- गुरुजनों के प्रति आदर प्रकट करने के लिए उनका अभिवादन करना।

पुण्य और पाप (शुभ और अशुभ) की कसौटी

शुभाशुभता या पुण्य-पाप के निर्णय के दो आधार हो सकते हैं- (१) कर्म का बाह्य स्वरूप अर्थात् समाज पर उसका प्रभाव और (२) कर्त्ता का अभिप्राय। इन दोनों में कौन-सा आधार यथार्थ है, यह विवाद का विषय रहा है। गीता और बौद्ध-दर्शन में कर्त्ता के अभिप्राय को ही कृत्यों की शुभाशुभता का सच्चा आधार माना गया। गीता (१८/१७) स्पष्टरूप से कहती है कि जिसमें कर्तृत्व भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्लिप्त है, वह इन सब लोगों को मार डाले तो भी यह समझना चाहिए कि उसने न तो किसी को मारा है और न वह उस कर्म से बन्धन को प्राप्त होता है। धम्मपद (२४९) में बुद्ध-वचन भी ऐसा ही है (नैष्कर्म्यस्थिति को प्राप्त) ब्राह्मण माता-पिता को,

दो क्षत्रिय राजाओं को एवं प्रजासहित राष्ट्र को मारकर भी निष्पाप होकर जाता है। बौद्ध दर्शन में कर्त्ता के अभिप्राय को ही पुण्य-पाप का आधार माना गया है। इसका प्रमाण सूत्र-कृतांगसूत्र के आर्द्रक सम्वाद में भी मिलता है। जहां तक जैन मान्यता का प्रश्न है, विद्वानों के अनुसार उसमें भी कर्त्ता के अभिप्राय को ही कर्म की शुभाशुभता का आधार माना गया है। मुनि सुशीलकुमारजी जैन धर्म पृ. १६० पर लिखते हैं, 'शुभ-अशुभ कर्म के बंध का मुख्य आधार मनोवृत्तियां ही हैं। एक डॉक्टर किसी को पीड़ा पहुंचाने के लिए उसका व्रण चीरता है। उससे चाहे रोगी को लाभ ही हो जाये परन्तु डॉक्टर तो पाप-कर्म के वन्ध का ही भागी होगा। इसके विपरीत वही डॉक्टर करुणा से प्रेरित होकर व्रण चीरता है और कदाचित् उससे रोगी की मृत्यु हो जाती है, तो भी डॉक्टर अपनी शुभ-भावना के कारण पुण्य का वन्ध करता है। पंडित सुखलालजी भी यही कहते हैं, पुण्य-बंध और पाप-बंध की सच्ची कसौटी केवल ऊपरी क्रिया नहीं है, किन्तु उसकी यथार्थ कसौटी कर्त्ता का आशय ही है (दर्शन और चिन्तन खण्ड २ पृ. २२६)।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैन धर्म में भी कर्मों की शुभाशुभता के निर्णय का आधार मनोवृत्तियां ही हैं, फिर भी उसमें कर्म का बाह्य-स्वरूप उपेक्षित नहीं है। निश्चयदृष्टि से तो मनोवृत्तियां ही कर्मों की शुभाशुभता की निर्णायक हैं, फिर भी व्यवहारदृष्टि से कर्म का बाह्य स्वरूप भी शुभाशुभता का निश्चय करता है। सूत्रकृतांग (२।६) में आर्द्रककुमार बौद्धों की एकांगी धारणा का निरसन करते हुए कहते हैं कि जो मांस खाता हो- चाहे न जानते हुए भी खाता हो- तो भी उसको पाप लगता ही है। हम जानकर नहीं खाते, इसलिए दोष (पाप) नहीं लगता, ऐसा कहना असत्य नहीं तो क्या है? इससे स्पष्ट है कि जैन दृष्टि में मनोवृत्ति के साथ ही कर्मो का बाह्य-स्वरूप भी शुभाशुभता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वास्तव में सामाजिक दृष्टि या लोक-व्यवहार में तो यही प्रमुख निर्णायक होता है। सामाजिक न्याय में तो कर्म का बाह्य स्वरूप ही उसकी शुभाशुभता का निश्चय करता है, क्योंकि आन्तरिक वृत्ति को व्यक्ति स्वयं जान सकता है, दूसरा नहीं। जैन दृष्टि एकांगी नहीं है, वह समन्वयवादी और सापेक्षवादी है। वह व्यक्ति-सापेक्ष होकर मनोवृत्ति को कर्मों की शुभाशुभता का निर्णायक मानती है और समाज-सापेक्ष होकर कर्मो के बाह्य स्वरूप पर उनकी शुभाशुभता का निश्चय करती है। उसमें द्रव्य (बाह्य) और भाव (आंतरिक) दोनों का मूल्य है। योग (बाह्य क्रिया) और भाव (मनोवृत्ति) दोनों ही बन्धन के कारण माने गये हैं, यद्यपि उसमें मनोवृत्ति ही प्रमुख कारण है। वह वृत्ति और क्रिया में विभेद नहीं मानती। उसकी समन्वयवादी दृष्टि में मनोवृत्ति शुभ हो और क्रिया अशुभ हो, यह सम्भव नहीं। मन में शुभ भाव हो तो पापाचरण सम्भव नहीं है। वह एक समालोचक दृष्टि से कहती है कि मन में सत्य को समझते हुए भी बाहर से दूसरी बातें (असत्याचरण) करना क्या संयमी पुरुषों का लक्षण है? उसकी दृष्टि में सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर आत्मवंचना है। मानसिक हेतु पर ही जोर देनेवाली धारणा का निरसन करते हुए सूत्रकृतांग (१/१/२४-२६) में कहा गया है, "कर्म-बन्धन का सत्य ज्ञान नहीं बताने वाले इस वाद को मानने वाले कितने ही लोग संसार में फंसते रहते हैं कि पाप लगने के तीन स्थान हैं- स्वयं करने से, दूसरे से कराने से, दूसरों के कार्य का अनुमोदन करने से। परन्तु यदि हृदय पाप-मुक्त हो तो इन तीनों के करने पर भी निर्वाण अवश्य मिले। यह वाद अज्ञान है, मन से पाप को पाप समझते हुए जो दोष करता है, उसे निर्दोष नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह संयम (वासना-निग्रह) में शिथिल है। परन्तु भोगासक्त लोग उक्त बातें मानकर पाप में पड़े हैं।

पाश्चात्य आचारदर्शन में भी सुखवादी दार्शनिक कर्म की फलश्रुति के आधार पर उसकी शुभाशुभता का निश्चय करते हैं, जब कि मार्टिन्यू कर्मप्रेरक से उसकी शुभाशुभता का निश्चय करता है। जैन दर्शन के अनुसार इन दोनों पाश्चात्य विचारधाराओं में अपूर्ण सत्य है- एक का आधार लोकदृष्टि है तथा दूसरी का आधार परमार्थ-दृष्टि पर स्थित दृष्टि है। एक व्यावहारिक सत्य है और दूसरा पारमार्थिक सत्य। नैतिकता व्यवहार से परमार्थ की ओर प्रयाण है, अतः उसमें दोनों का ही मूल्य है।

कर्ता के अभिप्राय को शुभाशुभता के निर्णय का आधार मानें, या कर्म के समाज पर होनेवाले परिणाम को, दोनों स्थितियों में किस प्रकार का कर्म पुण्य-कर्म या उचित कर्म कहा जायेगा और किस प्रकार का कर्म पाप-कर्म या अनुचित कर्म कहा जायेगा, इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। सामान्यतया भारतीय चिन्तन में पुण्य पाप की विचारणा के सन्दर्भ में सामाजिक दृष्टि ही प्रमुख है। जहां कर्म-अकर्म का विचार व्यक्ति-सापेक्ष है, वहां पुण्य-पाप का विचार समाज-सापेक्ष है। जब हम कर्म-अकर्म या कर्मबन्ध का विचार करते हैं, तो वैयक्तिक कर्म-प्रेरक या वैयक्तिक चेतना की विशुद्धता (वीतरागता) ही हमारे निर्णय का आधार बनती है। लेकिन जब हम पुण्य-पाप का विचार करते हैं तो समाजकल्याण या लोकहित ही हमारे निर्णय का आधार होता है। वस्तुतः भारतीय चिन्तन में जीवनादर्श तो शुभाशुभत्व की सीमा से ऊपर उठना है। उस सन्दर्भ में वीतराग या अनासक्त जीवनदृष्टि का निर्माण ही व्यक्ति का परम साध्य माना गया है और वही कर्म के बन्धन या अबन्धन का आधार है, लेकिन शुभ और अशुभ दोनों में ही राग तो होता ही है, राग के अभाव में तो कर्म शुभाशुभ से ऊपर उठकर अतिनैतिक (शुद्ध) होगा। शुभाशुभ कर्मों में प्रमुखता राग की उपस्थिति या अनुपस्थिति की नहीं, वरन् उसकी प्रशस्तता या अप्रशस्तता की है। प्रशस्त-राग शुभ या पुण्यबन्ध का कारण माना गया है और अप्रशस्त-राग अशुभ या पापबन्ध का कारण है। राग की प्रशस्तता उसमें द्वेष की कमी के आधार पर निर्भर करती है। यद्यपि राग और द्वेष साथ-साथ रहते हैं, तथापि जिस राग के साथ द्वेष की मात्रा जितनी अल्प और मन्द होगी वह राग उतना प्रशस्त होगा और जिस राग के साथ द्वेष की मात्रा और तीव्रता जितनी अधिक होगी, राग उतना ही अप्रशस्त होगा।

द्वेषविहीन राग या प्रशंस्त राग ही निष्काम प्रेम कहा जाता है। उस प्रेम से परार्थ या परोपकारवृत्ति का उदय होता है जो शुभ का सृजन करती है। उसी से लोकमंगलकारी प्रवृत्तियों के रूप में पुण्य-कर्म निस्सृत होते हैं, जबकि द्वेषयुक्त अप्रशस्त राग ही घृणा को जन्म देकर स्वार्थ-वृत्ति का विकास करता है। उससे अशुभ, अमंगलकारी पापकर्म निस्सृत होते हैं। संक्षेप में जिस कर्म के पीछे प्रेम और परार्थ होता है वह पुण्य कर्म है और जिस कर्म के पीछे घृणा और स्वार्थ होता है वह पाप कर्म है।

जैन आचारदर्शन पुण्य कर्मों के वर्गीकरण में जिन तथ्यों पर अधिक जोर देता है वे सभी समाज-सापेक्ष हैं। वस्तुतः शुभ-अशुभ के वर्गीकरण में सामाजिक दृष्टि ही प्रधान है। भारतीय चिन्तकों की दृष्टि में पुण्य और पाप की समग्र चिन्तना का सार निम्न कथन में समाया हुआ है कि 'परोपकार पुण्य है और परपीड़न पाप है'। जैन विचारकों ने पुण्य-बन्ध के दान, सेवा आदि जिन कारणों का उल्लेख किया है उनका प्रमुख सम्बन्ध सामाजिक कल्याण या लोक-मंगल से है। इसी प्रकार पाप के रूप में जिन तथ्यों का उल्लेख किया गया है वे सभी लोक-अमंगलकारी तत्व हैं। इस प्रकार जहां तक शुभ-अशुभ या पुण्य पाप के वर्गीकरण का प्रश्न है, हमें सामाजिक सन्दर्भ में उसे देखना होगा, यद्यपि वन्धन की दृष्टि से विचार करते समय कर्त्ता के आशय को भुलाया नहीं जा सकता।

सामाजिक जीवन में आचरण के शुभत्व का आधार

यह सत्य है कि कर्म के शुभत्व और अशुभत्व का निर्णय अन्य प्राणियों या समाज के प्रति किये गये व्यवहार अथवा दृष्टिकोण के सन्दर्भ में होता है। लेकिन अन्य प्राणियों के प्रति हमारा कौन-सा व्यवहार या दृष्टिकोण शुभ होगा और कौन-सा अशुभ होगा, इनका निर्णय किस आधार पर किया जाये? भारतीय चिन्तन ने इस सन्दर्भ में जो कसौटी प्रदान की है, वह यही है कि जैसा व्यवहार हम अपने लिए प्रतिकूल समझते हैं वैसा आचरण दूसरे के प्रति नहीं करना और जैसा

व्यवहार हमें अपने लिए अनुकूल लगता है वैसा व्यवहार दूसरों के प्रति नहीं करना अशुभाचरण है। भारतीय ऋषियों का यही संदेश है। संक्षेप में सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् दृष्टि ही व्यवहार के शुभत्व का प्रमाण है।

जैन दर्शन के अनुसार जिस व्यक्ति में संसार के सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् दृष्टि है, वही नैतिक कर्मों का सृष्टा है। दशवैकालिक सूत्र (४/९) में कहा गया है कि समस्त प्राणियों को जो अपने समान समझता है और जिसका सभी के प्रति समभाव है, वह पाप-कर्म का बन्ध नहीं करता। सूत्रकृतांग (२/२/४) के अनुसार भी धर्म-अधर्म (शुभाशुभत्व) के निर्णय में अपने समान दूसरे को समझना चाहिए।

शुभ और अशुभ से शुद्ध की ओर

जैन विचारणा में शुभ-अशुभ अथवा मंगल-अमंगल की वास्तविकता स्वीकार की गई है। उत्तराध्ययनसूत्र (२८/१४) के अनुसार तत्व नौ हैं, जिनमें पुण्य और पाप स्वतंत्र तत्व हैं। तत्वार्थसूत्रकार उमास्वाति ने जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये सात तत्व गिनाये हैं, इनमें पुण्य और पाप को नहीं गिनाया है (तत्वार्थ १/४)। लेकिन यह विवाद महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि जो परम्परा उन्हें स्वतंत्र तत्व नहीं मानती है, वह भी उनको आस्रव तत्व के अन्तर्गत मान लेती है। यद्यपि पुण्य और पाप मात्र आस्रव नहीं हैं, वरन् उनका बंध भी होता है और विपाक भी होता है। अतः आस्रव के शुभास्रव और अशुभास्रव ये दो विभाग करने से काम नहीं बनता, बल्कि बंध और विपाक में भी दो-दो भेद करने होंगे। इस कठिनाई से बचने के लिए ही पाप एवं पुण्य को स्वतंत्र तत्वों के रूप में गिन लिया गया है।

फिर भी जैन विचारणा निर्वाण-मार्ग के साधक के लिए दोनों को हेय और त्याज्य मानती है, क्योंकि दोनों ही बन्धन के कारण हैं। वस्तुतः नैतिक जीवन की पूर्णता शुभाशुभ या पुण्य-पाप से ऊपर उठ जाने में है। शुभ (पुण्य) और अशुभ (पाप) का भेद जब तक बना रहता है, नैतिक पूर्णता नहीं आती। अशुभ पर पूर्ण विजय के साथ ही व्यक्ति शुभ (पुण्य) से भी ऊपर उठकर शुद्ध दशा में स्थित हो जाता है।

ऋषिभासित सूत्र (९/२) में ऋषि कहता है, पूर्वकृत पुण्य और पाप संसार संतति के मूल हैं। आचार्य कुन्दकुन्द पुण्य-पाप दोनों को बन्धन का कारण कहकर दोनों के बन्धकत्व का अन्तर भी स्पष्ट कर देते हैं। समयसार (१४५-१४६) में वे कहते हैं कि अशुभ कर्म पाप (कुशील) और शुभ कर्म पुण्य (सुशील) कहे जाते हैं, फिर भी पुण्य कर्म संसार (बन्धन) का कारण है जिस प्रकार स्वर्ण की बेड़ी भी लौह-बेड़ी के समान ही व्यक्ति को बन्धन में रखती है, उसी प्रकार जीवकृत सभी शुभाशुभ कर्म भी बन्धन के कारण हैं। फिर भी आचार्य पुण्य को स्वर्ण-बेड़ी कहकर उसमें पाप से किञ्चित् श्रेष्ठता सिद्ध कर देते हैं। आचार्य अमृतचन्द्र का कहना है कि पारमार्थिक दृष्टि से पुण्य और पाप दोनों में भेद नहीं किया जा सकता, क्योंकि अन्ततोगत्वा दोनों ही बन्धन हैं (प्रवचनसार टीका १/७२)। यही बात पं. जयचन्दजी भी कहते हैं—

पुण्य पाप दोऊ करम, बंधरूप दुइ मानि।
शुद्ध आत्मा जिन लह्यो, नमूं चरन हित जानि॥

जैनाचार्यों ने पुण्य को निर्वाण की दृष्टि से हेय मानते हुए भी उसे निर्वाण का सहायक तत्व स्वीकार किया है। निर्वाण प्राप्त करने के लिए अन्ततोगत्वा पुण्य को त्यागना ही होता है, फिर भी वह निर्वाण में ठीक उसी प्रकार सहायक है जैसे साबुन वस्त्र के मैल को साफ करने में सहायक है। शुद्ध वस्त्र के लिए साबुन का लगा होना अनावश्यक है उसे भी अलग करना होता है, वैसे ही निर्वाण या शुद्धात्म-दशा में पुण्य का होना भी अनावश्यक है, उसे भी त्यागना होता है। किन्तु

प्रकार साबुन मैल को दूर करता है और मैल छूटने पर स्वयं अलग हो जाता है, वैसे ही पुण्य भी पापरूप मल को अलग करने में सहायक होता है और उसके अलग हो जाने पर स्वयं भी अलग हो जाता है। अत: व्यक्ति जब अशुभ (पाप) कर्म से ऊपर उठ जाता है, तब उसका शुभ कर्म भी शुद्ध कर्म बन जाता है। द्वेष पर पूर्ण विजय पा जाने पर राग भी नहीं रहता है, अत: राग-द्वेष के अभाव में उससे जो कर्म निस्सृत होते हैं, वे शुद्ध (ईर्यापथिक) होते हैं।

ईर्यापथिककर्म और साम्परायिककर्म

ईर्यापथिक कर्म वे कर्म हैं, जो आत्मा को बन्धन में नहीं डालते, इन्हें अकर्म भी कहा गया है। सूत्रकृतांग में अप्रमाद को अकर्म कहा गया है। वस्तुत: जो कर्म राग-द्वेष से रहित मात्र कर्त्तव्य-बुद्धि से किये जाते हैं, वे ईर्यापथिक कर्म होते हैं। इसके विपरीत जिन कर्मों के पीछे राग-द्वेष और कषाय होते हैं, वे साम्परायिक होते हैं और आत्मा को बन्धन में डालते हैं। सम्पराय राग या कषाय को कहते हैं। साम्परायिक कर्म ही जब प्रशस्त राग भाव आदि से युक्त होते हैं, तो पुण्य कर्म बन जाते हैं और जब उनके पीछे द्वेष होता है तो वे पाप कर्म की कोटि में चले जाते हैं।[२७]

बन्धन के कारणों में मिथ्यात्व और कषाय की प्रमुखता का प्रश्न

जैन कर्म-सिद्धान्त के उद्भव व विकास की चर्चा करते हुए हमने बन्धन के पांच सामान्य कारणों का उल्लेख किया था। वैसे जैन ग्रंथों में भिन्न-भिन्न कर्मों के बन्धन के भिन्न-भिन्न कारणों की विस्तृत चर्चा भी उपलब्ध होती है। किन्तु सामान्य रूप से बन्धन के ५ कारण माने गए हैं—

१. मिथ्यात्व २. अविरति ३. प्रमाद ४.कषाय और ५ योग

इन पांच कारणों में योग को अर्थात् मानसिक, वाचिक व शारीरिक क्रियाओं को बन्धन का कारण कहा गया है, किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि यदि पूर्व के चार का अभाव हो, तो मात्र योग से कर्म वर्गणाओं का आश्रव होकर, जो बंध तो है वह ईर्यापथिक बन्ध कहलाता है। उसके सन्दर्भ में कहा गया है उसका प्रथम समय में बन्ध होता है और दूसरे समय में निर्जरा हो जाती है। ईर्यापथिक बन्ध ठीक वैसा ही है, जैसे चलते समय शुभ आर्द्रता से रहित कपड़े पर गिरे हुए बालू के कण, जो गति की प्रक्रिया में ही आते हैं और फिर अलग भी हो जाते हैं। वस्तुत: यह बन्ध वास्तविक बन्ध नहीं है। अत: हम समझते हैं कि इन ५ कारणों में योग महत्वपूर्ण कारण नहीं है। यद्यपि अविरति, प्रमाद एवं कषाय को अलग-अलग कारण कहा गया है, किन्तु इनमें भी बहुत अन्तर नहीं है। जब हम प्रमाद को व्यापक अर्थ में लेते हैं तब कषायों का अन्तर्भाव प्रमाद में हो जाता है। दूसरे कषायों की उपस्थिति में ही प्रमाद सम्भव होता है, उनकी अनुपस्थिति में प्रमाद सामान्यतया तो रहता ही नहीं है और यदि रहे भी तो अति निर्बल होता है। इसी प्रकार अविरति के मूल में भी कषाय ही होते हैं। यदि हम कषाय को व्यापक अर्थ में लें तो अविरति और प्रमाद दोनों उसी में अर्न्तभावित हो जाते हैं। अत: बन्धन के दो ही प्रमुख कारण शेष रहते हैं— मिथ्यात्व और कषाय।

मिथ्यात्व एवं कषाय में कौन प्रमुख कारण है यह वर्तमान युग में एक बहुचर्चित विषय है। इस सन्दर्भ में पक्ष व प्रतिपक्ष में पर्याप्त हो गए हैं। आचार्य विद्यासागर जी एवं उनके समर्थक विद्वत् वर्ग का कहना है कि मिथ्यात्व अकिंचितकर है और कषाय ही बन्धन का प्रमुख कारण है, क्योंकि कषाय की उपस्थिति के कारण ही मिथ्यात्व होता है। कानजी स्वामी समर्थक दूसरे वर्ग का कहना है कि मिथ्यात्व ही बन्धन का प्रमुख कारण है। वस्तुत: यह विवाद अपने-अपने एकांगी दृष्टिकोणों के कारण है। कषाय और मिथ्यात्व ये दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। कषाय के अभाव में मिथ्यात्व की सत्ता नहीं रहती और न मिथ्यात्व के अभाव में कषाय ही रहते हैं। मिथ्यात्व तभी समाप्त होता है, जब अनन्तानुबन्धी कषायें समाप्त होती हैं और कषायें भी तभी समाप्त

होने लगती हैं, जब मिथ्यात्व का प्रहाण होता है। ये ताप और प्रकाश के समान सहजीवी हैं। इनमें एक के अभाव में दूसरे की सत्ता क्षीण होने लगती है। वैसे मिथ्यात्व, अज्ञान एवं मोह का पर्यायवाची है। आवेगों अर्थात् कषायों की उपस्थिति में ही मोह या मिथ्यात्व सम्भव होता है। वास्तविकता यह है कि मोह (मिथ्यात्व) से कषाय उत्पन्न होते हैं और कषायों के कारण ही मोह (मिथ्यात्व) होता है। अतः कषाय और मिथ्यात्व अन्योन्याश्रित हैं और बीज एवं वृक्ष की भांति इनमें से किसी की पूर्व कोटि निर्धारित नहीं की जा सकती है।

यदि हम इसी प्रश्न पर बौद्ध दृष्टि से विचार करें, तो उसमें सामान्यतया लोभ (राग), द्वेष एवं मोह को बन्धन का कारण कहा गया है। बौद्ध परम्परा में भी इनको परस्पर सापेक्ष ही माना गया है। मोह को बौद्ध परम्परा में अविद्या भी कहा गया है। बौद्ध विचारणा यह मानती है कि अविद्या (मोह) के कारण तृष्णा (राग) होती है और तृष्णा के कारण मोह होता है। आचार्य नरेन्द्रदेव लिखते हैं कि लोभ एवं द्वेष का हेतु मोह है, किन्तु पर्याय से लोभ व मोह भी द्वेष के हेतु हैं। बौद्ध दर्शन में भी जैन दर्शन के समान ही अविद्या और तृष्णा को अन्योन्याश्रित माना गया है और कहा गया है कि इनमें से किसी की भी पूर्व कोटि निर्धारित करना सम्भव नहीं है। सांख्य एवं योग दर्शन में क्लेश या बन्धन के ५ कारण हैं- अविद्या, अस्मिता (अहंकार), राग, द्वेष, अभिनिवेश। इनमें भी अविद्या प्रमुख है। शेष चारों उसी पर आधारित हैं। न्याय दर्शन भी जैन और बौद्धों के समान ही राग, द्वेष एवं मोह को बन्धन का कारण मानता है। इस प्रकार लगभग सभी दर्शन प्रकारान्तर से राग-द्वेष एवं मोह (मिथ्यात्व) को बन्धन का कारण मानते हैं।

बन्धन के चार प्रकारों से बन्धनों के कारण का सम्बन्ध

जैन कर्म सिद्धान्त में बन्धन के चार प्रारूप कहे गए हैं :- १. प्रकृति बंध, २. प्रदेश बंद, ३. स्थिति बंध एवं ४. अनुभाग बंध।

१. प्रकृतिबंध : बन्धन के स्वभाव का निर्धारण प्रकृति बन्ध करता है। यह यह निश्चय करता है कि कर्मवर्गणा के पुद्गल आत्मा की ज्ञान, दर्शन आदि किस शक्ति को आवृत करेंगे।

२. प्रदेशबंध : यह कर्मपरमाणुओं की आत्मा के साथ संयोजित होने वाली मात्रा का निर्धारण करता है, अतः यह मात्रात्मक होता है।

३. स्थितिबंध : कर्म-परमाणु कितने समय तक आत्मा से संयोजित रहेंगे और कब निर्जरित होंगे, इस काल मर्यादा का निश्चय स्थिति बन्ध करता है। अतः यह बन्धन की समय मर्यादा का सूचक है।

४. अनुभागबंध : कर्मों के बन्धन और विपाक की तीव्रता एवं मंदता का निश्चय करना, यह अनुभाग बन्ध का कार्य है। दूसरे शब्दों में यह बन्धन की तीव्रता या गहनता का सूचक है।

उपरोक्त चार प्रकार के बन्धनों में प्रकृति बन्ध एवं प्रदेश बन्ध का सम्बन्ध मुख्यतया योग अर्थात् कायिक, वाचिक एवं मानसिक क्रियाओं से है, जबकि बन्धन की तीव्रता (अनुभाग), समयावधि (स्थिति) का निश्चय कर्म के पीछे रही हुई कषायवृत्ति और मिथ्यात्व पर आधारित होता है। संक्षेप में योग का सम्बन्ध प्रदेश एवं प्रकृति बन्ध से है, जबकि कषाय का सम्बन्ध स्थिति एवं अनुभाग बन्ध से है।

आठ प्रकार के कर्म और उनके बन्धन के कारण[२८]

जिस रूप में कर्मपरमाणु आत्मा की विभिन्न शक्तियों के प्रकटन का अवरोध करते हैं और आत्मा का शरीर से सम्बन्ध स्थापित करते हैं- उनके अनुसार उनके विभाग किये गये हैं। जैनदर्शन के अनुसार कर्म आठ प्रकार के हैं- १. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयुष्य, ६. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय।

१. ज्ञानावरणीय कर्म : जिस प्रकार बादल सूर्य के प्रकाश को ढंक देते हैं, उसी प्रकार जो कर्मवर्गणाएं आत्मा की ज्ञानशक्ति को ढक देती हैं और ज्ञान की प्राप्ति में बाधक बनती हैं, वे ज्ञानावरणीय कर्म कहे जाते हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धन के कारण : जिन कारणों से ज्ञानावरणीय कर्म के परमाणु आत्मा से संयोजित होकर ज्ञान-शक्ति को कुंठित करते हैं, वे छः हैं -

१. प्रदोष : ज्ञानी का अवर्णवाद (निन्दा) करना एवं उसके अवगुण निकालना।

२. निह्नव : ज्ञानी का उपकार स्वीकार न करना अथवा किसी विषय को जानते हुए भी उसका अपलाप करना।

३. अन्तराय : ज्ञान की प्राप्ति में बाधक बनना, ज्ञानी एवं ज्ञान के साधन पुस्तकादि को नष्ट करना।

४. मात्सर्य : विद्वानों के प्रति द्वेष-बुद्धि रखना, ज्ञान के साधन पुस्तक आदि में अरुचि रखना।

५. असातना : ज्ञान एवं ज्ञानी पुरुषों के कथनों को स्वीकार नहीं करना, उनका समुचित विनय नहीं करना और

६. उपघात : विद्वानों के साथ मिथ्याग्रह युक्त विसंवाद करना अथवा स्वार्थवश सत्य को असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना। उपर्युक्त छः प्रकार का अनैतिक आचरण व्यक्ति की ज्ञानशक्ति के कुंठित होने का कारण है।

ज्ञानावरणीय कर्म का विपाक : विपाक की दृष्टि से ज्ञानावरणीय कर्म के कारण पांच रूपों में आत्मा की ज्ञान-शक्ति का आवरण होता है -

१. मतिज्ञानावरण - ऐन्द्रिक एवं मानसिक ज्ञान-क्षमता का अभाव,

२. श्रुतज्ञानावरण - बौद्धिक अथवा आगमज्ञान की अनुपलब्धि,

३. अवधि ज्ञानावरण - अतीन्द्रिय ज्ञान-क्षमता का अभाव,

४. मनःपर्याय ज्ञानावरण - दूसरों की मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेने की शक्ति का अभाव,।

५. केवल ज्ञानावरण - पूर्णज्ञान प्राप्त करने की क्षमता का अभाव।

कहीं-कहीं विपाक की दृष्टि से इसके अन्य १० भेद भी बताये गये हैं। १. सुनने की शक्ति का अभाव, २. सुनने से प्राप्त होने वाले ज्ञान की अनुपलब्धि, ३. दृष्टि शक्ति का अभाव, ४. दृश्यज्ञान की अनुपलब्धि, ५. गंधग्रहण करने की शक्ति का अभाव, ६. गन्ध सम्बन्धी ज्ञान की अनुपलब्धि, ७. स्वाद ग्रहण करने की शक्ति का अभाव, ८. स्वाद सम्बन्धी ज्ञान की अनुपलब्धि, ९. स्पर्श-क्षमता का अभाव और १०. स्पर्श सम्बन्धी ज्ञान की अनुपलब्धि।

२. दर्शनावरणीय कर्म

जिस प्रकार द्वारपाल राजा के दर्शन में बाधक होता है उसी प्रकार जो कर्मवर्गणाएं आत्मा की दर्शन-शक्ति में बाधक होती है, वे दर्शनावरणीय कर्म कहलाती हैं। ज्ञान से पहले होने वाला वस्तु तत्व का निर्विशेष (निर्विकल्प) बोध, जिसमें सत्ता के अतिरिक्त किसी विशेष गुण धर्म की प्राप्ति नहीं होती, दर्शन कहलाता है। दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के दर्शन-गुण को आवृत्त करता है।

दर्शनावरणीय कर्म के बन्ध के कारण : ज्ञानावरणीय कर्म के समान ही छः प्रकार के अशुभ आचरण के द्वारा दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध होता है...
(१) सम्यक् दृष्टि की निन्दा (छिद्रान्वेषण) करना अथवा उसके प्रति अकृतज्ञ होना, (२) मिथ्यात्व या असत् मान्यताओं का प्रतिपादन करना, (३) शुद्ध दृष्टिकोण की उपलब्धि में बाधक बनना, (४) सम्यक्दृष्टि के साथ मिथ्याग्रह सहित विवाद करना।

दर्शनावरणीय कर्म का विपाक : उपर्युक्त अशुभ आचरण के कारण आत्मा का दर्शन गुण

नौ प्रकार से कुंठित हो जाता है -

१. **चक्षुदर्शनावरण :** नेत्रशक्ति का अवरुद्ध हो जाना। २. **अचक्षुदर्शनावरण :** नेत्र के अतिरिक्त शेष इन्द्रियों की सामान्य अनुभवशक्ति का अवरुद्ध हो जाना। ३. **अवधिदर्शनावरण :** सीमित अतीन्द्रिय दर्शन की उपलब्धि में बाधा उपस्थित होना। ४. **केवल दर्शनावरण :** परिपूर्ण दर्शन की उपलब्धि में बाधा उपस्थित होना। ५. **निद्रा :** सामान्य निद्रा। ६. **निद्रानिद्रा :** गहरी निद्रा। ७. **प्रचला :** बैठे-बैठे आ जाने वाली निद्रा। ८. **प्रचलाप्रचला :** चलते-फिरते भी आ जाने वाली निद्रा। ९. **स्त्यानगृद्धि :** जिस निद्रा में प्राणी बड़े-बड़े बल-साध्य कार्य कर डालता है। अन्तिम दो अवस्थाएं आधुनिक मनोविज्ञान के द्विविध-व्यक्तित्व के समान मानी जा सकती हैं। उपर्युक्त पांच प्रकार की निद्राओं के कारण व्यक्ति की सहज अनुभूति की क्षमता में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

३. वेदनीय कर्म

जिसके कारण सांसारिक सुख-दुःख की संवेदना होती है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं - १. सातावेदनीय और २. असातावेदनीय। सुख रूप संवेदना का कारण सातावेदनीय और दुःख रूप संवेदना का कारण असातावेदनीय कर्म कहलाता है।

सातावेदनीय कर्म के कारण : दस प्रकार का शुभाचरण करने वाला व्यक्ति सुखद-संवेदना रूप सातावेदनीय कर्म का बन्ध करता है -- १. पृथ्वी, पानी आदि के जीवों पर अनुकम्पा करना। २. वनस्पति, वृक्ष, लतादि पर अनुकम्पा करना। ३. द्वीन्द्रिय आदि प्राणियों पर दया करना। ४. पंचेन्द्रिय पशुओं एवं मनुष्यों पर अनुकम्पा करना। ५. किसी को भी किसी प्रकार से दुःख न देना। ६. किसी भी प्राणी को चिन्ता एवं भय उत्पन्न हो ऐसा कार्य न करना। ७. किसी भी प्राणी को शोकाकुल नहीं बनाना। ८. किसी भी प्राणी को रुदन नहीं कराना। ९. किसी भी प्राणी को नहीं मारना और १०. किसी भी प्राणी को प्रताड़ित नहीं करना। कर्मग्रन्थों में सातावेदनीय कर्म के बन्धन का कारण गुरुभक्ति, क्षमा, करुणा, जगतपालन, योग-साधना, कषायविजय, दान और दृढश्रद्धा माना गया है। तत्वार्थ-सूत्रकार का भी यही दृष्टिकोण है।

सातावेदनीय कर्म का विपाक : उपर्युक्त शुभाचरण के फलस्वरूप प्राणी निम्न प्रकार की सुखद संवेदना प्राप्त करता है --- १. मनोहर, कर्णप्रिय, सुखद स्वर श्रवण करने को मिलते हैं, २. सुस्वादु भोजन-पानादि उपलब्ध होता है, ३. वांछित सुखों की प्राप्ति होती है, ४. शुभ वचन, प्रशंसादि सुनने का अवसर प्राप्त होता है, ५. शारीरिक सुख मिलता है।

असातावेदनीय कर्म के कारण : जिन अशुभ आचरणों के कारण प्राणी को दुःखद संवेदना प्राप्त होती है, वे १२ प्रकार के हैं --- १. किसी भी प्राणी को दुःख देना, २. चिन्तित बनाना, ३. शोकाकुल बनाना, ४. रुलाना, ५. मारना और ६. प्रताड़ित करना, इन छः क्रियाओं की मंदता और तीव्रता के आधार पर इनके बारह प्रकार हो जाते हैं। तत्वार्थसूत्र के अनुसार १. दुःख, २. शोक, ३. ताप, ४. आक्रन्दन, ५. वध और ६. परिदेवन ये छः असातावेदनीय कर्म के बन्ध के कारण हैं जो 'स्व' और 'पर' की अपेक्षा से १२ प्रकार के हो जाते हैं। स्व एवं पर की अपेक्षा पर आधारित तत्वार्थसूत्र का यह दृष्टिकोण अधिक संगत है। कर्मग्रन्थ में सातावेदनीय के बन्ध के कारणों के विपरीत गुरु का अविनय, अक्षमा, क्रूरता, अविरति, योगाभ्यास नहीं करना, कषाययुक्त होना तथा दान एवं श्रद्धा का अभाव असातावेदनीय कर्म के कारण माने गये हैं। इन 'कारणों' के विपाक के रूप में आठ प्रकार की दुःखद संवेदनाएं प्राप्त होती हैं --- १. कर्ण-कटु, कर्कश स्वर सुनने को प्राप्त होते हैं, २. अमनोज्ञ एवं सौन्दर्यविहीन रूप देखने को प्राप्त होता है, ३. अमनोज्ञ गन्धों की उपलब्धि होती है, ४. स्वादविहीन भोजनादि मिलता है, ५. अमनोज्ञ, कठोर एवं दुःखद संवेदना उत्पन्न करने वाले स्पर्श की प्राप्ति होती है, ६. अमनोज्ञ [illegible]

का होना, ७. निन्दा अपमानजनक वचन सुनने को मिलते हैं और ८. शरीर में विविध रोगों की उत्पत्ति से शरीर को दुःखद संवेदनाएं प्राप्त होती हैं।

४. मोहनीय कर्म

जैसे मदिरा आदि नशीली वस्तु के सेवन से विवेक-शक्ति कुंठित हो जाती है, उसी प्रकार जिन कर्म-परमाणुओं से आत्मा की विवेक-शक्ति कुंठित होती है और अनैतिक आचरण में प्रवृत्ति होती है, उन्हें मोहनीय (विमोहित करने वाले) कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं- दर्शनमोह और चारित्रमोह।

मोहनीय कर्म के बन्ध के कारण : सामान्यतया मोहनीय कर्म का बन्ध छः कारणों से होता है--- १. क्रोध, २. अहंकार, ३. कपट, ४. लोभ, ५. अशुभाचरण और ६. विवेकाभाव (विमूढ़ता)। प्रथम पांच से चारित्रमोह का और अन्तिम से दर्शनमोह का बन्ध होता है। कर्मग्रन्थ में दर्शनमोह और चारित्रमोह के बन्धन के कारण अलग-अलग बताये गये हैं। दर्शनमोह के कारण हैं --- उन्मार्ग देशना, सन्मार्ग का अपलाप, धार्मिक सम्पत्ति का अपहरण और तीर्थंकर, मुनि, चैत्य (जिन प्रतिमाएं) और धर्म-संघ के प्रतिकूल आचरण। चारित्रमोह कर्म के बन्धन के कारणों में कषाय, हास्य आदि तथा विषयों के अधीन होना प्रमुख है। तत्वार्थसूत्र में सर्वज्ञ, श्रुत, संघ, धर्म और देव के अवर्णवाद (निन्दा) को दर्शनमोह का तथा कषायजनित आत्म-परिणाम को चारित्रमोह का कारण माना गया है। समवायांगसूत्र में तीव्रतम मोहकर्म के बन्धन के तीस कारण बताये गये हैं। १. जो किसी त्रस प्राणी को पानी में डुबाकर मारता है। २. जो किसी त्रस प्राणी को तीव्र अशुभ अध्यवसाय से मस्तक को गीला चमड़ा बांधकर मारता है। ३. जो किसी त्रस प्राणी को मुंह बांध कर मारता है। ४. जो किसी त्रस प्राणी को अग्नि के धुएं से मारता है। ५. जो किसी त्रस प्राणी के मस्तक का छेदन करके मारता है। ६. जो किसी त्रस प्राणी को छल से मारकर हंसता है। ७. जो मायाचार करके तथा असत्य बोलकर अपना अनाचार छिपाता है। ८. जो अपने दुराचार को छिपाकर दूसरे पर कलंक लगाता है। ९. जो कलह बढ़ाने के लिए जानता हुआ मिश्र भाषा बोलता है। १०. जो पति-पत्नी में मतभेद पैदा करता है तथा उन्हें मार्मिक वचनों से झेंपा देता है। ११. जो स्त्री में आसक्त व्यक्ति अपने-आपको कुंवारा कहता है। १२. जो अत्यन्त कामुक व्यक्ति अपने आप को ब्रह्मचारी कहता है। १३. जो चापलूसी करके अपने स्वामी को ठगता है। १४. जो अपने उपकारी की हत्या करता है। १६. जो प्रसिद्ध पुरुष की हत्या करता है। १७. जो महान् पुरुषों की निन्दा करता है। २०. जो न्यायमार्ग की निन्दा करता है। २१. जो आचार्य, उपाध्याय एवं गुरु की निन्दा करता है। २२. जो आचार्य, उपाध्याय एवं गुरु का अविनय करता है। २३. जो अबहुश्रुत होते हुए भी अपने-आपको बहुश्रुत कहता है। २४. जो तपस्वी न होते हुए भी अपने-आपको तपस्वी कहता है। २५. जो अस्वस्थ आचार्य आदि की सेवा नहीं करता। २६. जो आचार्य आदि कुशास्त्र का प्ररूपण करते हैं। २७. जो आचार्य आदि अपनी प्रशंसा के लिए मंत्रादि का प्रयोग करते हैं। २८. जो इहलोक और परलोक में भोगोपभोग पाने की अभिलाषा करता है। २९. जो देवताओं की निन्दा करता है या करवाता है। ३०. जो असर्वज्ञ होते हुए भी अपने-आपको सर्वज्ञ कहता है।

(अ) दर्शन-मोह : जैन-दर्शन में दर्शन शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है--- १. प्रत्यक्षीकरण, २. दृष्टिकोण और ३ श्रद्धा। प्रथम अर्थ का सम्बन्ध दर्शनावरणीय कर्म से है, जबकि दूसरे और तीसरे अर्थ का सम्बन्ध मोहनीय कर्म से है। दर्शन-मोह के कारण प्राणी में सम्यक् दृष्टिकोण का अभाव होता है और वह मिथ्या धारणाओं एवं विचारों का शिकार रहता है, उसकी विवेकबुद्धि असंतुलित होती है। दर्शनमोह तीन प्रकार का है --- १. मिथ्यात्व मोह - जिसके कारण प्राणी असत्य को सत्य तथा सत्य को असत्य समझता है। शुभ को अशुभ और अशुभ को शुभ मानना मिथ्यात्व मोह है। २. सम्यक्-मिथ्यात्व मोह - सत्य एवं असत्य तथा शुभ एवं अशुभ के सम्बन्ध में अनिश्चयात्मकता और ३. सम्यकत्व मोह -- क्षयिक सम्यकत्व की उपलिब्धयों में बाधक सम्यकत्व

मोह है अर्थात् दृष्टिकोण की आंशिक विशुद्धता।

(ब) चरित्र-मोह : चरित्र-मोह के कारण प्राणी का आचरण अशुभ होता है। चरित्र-मोहजनित अशुभाचरण २५ प्रकार का है --- १. प्रबलतम क्रोध, २. प्रबलतम मान, ३. प्रबलतम माया (कपट), ४. प्रबलतम लोभ, ५. अति क्रोध, ६. अति मान, ७. अति माया (कपट), ८. अति लोभ, ९. साधारण क्रोध, १०. साधारण मान, ११. साधारण माया (कपट), १२. साधारण लोभ, १३. अल्प क्रोध, १४. अल्प मान, १५. अल्प माया (कपट) और १६. अल्प लोभ ये सोलह कषाय हैं। उपर्युक्त कषायों को उत्तेजित करने वाली नौ मनोवृत्तियां (उपकषाय) हैं --- १. हास्य, २. रति (स्नेह, राग), ३. अरति (द्वेष), ४. शोक, ५. भय, ६. जुगुप्सा (घृणा), ७. स्त्रीवेद (पुरुष सहवास की इच्छा), ८. पुरुषवेद (स्त्री सहवास की इच्छा), ९. नपुंसकवेद (स्त्री-पुरुष दोनों के सहवास की इच्छा)।

मोहनीय कर्म विवेकाभाव है और उसी विवेकाभाव के कारण अशुभ की ओर प्रवृत्ति की रुचि होती है। अन्य परम्पराओं में जो स्थान अविद्या का है, वही स्थान जैन परम्परा में मोहनीय कर्म का है। जिस प्रकार अन्य परम्पराओं में बन्धन का मूल कारण अविद्या है, उसी प्रकार जैन परम्परा में बन्धन का मूल कारण मोहनीय कर्म। मोहनीय कर्म का क्षयोपशम ही नैतिक विकास का आधार है।

५. आयुष्य कर्म

जिस प्रकार बेड़ी स्वाधीनता में बाधक है, उसी प्रकार जो कर्म परमाणु आत्मा को विभिन्न शरीरों में नियत अवधि तक कैद रखते हैं, उन्हें आयुष्य कर्म कहते हैं। यह कर्म निश्चय करता है कि आत्मा को किस शरीर में कितनी समयावधि तक रहना है। आयुष्य कर्म चार प्रकार का है--- १. नरक आयु, २. तिर्यंच आयु (वानस्पतिक एवं पशु जीवन) ३. मनुष्य आयु और ४. देव आयु।

आयुष्य-कर्म के बन्ध के कारण : सभी प्रकार के आयुष्य-कर्म के बन्ध का कारण शील और व्रत से रहित होना माना गया है। फिर भी किस प्रकार के आचरण से किस प्रकार का जीवन मिलता है, उसका निर्देश भी जैन आगमों में उपलब्ध है। स्थानांगसूत्र में प्रत्येक प्रकार के आयुष्य-कर्म के बन्ध के चार-चार कारण माने गये हैं---

(अ) नारकीय जीवन की प्राप्ति के चार कारण : १. महारम्भ (भयानक हिंसक कर्म), २. महापरिग्रह (अत्यधिक संचय वृत्ति), ३. मनुष्य, पशु आदि का वध करना, ४. मांसाहार और शराब आदि नशीले पदार्थों का सेवन।

(ब) पाशविक जीवन की प्राप्ति के चार कारण : १. कपट करना, २. रहस्यपूर्ण कपट करना, ३. असत्य भाषण, ४. कम-ज्यादा तोल-माप करना। कर्मग्रन्थ में प्रतिष्ठा कम होने के भय से पाप का प्रकट न करना भी तिर्यञ्च आयु के बन्ध का कारण माना गया है। तत्वार्थसूत्र में माया (कपट) को ही पशुयोनि का कारण बताया है।

(स) मानव जीवन की प्राप्ति के चार कारण : १. सरलता, २. विनयशीलता, ३. करुणा और ४. अहंकार एवं मात्सर्य से रहित होना। तत्वार्थसूत्र में १. अल्प आरम्भ, २. अल्प परिग्रह, ३. स्वभाव की सरलता और ४. स्वभाव की मृदुता को मनुष्य आयु के बन्ध का कारण कहा गया है।

(द) दैवीय जीवन की प्राप्ति के चार कारण : १. सराग (सकाम) संयम का पालन, २. संयम का आंशिक पालन, ३. सकाम तपस्या (बाल तप), ४. स्वाभाविक रूप में कर्मों के निर्जरित होने से। तत्वार्थसूत्र में भी यही कारण माने गये हैं। कर्मग्रन्थ के अनुसार अविरत सम्यक्दृष्टि मनुष्य या तिर्यंच, देशविरत श्रावक, सरागी-साधु, बाल-तपस्वी और इच्छा नहीं होते हुए भी परिस्थिति वश भूख-प्यास आदि को सहन करते हुए अकाम-निर्जरा करने वाले व्यक्ति देवायु का बन्ध करते हैं।

आकस्मिकमरण : प्राणी अपने जीवनकाल में प्रत्येक क्षण आयु कर्म को भोग रहा है और प्रत्येक क्षण में आयु कर्म के परमाणु भोग के पश्चात् पृथक होते रहते हैं। जिस समय वर्तमान आयुकर्म के पूर्वबद्ध समस्त परमाणु आत्मा से पृथक हो जाते हैं उस समय प्राणी को वर्तमान शरीर छोड़ना पड़ता है। वर्तमान शरीर छोड़ने के पूर्व ही नवीन शरीर के आयुकर्म का बन्ध हो जाता है। लेकिन यदि आयुष्य का भोग इस प्रकार नियत है तो आकस्मिकमरण की व्याख्या क्या? इसके प्रत्युत्तर में जैन-विचारकों ने आयुकर्म का भोग दो प्रकार का माना --- १. क्रमिक, २. आकस्मिक। क्रमिक भोग में स्वाभाविक रूप से आयु का भोग धीरे-धीरे होता रहता है, जबकि आकस्मिक भोग में किसी कारण के उपस्थित हो जाने पर आयु एक साथ ही भोग ली जाती है। इसे ही आकस्मिकमरण या अकाल मृत्यु कहते हैं। स्थानांगसूत्र में इसके सात कारण बताये गये हैं...१. हर्ष-शोक का अतिरेक, २. विष अथवा शस्त्र का प्रयोग, ३. आहार की अत्यधिकता अथवा सर्वथा अभाव, ४. व्याधिजनित तीव्र वेदना, ५. आघात, ६. सर्पदंशादि और ७. श्वासनिरोध।

६. नाम कर्म

जिस प्रकार चित्रकार विभिन्न रंगों से अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार नाम-कर्म विभिन्न कर्म परमाणुओं से जगत् के प्राणियों के शरीर की रचना करता है। मनोविज्ञान की भाषा में नाम-कर्म को व्यक्तित्व का निर्धारक तत्व कह सकते हैं। जैन-दर्शन में व्यक्तित्व के निर्धारक तत्वों को नाम-कर्म की प्रकृति के रूप में जाना जाता है, जिनकी संख्या १०३ मानी गई है, लेकिन विस्तारभय से उनका वर्णन सम्भव नहीं है। उपर्युक्त सारे वर्गीकरण का संक्षिप्त रूप है...१. शुभनामकर्म (अच्छा व्यक्तित्व) और २. अशुभनामकर्म (बुरा व्यक्तित्व)। प्राणी जगत में, जो आश्चर्यजनक वैचित्र्य दिखाई देता है, उसका आधार नामकर्म है।

शुभनाम कर्म के बन्ध के कारण

जैनागमों में अच्छे व्यक्तित्व की उपलब्धि के चार कारण माने गये हैं... १. शरीर की सरलता, २. वाणी की सरलता, ३. मन या विचारों की सरलता, ४. अहंकार एवं मात्सर्य से रहित होना या सामंजस्य पूर्ण जीवन।

शुभनामकर्म का विपाक :उपर्युक्त चार प्रकार के शुभाचरण से प्राप्त शुभ व्यक्तित्व का विपाक १४ प्रकार का माना गया है... १. अधिकारपूर्ण प्रभावक वाणी (इष्ट शब्द), २. सुन्दर सुगठित शरीर (इष्ट रूप), ३. शरीर से निःसृत होने वाले मलों में भी सुगंधि (इष्ट गंध), ४. जैवीय रसों की समुचितता (इष्ट रस), ५. त्वचा का सुकोमल होना (इष्ट स्पर्श), ६. अचपल योग्य गति (इष्ट गति), ७. अंगों का समुचित स्थान पर होना (इष्ट स्थिति), ८. लावण्य, ९. यशः कीर्ति का प्रसार (इष्ट यशः कीर्ति), १०. योग्य शारीरिक शक्ति (इष्ट उत्थान, कर्म, बलवीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम), ११. लोगों को रुचिकर लगे ऐसा स्वर, १२. कान्त स्वर, १३. प्रिय स्वर और १४. मनोज्ञ स्वर।

अशुभ नाम कर्म के कारण : निम्न चार प्रकार के अशुभाचरण से व्यक्ति (प्राणी) को अशुभ व्यक्तित्व की उपलब्धि होती है... १. शरीर की वक्रता, २. वचन की वक्रता, ३. मन की वक्रता, ४. अहंकार एवं मात्सर्य वृत्ति या असामंजस्य पूर्ण जीवन।

अशुभनाम कर्म का विपाक : अप्रभावक वाणी (अनिष्ट शब्द), २. असुन्दर शरीर (अनिष्ट स्पर्श), ३. शारीरिक मलों का दुर्गन्धयुक्त होना (अनिष्ट गंध), ४. जैवीय रसों की असमुचितता (अनिष्ट रस), ५. अप्रिय स्पर्श, ६. अनिष्ट गति, ७. अंगों का समुचित स्थान पर न होना (अनिष्ट स्थिति), ८. सौन्दर्य का अभाव, ९. अपयश, १०. पुरुषार्थ करने की शक्ति का अभाव, ११. हीन स्वर, १२. दीन स्वर, १३. अप्रिय स्वर और १४. अकान्त स्वर।

७. गोत्र कर्म

जिसके कारण व्यक्ति प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित कुलों में जन्म लेता है, वह गोत्र कर्म है। यह दो प्रकार का माना गया है... १. उच्च गोत्र (प्रतिष्ठित कुल) और २. नीच गोत्र (अप्रतिष्ठित कुल)। किस प्रकार के आचरण के कारण प्राणी का अप्रतिष्ठित कुल में जन्म होता है और किस प्रकार के आचरण से प्राणी का प्रतिष्ठित कुल में जन्म होता है, इस पर जैनाचार-दर्शन में विचार किया गया है। अहंकारवृत्ति ही इसका प्रमुख कारण मानी गई है।

उच्च गोत्र एवं नीच गोत्र के कर्म-बंध के कारण : निम्न आठ बातों का अहंकार न करने वाला व्यक्ति भविष्य में प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेता है...

१. जाति, २. कुल, ३. बल (शारीरिक शक्ति), ४. रूप (सौन्दर्य), ५. तपस्या (साधना), ६. ज्ञान (श्रुत), ७. लाभ (उपलब्धियां) और ८. स्वामित्व (अधिकार)। इसके विपरीत जो व्यक्ति उपर्युक्त आठ प्रकार का अहंकार करता है, वह नीच कुल में जन्म लेता है। कर्मग्रन्थ के अनुसार भी अहंकार रहित गुणग्राही दृष्टि वाला, अध्ययन-अध्यापन में रुचि रखने वाला तथा भक्त उच्च-गोत्र को प्राप्त करता है। इसके विपरीत आचरण करने वाला नीच गोत्र को प्राप्त करता है। तत्वार्थसूत्र के अनुसार पर-निन्दा, आत्मप्रशंसा, दूसरों के सद्गुणों का आच्छादन और असद्गुणों का प्रकाशन ये नीच गोत्र के वन्ध के हेतु हैं। इसके विपरीत पर-प्रशंसा, आत्म-निन्दा, सद्गुणों का प्रकाशन, असद्गुणों का गोपन और नम्रवृत्ति एवं निरभिमानता ये उच्च गोत्र के बंध के हेतु हैं।

गोत्र कर्म का विपाक : विपाक (फल) दृष्टि से विचार करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि जो व्यक्ति अहंकार नहीं करता, वह प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेकर निम्नोक्त आठ क्षमताओं से युक्त होता है... १. निष्कलंक मातृ-पक्ष (जाति), २. प्रतिष्ठित पितृ-पक्ष (कुल), ३. सबल शरीर, ४. सौन्दर्ययुक्त शरीर, ५. उच्च साधना एवं तप-शक्ति, ६. तीव्र बुद्धि एवं विपुलज्ञान राशि पर अधिकार, ७. लाभ एवं विविध उपलब्धियों और ८. अधिकार, स्वामित्व एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति। लेकिन अहंकारी व्यक्तित्व उपर्युक्त समग्र क्षमताओं से अथवा इनमें से किन्हीं विशेष क्षमताओं से वंचित रहता है।

८. अन्तराय कर्म

अभीष्ट की उपलब्धि में बाधा पहुंचाने वाले कारण को अन्तराय कर्म कहते हैं। यह पांच प्रकार का है। **१. दानान्तराय :** दान की इच्छा होने पर भी दान नहीं किया जा सके, **२. लाभान्तराय :** कोई प्राप्ति होने वाली हो लेकिन किसी कारण से उसमें बाधा आ जाना, **३. भोगान्तराय :** भोग में बाधा उपस्थित होना जैसे व्यक्ति सम्पन्न हो, भोजनगृह में अच्छा सुस्वादु भोजन भी बना हो, लेकिन अस्वस्थता के कारण उसे मात्र खिचड़ी ही खानी पड़े, **४. उपभोगान्तराय :** उपभोग की सामग्री के होने पर भी उपभोग करने में असमर्थता, **५. वीर्यान्तराय :** शक्ति के होने पर भी पुरुषार्थ में उसका उपयोग नहीं किया जा सकना। (तत्वार्थमूत्र, ८.१४)

जैन नीति-दर्शन के अनुसार जो व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के दान, लाभ, भोग, उपभोग-शक्ति के उपयोग में बाधक बनता है, वह भी अपनी उपलब्ध सामग्री एवं शक्तियों का समुचित उपयोग नहीं कर पाता है। जैसे कोई व्यक्ति किसी दान देने वाले व्यक्ति को दान प्राप्त करने वाली संस्था के बारे में गलत सूचना देकर या अन्य प्रकार से दान देने से रोक देता है अथवा किसी भोजन करते हुए व्यक्ति को भोजन पर से उठा देता है तो उसकी उपलब्धियों में भी बाधा उपस्थित होती है अथवा भोगसामग्री के होने पर भी वह उसके भोग से वंचित रहता है। कर्मग्रन्थ के अनुसार जिन पूजा आदि धर्म-कार्यों में विघ्न उत्पन्न करने वाला और हिंसा में तत्पर व्यक्ति भी अन्तराय कर्म का संचय करता है। तत्वार्थसूत्र के अनुसार भी विघ्न या बाधा डालना ही अन्तराय-कर्म के वंध का कारण है।

९. घाती और अघाती कर्म

कर्मों के इस वर्गीकरण में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों को 'घाती' और नाम, गोत्र, आयुष्य और वेदनीय इन चार कर्मों को 'अघाती' माना जाता है। घाती कर्म आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति नामक गुणों का आवरण करते हैं। ये कर्म आत्मा की स्वभावदशा को विकृत करते हैं, अत: जीवन-मुक्ति में बाधक होते हैं। इन घाती कर्मों में अविद्या रूप मोहनीय कर्म ही आत्मस्वरूप की आवरण-क्षमता, तीव्रता और स्थितिकाल की दृष्टि से प्रमुख है। वस्तुत: मोहकर्म ही एक ऐसा कर्म-संस्कार है, जिसके कारण कर्म-बंध का प्रवाह सतत बना रहता है। मोहनीय कर्म उस बीज के समान है, जिसमें अंकुरण की शक्ति है। जिस प्रकार उगने योग्य बीज हवा, पानी आदि के सहयोग से अपनी परम्परा को बढ़ाता रहता है, उसी प्रकार मोहनीय रूपी कर्म-बीज ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय रूप हवा, पानी आदि के सहयोग से कर्म-परम्परा को सतत बनाये रखता है। मोहनीय कर्म ही जन्म, मरण, संसार या बंधन का मूल है, शेष घाती कर्म उसके सहयोगी मात्र हैं। इसे कर्मों का सेनापति कहा गया है। जिस प्रकार सेनापति के पराजित होने पर सारी सेना हतप्रभ हो शीघ्र ही पराजित हो जाती है, उसी प्रकार मोह कर्म पर विजय प्राप्त कर लेने पर शेष सारे कर्मों को आसानी से पराजित कर आत्मशुद्धता की उपलब्धि की जा सकती है। जैसे ही मोह नष्ट हो जाता है, वैसे ही ज्ञानावरण और दर्शनावरण का पर्दा हट जाता है। अन्तराय या बाधकता समाप्त हो जाती है और व्यक्ति (आत्मा) जीवन-मुक्त बन जाता है।

अघाती कर्म वे हैं, जो आत्मा के स्वभाव दशा की उपलब्धि और विकास में बाधक नहीं होते। अघाती कर्म भुने हुए बीज के समान हैं, जिनमें नवीन कर्मों की उत्पादन-क्षमता नहीं होती। वे कर्म-परम्परा का प्रवाह बनाये रखने में असमर्थ होते हैं और समय की परिपक्वता के साथ ही अपना फल देकर सहज ही अलग हो जाते हैं।

सर्वघाती और देशघाती कर्म-प्रकृतियां : आत्मा के स्व-लक्षणों का आवरण करने वाले घाती कर्मों की ४५ कर्म-प्रकृतियां भी दो प्रकार की हैं... १. सर्वघाती और २. देशघाती। सर्वघाती कर्म प्रकृति किसी आत्मगुण को पूर्णतया आवरित करती है और देशघाती कर्म-प्रकृति उसके एक अंश को आवरित करती है।

आत्मा के स्वाभाविक सत्यानुभूति नाम-गुण को मिथ्यात्व (अशुद्ध दृष्टिकोण) सर्व-रूपेण आच्छादित कर देता है। अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) और अनन्तदर्शन (केवलदर्शन) नामक आत्मा के गुणों का आवरण भी पूर्ण रूप से होता है। पांचों प्रकार की निद्राएं भी आत्मा की सहज अनुभूति की क्षमता को पूर्णतया आवरित करती हैं। इसी प्रकार चारों कषायों के पहले तीनों प्रकार, जो कि संख्या में १२ होते हैं, भी पूर्णतया बाधक बनते हैं। अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यकत्व का, प्रत्याख्यानी कषाय देश व्रती चारित्र (गृहस्थ धर्म) का और प्रत्याख्यानी कषाय सर्वव्रती चारित्र (मुनिधर्म) का पूर्णतया बाधक बनता है। अत: ये २० प्रकार की कर्मप्रकृतियां सर्वघाती कही जाती हैं। शेष ज्ञानावरणीय कर्म की ४, दर्शनावरणीय कर्म की ३, मोहनीय कर्म की १३, अन्तराय कर्म की ५ कुल २५ कर्म-प्रकृतियां देशघाती कही जाती हैं। सर्वघात का अर्थमात्र इन गुणों के पूर्ण प्रकटन को रोकना है न कि इन गुणों का अनस्तित्व। क्योंकि ज्ञानादि गुणों के पूर्ण अभाव की स्थिति में आत्म-तत्व और जड़-तत्व में अन्तर ही नहीं रहेगा। कर्म तो आत्मगुणों के प्रकटन में बाधक तत्व हैं, वे आत्मगुणों को विनष्ट नहीं कर सकते। नन्दिसूत्र में तो कहा गया है कि जिस प्रकार बादल सूर्य के प्रकाश को चाहे कितना ही आवरित क्यों न कर ले, फिर भी वह न तो उसकी प्रकाश-क्षमता को नष्ट कर सकता है और न उसके प्रकाश के प्रकटन को पूर्णतया रोक सकता है, उसी प्रकार चाहे कर्म ज्ञानादि आत्मगुणों को कितना ही आवृत क्यों न कर ले, फिर भी उनका एक अंश हमेशा ही अनावृत रहता है।

कर्म बन्धन से मुक्ति : जैन कर्म-सिद्धान्त की यह मान्यता है कि प्रत्येक कर्म अपना विपाक या फल देकर आत्मा से अलग हो जाता है। इस विपाक की अवस्था में यदि आत्मा राग-द्वेष अथवा मोह से अभिभूत होता है, तो वह पुन: नये कर्म का संचय कर लेता है, इस प्रकार यह परम्परा सतत रूप से चलती रहती है। व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में यह नहीं है कि वह कर्म के विपाक के परिणाम स्वरूप होने वाली अनुभूति से इंकार कर दे। अत: यह एक कठिन समस्या है कि कर्म के बन्धन व विपाक की इस प्रक्रिया से मुक्ति कैसे हो। यदि कर्म के विपाक के फलस्वरूप हमारे अन्दर क्रोधादि कषाय भाव अथवा कामादि भोग भाव उत्पन्न होना ही है तो फिर स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि हम विमुक्ति की दिशा में आगे कैसे बढ़ें, इस हेतु जैन आचार्यों ने दो उपायों का प्रतिपादन किया है... १. संवर और २. निर्जरा। संवर का तात्पर्य है विपाक की स्थिति में प्रतिक्रिया से रहित रहकर नवीन कर्माश्रव एवं बन्ध को नहीं होने देना और निर्जरा का तात्पर्य है पूर्व बद्ध कर्मों के विपाक की समभाव पूर्वक अनुभूति करते हुए उन्हें निर्जरित कर देना या फिर तप साधना द्वारा पूर्वबद्ध अनियत विपाकी कर्मों को समय से पूर्व उनके विपाक को प्रदेशोदय के माध्यम से निर्जरित करना।

यह सत्य है कि पूर्वबद्ध कर्मों के विपाकोदय की स्थिति में क्रोधादि आवेग अपनी अभिव्यक्ति के हेतु चेतना स्तर पर आते हैं, किन्तु यदि आत्मा उस समय अपने को राग-द्वेष से ऊपर उठाकर साक्षी भाव में स्थित रखे और उन उदय में आ रहे क्रोधादि भावों के प्रति मात्र दृष्टा भाव रखे तो वह भावी बन्धन से बचकर पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा कर देता है व इस प्रकार वह बन्धन से विमुक्ति की ओर अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देता है। वस्तुत: विवेक व अप्रमत्तता ऐसे तथ्य हैं, जो हमें नवीन बन्धन से बचाकर विमुक्ति की ओर अभिमुख करते हैं। व्यक्ति में जितनी अप्रमत्तता या आत्म चेतनता होगी व उसका विवेक जितना जागृत रहेगा, वह बन्धन से विमुक्ति की दिशा में आगे बढ़ेगा। जैन कर्म सिद्धान्त बताता है कि कर्मों के विपाक के सम्बन्ध में हम विवश या परतंत्र होते हैं, किन्तु उस विपाक की दशा में भी हममें इतनी स्वतंत्रता अवश्य होती है कि हम नवीन कर्म परम्परा का संचय करें या न करें, ऐसा निश्चय कर सकते हैं। वस्तुत: कर्म-विपाक के सन्दर्भ में हम परतंत्र होते हैं, किन्तु नवीन कर्म बन्ध के सन्दर्भ में हम आंशिक रूप में स्वतंत्र हैं। इसी आंशिक स्वतंत्रता द्वारा हम मुक्ति अर्थात् पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। जो साधक विपाकोदय के समय साक्षी भाव या ज्ञाता-द्रष्टा भाव में जीवन जीना जानता है, वह निश्चय ही कर्म-विमुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

सन्दर्भ

१. जैन डॉ० सागरमल - जैनधर्म सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन, प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर १९८२, पृ० ४

२. श्वेत श्वतरोपनिषद् (गीता प्रेस गोरखपुर) १/१-२

३. **The Philosophical Quarterly April, 1932, Page-72**

४. **Maxmullar - Three Lectures on Vedanta Philosophy Page-165**

५. मालवणिया पं० दलसुखभाई - आत्ममीमांसा (जैन संस्कृति संशोधन मण्डल)

६. मिश्रा, रवीन्द्रनाथ, जैन कर्म सिद्धान्त का उद्भव एवं विकास (पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी ५, १९८५) पृ० ८

७. वही पृ० ९-१०

८. रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, उत्तराध्ययनसूत्र ३२/७

९. (अ) समवायांग ५/४ (ब) इसिभासियाइं ९/५ (स) तत्वार्थसूत्र ८/१

१०. कुन्दकुन्द, समयसार १७१

११. (अ) अट्ठविहं कम्मगंढिं -- इसिभासियाइं ३१
(ब) अट्ठविहकम्मरयमलं -- इसिभासियाइं २३

१२. उत्तराध्ययनसूत्र (सं० मधुकरमुनि), ३३/२-३

१३. वही ३३/४-१५

१४. अगुंतर निकाय उद्धृत उपाध्याय भरत सिंह, बौद्ध दर्शन व अन्य भारतीय दर्शन, पृ० ४६३

१५. देखें - आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध धर्म दर्शन पृ० २५०

१६. देवेन्द्र सूरि, कर्म ग्रन्थ प्रथम, कर्म विपाक

१७. संघवी पं० सुखलाल दर्शन व चिन्तन पृ० २२५

१८. आचार्य नेमिचन्द, गोम्मटसार, कर्मकाण्ड - ६

१९. आचार्य विद्यानन्दी, अष्टसहस्री, पृ० ५१ उद्धृत - **Tatia N.M. Studies in Jaina Philosophy (P.V. Research Institute Varanasi 5) Page 227**

२०. कर्मग्रन्थ - प्रथम, कर्म विपाक - भूमिका पं० सुखलाल संघवी, पृ० २४

२१. जैन सागरमल - जैन कर्म सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन पृ० १७-१८

२२. महाभारत : शान्तिपर्व (गीता प्रेस, गोरखपुर) १२९ (अ)
(ब) तिलक लोकमान्य बालगंगाधर, गीतारहस्य पृ० २६८

२३. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्ध धर्म दर्शन पृ० २७७

२४. (अ) देखें - उत्तराध्ययन सूत्र - संपा० मधुकर मुनि ४/४/१३. २३॥३०
(ब) भगवती सूत्र १। २। ६४

२५. देखें - (अ) **Tatia N.M. Studies in Jaina Philosophy (P.V.R.I.) Page-254**
(ब) जैन सागरमल - जैन कर्म सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २४-२७

२६. जैन सागरमल - जैन कर्म सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन पृ० ३५-३६

२७. वही पृ० ३६-४०

२८. ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत विवरण तत्वार्थसूत्र अध्याय ६ एवं ८, कर्म ग्रन्थ, प्रथम कर्मविपाक पृ० ५४-६१, समवायांग ३०.१ तथा स्थानांग १।४।४।३७३ पर आधारित है।

जैन साहित्य का पुरातात्विक महत्व

- भँवरलाल नाहटा, कलकत्ता

साहित्य, इतिहास और पुरातत्व का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। वर्तमान काल का अतीत में परिवर्तित भौतिक वस्तु स्वरूप ही उसके पर्याय हैं। पुद्गल का स्वभाव ही परिवर्तनशील होने से अशाश्वत वस्तु नष्ट होकर पुरातत्व का रूप धारण कर लेती है। वर्तमान कालचक्र की प्रारम्भिक मानव सभ्यता के आदि पुरुष भगवान ऋषभदेव हैं और उन्हीं से इतिहास पुरातत्व का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। साहित्य का जहां प्रश्न है, भगवान महावीर की वाणी से सम्बन्धित है अत: पूर्व के जैन साहित्य के उदाहरण ऋषिभाषित जैसे ग्रन्थों में भले ही मिलें पर अष्टापद जैसे तीर्थ देवानुभाव से चिरकाल से वर्तमान हैं, किन्तु अब अगम्य हो गये। गणधर गौतम स्वामी आदि वहां गये और देव विद्याधरादि जाते थे या लब्धिसिद्धिधारी के वहां का दर्शन कर सकने के उदाहरण मिलते हैं।

भगवान ऋषभदेव जब विचरण करते हुए बाहुबली के देश गये तक्षशिला में, तब उनके पधारने के स्मृति स्वरूप १००० आरों वाले धर्मचक्र स्तूप का निर्माण हुआ। वह तो कहां से विद्यमान रह सकता था पर उसी जीर्ण स्थान में नवनिर्माण होते जो अन्तिम अवशेष रहा उसमें भारण्ड पक्षी आदि की आकृतियां अब भी देखने को मिलती हैं। कुछ वर्ष पूर्व रूस देश में एक पर्वत का नाम आदि जिनस्नोवाया सुना गया था। महामहिम पं. विश्वम्भरनाथ पाण्डेय के अनुसार आज भी विदेशों में जैन संस्कृति के अवशेष मिलते हैं और रूस के किसी प्रान्त में जैन ग्रन्थ भी तद्देशीय भाषा में उपलब्ध हैं। हिमालय प्रदेश में भी कई विचित्र अगम्य स्थान हैं जहां की विचित्र जानकारी कभी-कभी प्राप्त होती है।

हमें यहां जैन साहित्य में पुरातात्विक महत्व के सम्बन्ध में विचार करना अभीष्ट है। साहित्य के सन्दर्भ में आगम काल से लेकर दो ढाई हजार वर्ष की परिधि में जो साहित्य और पुरातात्विक अवशेष संप्राप्त हैं उन्हीं पर चर्चा की जा सकती है। बाकी भूगर्भ में तो कितना समाहित हो गया और कितनी पुरातत्व सामग्री यवनों द्वारा, प्राकृतिक प्रकोप, बाढ़, भूकम्प और अग्नि प्रकोप के कारण लुप्त हो गई, उसका लेखा-जोखा लगाना दुष्कर और असाध्य है।

आगम साहित्य भी कितना विशाल था, जिसकी श्लोक संख्या देखने से विदित होता है कि कण्ठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध करते समय उसका रूप ही संक्षिप्त रह गया और इस प्रकार मूल ग्रंथ / आगम भी विच्छेद हो गये। सम्प्रति जो कुछ भी प्राप्त है वह अत्यल्प है। मुसलमानी शासनकाल में या धार्मिक आवेश में लाखों ग्रंथों का होलिका-दहन हो गया, जो कुछ बच पाया है उसका भी अभी तक परिशीलन कहां हो पाया है? चीन, भूटान, नेपाल आदि देशों में भारतीय साहित्य भारतीय लिपि के ग्रन्थ अब भी पाये जाते हैं। चीन में एक स्थान पर सिद्ध लिपि के कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए जो कातंत्र व्याकरण के ॐ नम: सिद्ध से प्रारम्भ होने वाली भारतीय लिपि थी। ब्राम्ही लिपि जो भगवान ऋषभदेव ने सिखाई थी वह कहां है। वर्तमान में प्रचलित नाम तो बहुत बाद का पारम्परिक है। भारत में भी कतिपय सम्प्राप्त शंख लिपि भी अभी तक नहीं पढ़ी गई। हरप्पा, मोहनजोदारो की लिपि जो पांच हजार वर्ष पूर्व अनुमानित है, स्पष्ट नहीं हुई। अतिप्राचीन लिपियां तो कभी की कालकवलित हो गई।

आगम साहित्य पर दृष्टिपात करें तो आचारांग निर्युक्ति में अष्टापद, उज्जयंत, गजाग्रपद, धर्मचक्र, रथावर्त, चमरोत्पात आदि का वर्णन सम्प्राप्त है। यह निर्युक्ति श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी विरचित होने से २३५० वर्ष प्राचीन है। निशीथचूर्णि में भी तत्कालीन प्रसिद्ध जैनतीर्थों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"उतरावहे धम्मचक्कं मथुराए दैव निम्मिओ थूभो।

कोसलाए जियंत समि पडिमा तित्थंकराण वा जम्मभूमिओ।।''

तीर्थंकरादि के चिता स्थान में स्तूपनिर्माण का जंबूद्वीप पन्नति सूत्र में स्पष्टतया उल्लेख है यत:—

''तएणं से सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवई जाव वेमाणिये देवे जहारिहं एव वयासी खिप्पामेव यो देवाणुप्पिया! सव्वरयणा मए महई महालाए तओ चेइअ थूंभे करेई, एगं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एग्गं गणहर चिइगाए, एगं अवसेसाणं अणं गाराणं चिइगाए। तएणं ते बहवे जाव करेंति। तएणं ते बहवे भवणवई जाव वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिणिव्वाण महिमं करेंति, करेइता जेणेव नंदीसर वरे दीवे तेणेव उवागच्छंति।''

अर्थात् फिर देवराज देवेन्द्र शक्र ने भवनपति यावत् वैमानिक देवों को यथायोग्य ऐसा कहा कि हे देवानुप्रिय! बाहर से और अन्दर में रत्नजटित अतिविस्तार वाले तीन चैत्यस्तूप शीघ्र तैयार करो। एक स्तूप तीर्थंकर भगवान के चिता स्थान में और एक स्तूप गणधर चिता स्थान में और एक अवशेष साधुओं के चिता स्थान में करो। तत्पश्चात् बहुत से देव वैसा करते हैं। तत्पश्चात् बहुत से भवनपति यावत् वैमानिक देव तीर्थंकर का निर्वाण महोत्सव करते हैं। निर्वाणोत्सव करके जहां श्रेष्ठ नन्दीश्वर द्वीप है वहां आते हैं।

प्राचीन जैन तीर्थों के सम्बन्ध में डॉ. जगदीशचन्द्र जैन की पुस्तक पठनीय है। शुभशील गणि रचित शत्रुंजय कल्पवृत्ति के उल्लेखानुसार भगवान महावीर के शिष्य सुधर्मा स्वामी ने तीर्थ महात्म्य विस्तार से लिखा था जिसका संक्षेप भद्रबाहु स्वामी ने किया। इसके बाद वज्रस्वामी, पादलिप्तसूरि, धनेश्वरसूरि और धर्मशेष सूरि आदि ने शत्रुंजय कल्प लिखे। प्राचीन साहित्य में उल्लिखित जिनालयादि मुस्लिम काल में नष्ट हो गये। वैशाली में भगवान मुनिसुव्रत का स्तूप तो ढाई हजार पूर्व स्थित था। वह चेडा महाराज और कोणिक के महाशिलाकण्टक युद्ध के समय ही विध्वस्त हो गया था। यह बात आगमों एवं बौद्ध साहित्य से भी समर्थित है।

मथुरा का देवनिर्मित स्तूप श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के शासन में निर्मित था और पार्श्वनाथ भगवान के शासन तक रत्नमय खुला था। बाद में दु:खमकाल जनक असुरक्षा का ख्याल कर उसे इस्टिकामय कर दिया गया। फिर समय-समय पर जीर्णोद्धार प्रतिष्ठित होते गये। श्री बप्प भट्टिसूरि के समय में राजा आम नागावलोक ने जीर्णोद्धार कराया और श्री जिनप्रभसूरिजी के समय तो अच्छे रूप में प्रसिद्ध तीर्थ था। स्थान-स्थान के लोग संघ लेकर आते थे। भटनेर से निकले हुए विशाल संघ के आने का विवरण प्राप्त है। बाद में जाने कब कैसे ध्वस्त होकर कंकाली टीले के रूप में प्रसिद्ध हो गया। इसकी खुदाई में दो हजार वर्ष से पूर्व की अनेक प्रकार की प्रतिमाएं, आयागपट और शिलालेख प्राप्त हुए जो लखनऊ, मथुरा के म्यूजियम में संरक्षित हैं व कुछ विदेश भी चले गये। अत्रस्थ अभिलेखगत आचार्यों के नाम श्वेताम्बर परम्परागत कल्पसूत्र से समर्थित हैं।

भगवान महावीर के समय में बनी हुई जीवित स्वामी की प्रतिमा जो वीतभयपतन से महाराजा उदयन के यहां से चुरा कर चंडप्रद्योत द्वारा उज्जैन मंगा ली थी, वह प्रतिमा महाराजा कुमारपाल के चरित्र से ज्ञात होता है कि भूगर्भ से प्राप्त हो गई थी। प्राग् इतिहास काल की कही जाने वाली कायोत्सर्ग मुद्रा में भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा के सम्बन्ध में युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमलजी महाराज ने जैन निबंधमाला पृष्ठ ५३ में लिखा है कि सिन्धुघाटी के उत्खनन से प्राप्त अवशेषों, मूर्तियों और मुद्राओं से भगवान ऋषभ का अस्तित्व प्रमाणित होता है। फलक १२ और ११८, आकृति ७ (मार्शलकृत मोहनजोदड़ो) में कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित ध्यान योगी अंकित है। विशेष जानने के लिए ''कुशलनिर्देश वर्ष १५ पृ० २३-२४ देखना चाहिए। मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज का लेख भी इस विषय में ''तित्थयर'' में प्रकाशित हुआ है।

गुफा मन्दिरों में राजगृही के वैभारगिरि के नीचे सोन भंडार नाम से प्रसिद्ध गुफा में प्राचीन शंख लिपि के अभिलेख हैं जो पढ़े नहीं जा सकते, किन्तु गुफा के बाहर प्रवेश द्वार के पास एक श्लोक

उत्कीर्णित है, जिससे पूर्वधर आचार्य श्री वज्र स्वामी द्वारा अर्हत् प्रतिमा प्रतिष्ठित करने का स्पष्ट उल्लेख है। इसकी लिपि प्राचीन है जो दो हजार वर्ष की है। इसमें कुछ वर्ष पूर्व तक ४ तीर्थंकरों की सर्वतोभद्र प्रतिमा थी जो अब वहां से हटा ली गई, विदित होता है। लेख संस्कृत में इस प्रकार है—

"निर्व्वाणलाभाय तपस्वियोग्ये शुभे गुहेअर्हत प्रतिमा प्रतिष्ठे।
आचार्य रत्न मुनि वइरदेव विमुक्तये कार्यत् दीर्घतेज: ।।"

इस प्रकार के प्राचीन अभिलेख सैकड़ों की संख्या में मथुरा आदि प्राचीन स्थानों से सम्प्राप्त हैं। इलोरा की ७वीं शताब्दी की प्रतिमाओं के चित्र कुशल निर्देश मई '९२ में प्रकाशित हैं। अजंता, इलोरा आदि गुफाओं में भी जैन स्थापत्य पुरातत्व सामग्री उपलब्ध है। आसाम में गवालपाड़ा से १० मील दूर सूर्य पहाड़ की गुफा में आदिनाथ और पद्मप्रभ की प्रतिमाएं हैं, मैं कई बार वहां गया हूं। जैन रामायण सम्बन्धी ग्रन्थों में उल्लेख है कि जब बालिमुनि अष्टापद-कैलाश पर ध्यानस्थ खड़े थे, रोष में आकर रावण ने पर्वत को उठा लिया। बालिमुनि ने तीर्थरक्षा के हेतु पर्वत को दबाया तो दशमुख का नाम दबकर रोने से रावण हो गया। यद्यपि इस भाव की विशाल प्रतिमा रावण की एलिफेंटा गुफा (बम्बई के पास द्वीप) में देखी थी, जो वैदिक संस्कृति से सम्बन्धित होनी सम्भावित है।

साहित्य की सीमा अत्यन्त विशाल है। आगम, टीका, चूर्णि, निर्युक्ति, भाष्य, बालावबोध, टबा प्रकरण, रास-चौपई, तीर्थमाला, चैत्यपरिपाटी, स्तवन, वंशावली, गुर्वावली, पट्टावली आदि के अतिरिक्त प्रशस्ति, पुष्पिका, ताम्रशासन, शिलालेख, प्रतिमादि के अभिलेख इतनी विधाएं हैं कि जिनमें पुरातत्व विषयक सामग्री प्रचुरता से सम्प्राप्त होती है।

ताम्र शासन के सम्बन्ध में देखा जाय तो बंगाल के पहाड़पुर से प्राप्त वटगुहाली ग्राम का अभिलेख १५०० वर्ष प्राचीन है। जिसे बाबू छोटेलाल जैन ने श्वेताम्बर पंचायती मंदिर के सार्द्धशताब्दी स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित किया था। बंगाल में प्राप्त जैन लेखों में यही विस्तृत और प्राचीन है अवशिष्ट संक्षिप्त लेख कुछ प्रतिमादि पर भले ही उत्कीर्णित हों।

अनेक खण्डकाव्य शिलालेखों में उत्कीर्णित हुए थे। उनके प्रमाण एक के अभाव में दूसरी विद्या में बच पाये हैं। श्री जिनवल्लभसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठा, विधि चैत्यों के नियमादि अनेक स्थानों में उत्कीर्ण कराये थे जो कहीं भी नहीं मिलते, किन्तु ज्ञान भण्डारों में उसकी प्रतिलिपि उपलब्ध हो गई। वस्तुपाल तेजपाल का शिलालेख इसी प्रकार शत्रुंजय का प्राप्त हो गया। राजगृही की सं. १४१२ की महत्तियाण जाति की प्रशस्ति हालांकि मन्दिर तो न रहा किन्तु उस शिलालेख प्रशस्ति का आधा पाषाण उपलब्ध हुआ और आधा भाग किसी अन्य गांव में बाबाजी के भांग घोटने के शिलारूप में व्यवहृत होता, उसे स्वर्गीय श्री पूरणचन्द्रजी नाहर ने प्राप्त कर जैन लेख संग्रह में प्रकाशित किया था, जिसमें खरतगच्छ की मान्यता वाली महत्तियाण जाति की विस्तृत प्रशस्ति थी। इसी प्रकार नाहर जी ने पावापुरी गांव मन्दिर की प्रशस्ति का भी उद्धार किया था।

सम्राट अशोक के सुप्रसिद्ध अभिलेख भी कुछ जैन धर्म से सम्बन्धित और कुछ साम्राज्ञी तिष्यरक्षिता के प्रभाव में आकर बौद्ध हो जाने के पश्चात् के हैं।

उड़ीसा के खण्डगिरि उदयगिरि में प्रचुर गुफाएं और प्रतिमादि पुरातत्व की सामग्री सम्प्राप्त हुई है, जिसमें उदयगिरि की हाथी गुफा का शिलालेख अतिप्राचीन, विशाल और ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण है। उसके सम्पूर्णतया पढ़ने और पाठ निर्णय करने में कनिंघम साहब से लेकर काशीप्रसाद जायसवाल पर्यन्त डेढ़ सौ वर्ष लग गये थे। गिरिनार जी का अभिलेख भी पुरातत्व की अनमोल निधि है। बिजौलिया का दिगम्बर शिलालेख भी महत्वपूर्ण हैं।

जालोर के तोपखाने के निर्माण में कम से कम चार विशाल जिनालयों को ध्वंस किया गया था, जिनके अभिलेख उसमें लगे हैं। महाराज कुमारपाल के विशाल बावन जिनालय का उनके जीवन-चरित्रादि में उल्लेख मिलता है, किन्तु अब स्वर्णगिरि पर एक छोटी सी देहरी नाम शेष की परिचायक है, जिसमें एक शमली विहार की दृश्य पट्टिका लगी देखने में आती है। इसी प्रकार जालोर के ही एक शान्तिनाथ जिनालय की स्मृति शेष श्रावकधर्म प्रकरण वृत्ति की ताड़पत्रीय सचित्र प्रति में उसके निर्माता परिवार एवं जिनालय का चित्र उपलब्ध है। गणिवर्य श्री शीलविजय जी महाराज ने उसे सम्पादित कर प्रकाशित कराया-है जो कि प्रशस्ति का खण्डित पत्र ही प्राप्त हुआ है।

बीकानेर के चिन्तामण चौबीसहा मन्दिर की मूल नायक प्रतिमा दादा साहब श्री कुशलसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है, जिसके परिकर भग्न होने का उल्लेख है कि कामरान द्वारा भग्न हुआ था और नया बनवाकर बच्छावत मंत्री ने पुर्नप्रतिष्ठित किया था।

नगरकोट कांगडा हिमाचल प्रदेश में है। उसके राजा महाभारतकालीन कटौच वंश के थे जो कौरवों की तरफ से युद्ध में लड़े थे। उनके राजवंश की सैकड़ों पीढ़ियों का इतिहास राजतरंगिणी आदि ग्रन्थों में प्राप्त है। उनके राजमहल में गृह चैत्यालय था, जिसमें रत्नों की प्रतिमाएं थीं। उपाध्याय जयसागर के संघ सहित पधारने पर किले के मन्दिर एवं नगर के मन्दिरों की यात्रा एवं पंचतीर्थ यात्रा का विशद वर्णन उपाध्यायजी ने "विज्ञप्ति त्रिवेणी" में किया है जो श्री जिनभद्रसूरिजी महाराज को भेजी गई थी। वह ग्रन्थ एकाएक पाटण के ज्ञान भंडार में सम्प्राप्त हो जाने से आज वहां मंदिर न रहा केवल एक प्रतिमा बची थी। अब वह तीर्थ फिर से प्रतिष्ठित हो गया और अनेक बार श्री विजयवल्लभसूरिजी और उनके शिष्य परम्परा द्वारा तीर्थोद्धार हुआ एवं धर्मशाला आदि का निर्माण हो गया जबकि अभी वहां एक भी जैन घर नहीं रहा। विशेष जानने के लिए मेरी नगरकोट कांगडा पुस्तक देखनी चाहिए। इस विज्ञप्ति-त्रिवेणी में वहां की पंचतीर्थी का वर्णन मिलता है जहां अब एक भी मन्दिर अवशेष नहीं बचा है। इसी प्रकार तीर्थमाला, चैत्य परिपाटी आदि साहित्य में अनेक तीर्थों, मन्दिरों आदि का विशद इतिहास सम्प्राप्त है।

राजस्थान में जालोर, सांचोर, मंडोवर, लाडणूं आदि में उपलब्ध साहित्य से प्राचीनतम जिनालयों का इतिहास उजागर होता है। नागौर, कडलू, जांगलू, रिणी, नौहर, पल्लू, भटनेर, राजलदेसर आदि अनेक गांवों के मन्दिरों का अस्तित्व बतलाने वाले स्तवन उनके निर्माताओं का भी विशद इतिहास प्रकट करते हैं। जैसलमेर की शिल्पसमृद्धि और जैन श्रावकों द्वारा निर्मापित कीर्तिकलाप उनमें लगी हुई शिलालेख प्रशस्तियां खंड काव्य की भांति विस्तृत हैं और जैनाचार्यों की परम्परा, श्रावकों के द्वारा जीर्णोद्धार, संघयात्रा तथा धर्मकार्यों के साथ-साथ मंत्री, सेनापति, संधिविग्राहक आदि विविध राजनयिक पदों पर रह कर देश सेवा करने का इतिवृत्त प्रकट करते हैं।

मेवाड़ के तीर्थों का इतिहास भी प्रकाश में लाने वाले विवरण जैनों की सेवाओं से ओतप्रोत हैं। देवलपाड़ा के मन्दिर, नागदा आङ्कड़, केसरियाजी, उदयपुर आदि की प्रशस्तियां बड़ी महत्वपूर्ण हैं। चित्तौड़, अजमेर आदि के श्रावकों की राज्यसेवा, जैनाचार्यों के कीर्तिकलाप, शास्त्रार्थ आदि के विवरण गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ के इतिहास में भी हजारों पृष्ठ की सामग्री से समृद्ध हैं।

दक्षिण भारत के गौरवस्वरूप कन्नड़, तामिल, तेलुगू, मलयालम आदि का साहित्य दिगम्बर समाज के कीर्तिकलाप, उतार-चढ़ाव से ओतप्रोत हैं। सिंध, पंजाब की समृद्धि भी किसी प्रकार ऐतिहासिक महत्व में कम नहीं थी। गौड़ी पार्श्वनाथ तीर्थ सिन्ध परिकर में था, जिसका इतिहास भी गौरवपूर्ण था।

शिल्पशास्त्र सम्बन्धी साहित्य देश की संस्कृति, धर्मप्रेम, दर्शनाभिराम मंदिरों, दुर्गकोट-किलों की समृद्धि भी जैन साहित्य और जैनश्रावकों की सेवा से ओतप्रोत हैं। इस निर्माण कला के मूल में

है शिल्पशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ। भारतीय वास्तु शास्त्र सम्बन्धी लगभग दो सौ ग्रन्थ पाये जाते हैं। श्रीमद् ज्ञानसारजी ने लिखा है कि वास्तु राजग्रन्थ के दो हजार श्लोक तो मैं पढ़ चुका हूं, ग्रह निर्माण के १६ प्रकार लिखे हैं। अपराजित वास्तुशास्त्र के ३५ श्लोकों में कैलाश पर स्थित ऋषभदेव प्रतिमा का परिकर का वर्णन महादेव पार्वती सम्वाद में विशद रूप से किया है, जो कुशल निर्देश सन १९७१ के अप्रैल अंक में प्रकाशित है।

सुल्तान अल्लाउद्दीन के मंत्री मंडल में परम जैन ठक्कुर फेरू श्रीमाल धांधिया गोत्र का था। उसने वास्तु शास्त्र ग्रन्थ लिखा है, जिसमें विविध प्रकार के तीर्थंकर जिनालयों का, जिन प्रतिमाओं का तथा शासनदेव देवियों का वर्णन किया है।

विज्ञप्ति पत्रों और नगर वर्णनात्मक काव्यों की समृद्धि जैन साहित्य की अपनी विशेषता है। नगरों के वर्णन के साथ-साथ मान-चित्रों का महत्व बेजोड़ है। बीकानेर नगर का विज्ञप्ति पत्र १०८ फुट लम्बा है, जिसमें दुकानों, मन्दिरों, उपाश्रय आदि के चित्र हैं, जो बड़े उपाश्रय के ज्ञान भण्डार में है। हमारे शंकरदान नाहटा कला भवन में उदयपुर के विज्ञप्ति पत्र में भी इसी प्रकार पीछोला झील, राजमहल, नौकायात्रा, जिनालय, नाम सहित बाजार की दुकानें आदि चिन्हित हैं। आगरा नगर का विज्ञप्ति पत्र शाही चित्रकार शालिवाहन के हाथ का चित्रित था जो आचार्य श्री विजयसेन सूरि को भेजा गया था। ऐसे चित्र-लेख तथा अनेक महाकाव्य, खण्ड काव्य युक्त विज्ञप्ति पत्र बहुसंख्यक प्राप्त हैं, जिसमें मेघदूतादि काव्यों की पादपूर्ति रूप में निर्मित है। विनयविजय जी का आनंदलेख २५२ श्लोकों में है।

शत्रुंजय तीर्थ यात्रा का चित्र जो जैसलमेर संघ शिवासोमजी के संघ के साथ जाकर मिला था, बड़ा महत्वपूर्ण है। मैंने जयपुर के ज्ञानभंडार में देखा था।

जैन ज्ञान भंडारों में ताड़पत्रीय ग्रंथ श्रीताल पर लिखे हुए हैं जो अब नहीं मिलते। यों खर तालपत्र के ग्रंथ तो दक्षिण भारत व उड़ीसा में बहुत मिलते हैं व लिखे भी जाते हैं। ताड़पत्रीय सचित्र ग्रंथ भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। इन प्रशस्तियों में हमारे उन पूर्वजों के चित्र मिलते हैं जो हमारे लिए गौरव की वस्तु हैं। ताड़पत्रीय चित्रों से तथा कागज के ग्रंथों के चित्रों से आबू के दरड़ा वंशीय मंडलीक जो जय सागर उपाध्याय के भ्राता थे परिवार के चित्र हैं जिन्होंने आबू का तीन मंजिला खरतर वसही जिनालय निर्माण कराया था। नगरकोट कांगड़ा के खरतर वसही संज्ञक जिनालय निर्माता विमलचंद मालू का चित्र है जो जिनयतिसूरिजी के भाई के वंशज थे।

खरतर गच्छ युगप्रधानाचार्य गुर्वावली, अनेक राजाओं, जैन श्रावकों की लुप्त परम्परा को उजागर करती है। दिल्ली के तंवर राजा मदनपाल आदि का अस्तित्व इसी से प्रमाणित होता है और उसका समर्थन ठक्कुर फेरू के द्रव्य परीक्षा ग्रन्थ से समर्थित है। द्रव्य परीक्षा ग्रन्थ अपने आपमें विश्वसाहित्य में अजोड़ है। इसमें विक्रमादित्य के सिक्कों में कालिकाचार्य व दिल्ली के मदनपाल राजा आदि के सिक्के इतिहास में क्रान्तिकारी हैं। इसका अनुवाद मैंने वैशाली इन्स्टीच्यूट से प्रकाशित कराया है। साहित्य के अनेक ग्रन्थ हैं, जो पुरातात्विक दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं। विविध तीर्थकल्प सुलतान महम्मद तुगलक प्रतिबोधक श्री जिनप्रभसूरि जी द्वारा विरचित है इसमें ऐसे अनेक तीर्थों का विश्वस्त इतिवृत्त है जो आज कई एक विच्छेद भी हो गये। मैंने इसका हिन्दी अनुवाद करके नाकोड़ाजी तीर्थ से प्रकाशित करवाया था।

भारतीय लिपि विज्ञान का उद्गम भी जैनों से है। सर्वप्राचीन ब्राम्ही लिपि का लेख अजमेर संग्रहालय में है जो प्रचलित संवतों में भी सर्वप्राचीन है यह भगवान महावीर के सम्वत् ८४ का मध्यमिका नगरी से सम्बन्धित है।

भारत में सबसे बड़ी जिन प्रतिमाएं श्रमण बेलगोला में बाहुबलीजी की और बड़वानी में आदिनाथ भगवान की उल्लेखनीय है। इतिहास की दृष्टि में जिनप्रतिमादि के अभिलेख हजारों की संख्या में

प्रकाशित हैं। श्रीपूरणचंद नाहर, विजय धर्म सूरि, बुद्धिसागर सूरि
के उल्लेखनीय हैं। मुनि कान्तिसागरजी, विनयसागर जी, जयन्त
भी महत्वपूर्ण हैं। खरतर गच्छ में जो दीक्षाएं हुईं, उनकी यथा प्र
जी के सहयोग से हमने प्रकाशित की है। ग्वालियर किले की
हैं।

जैन साहित्य विविध विषय और भाषाओं में प्राचीनतम प्रति
"एगस्स सुतस्स अणंतो अत्थो" की जैन सर्वज्ञकथित लोकोक्ति
से तरुण शिष्य समयसुन्दरजी ने 'राजा नो ददते सौख्यं' के दशल
बताये और छद्मस्थ अवस्थान की भूल की पूर्ति के लिए ग्रन्थ क
रखा, जिसको सम्राट अकबर ने सुनकर काश्मीर विजय पर जाते
बाड़ी के प्रथम प्रयाण में आयोजित विद्वत सभा में अपने हाथ से क

द्वयाश्रय काव्य, सप्त संधान काव्य आदि कृतियों को रचना कोई
पंच संघान तो ठीक पर सप्त संघान काव्य मेघविजय उपाध्याय की
तो अनोखा है जिसका पूर्णतया वांचन, उद्घाटन भी नहीं हुआ। '
ग्रन्थ भी सिद्धर्षि की अद्भुत और सुरुचिपूर्ण रचना है। कुषाण का
'अंगविज्जण' ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है और वह विद्वज्जनों द्वारा प्र
जैनों की अनोखी रचना है।

भारत की सभी भाषाओं में जैन ग्रन्थ रचे गये। रास, चौपाई
तत्कालीन समसामयिक लोकगीतों की प्रयुक्त देशियां २५०० से
विधाएं १२५ से ऊपर तो सामने आ चुकी हैं। मंत्र, तंत्र-यंत्र, व्याक
वैद्य, ज्योतिष, गणित आदि सभी विषयों में जैन विद्वानों ने कलम
का अधिकांश आर्ष साहित्य अर्द्ध मागधी और महाराष्ट्री प्राकृत में है जब
में। यों देखा जाय तो परवर्ती विद्वानों की संस्कृत, बंगला, राजस्थानी,
सभी भाषाओं में तामिल, तेलुगू, मराठी आदि में जैनेतर कृतियों की
गद्य साहित्य की अन्य साहित्यिक रचनाओं में जैन साहित्य अधिक परिम
है। स्थान-स्थान पर ज्ञान भंडार स्थापित कर प्राचीन प्रतियों की रक्षा भी

इस प्रकार किसी भी दृष्टि से विहंगावलोकन कर देखें तो भी जैन
आदि पर विवेचन सीमित पृष्ठों में नहीं किया जा सकता। इसके
विद्वानों द्वारा कितने ही बड़े-बड़े ग्रन्थ तैयार किये जा सकते हैं। गुजरात की
पीहर जैनो ने त्यांछे' यह सत्य ही प्रमाणित होती है।

श्री जिनप्रभ सूरि प्रतिवोधित सम्राट सुल्तान मुहम्मद शत्रुंजय यात्रार्थ गय
की वर्षा हुई। जव विशाल दरवार का आयोजन हुआ और विश्व के
है प्रश्न आया तो सम्राट ने कहा, इस दरवार में सर्वोच्च व्यक्ति कौन है? त
सवसे बड़े हैं तो सम्राट ने कहा देवों में भी देवाधिदेव जिनेश्वर ऋषभदेव सवसे
और सर्वदोषों से रहित हैं।

इन्हीं आचार्य श्री जिनप्रभसूरि का विविध तीर्थकल्प नामक ग्रन्थ भी
विश्व साहित्य के अजोड़ ग्रन्थों की कोटि में माना जाता है। यह संस्कृत,
में लिखा गया है। इसका अनुवाद मैंने करके नाकोड़ा तीर्थ से प्रकाशित
तीर्थों का उल्लेख है वे आज कितने ही लुप्त हो गये। अलुप्त तीर्थों के नाम इस

मिथिला, कन्यापनयन, प्रतिष्ठानपत्तन, नाशिक, हरिकंखी पार्श्व, अवन्ती

प्रतिष्ठानपुर, कोकावसति, कोटिशिला, ढिंपुरी, कुड्डगेश्वर, आमरकुण्ड आदि।

जैन धर्म सर्वज्ञ प्रणीत होने से वह आत्म धर्म और संसार से मुक्ति दिलाने वाला सर्वोच्च गुणों का सागर है। इसकी विशेषताओं को उजागर कर अहिंसा, उदारता और अपरिग्रही स्याद्वाद मार्ग का आचरण कर विश्व में सुख शान्ति के साथ प्राणीमात्र उत्कर्षमय जीवन जी सकता है।

काशित हैं। श्रीपूरणचंद नाहर, विजय धर्म सूरि, बुद्धिसागर सूरि, अगरचंद भंवरलाल नाहटा आदि क उल्लेखनीय हैं। मुनि कान्तिसागरजी, विनयसागर जी, जयन्त विजयजी, जिन विजयजी आदि के ी महत्वपूर्ण हैं। खरतर गच्छ में जो दीक्षाएं हुईं, उनकी यथा प्राप्त सूची महोपाध्याय विनयसागर ी के सहयोग से हमने प्रकाशित की है। ग्वालियर किले की विशाल जिनप्रतिमाएं भी उल्लेखनीय ैं।

जैन साहित्य विविध विषय और भाषाओं में प्राचीनतम प्रतियों में लिखा हुआ उपलब्ध है। 'एगस्स सुतस्स अणंतो अत्थो'' की जैन सर्वज्ञकथित लोकोक्ति सुनकर पंडितों द्वारा हंसी उड़ाने ा तरुण शिष्य समयसुन्दरजी ने 'राजा नो ददते सौख्यं' के दशलाख साढ़ा बाईस हजार अर्थ कर ताये और छद्‌मस्थ अवस्थान की भूल की पूर्ति के लिए ग्रन्थ का नाम अष्टलक्षीया अर्थरत्नावली खा, जिसको सम्राट अकबर ने सुनकर काश्मीर विजय पर जाते हुए लाहोर के राजा रामदास की ाड़ी के प्रथम प्रयाण में आयोजित विद्वत सभा में अपने हाथ से कविवर को समर्पित किया।

द्वयाश्रय काव्य, सप्त संधान काव्य आदि कृतियों को रचना कोई साधारण बात नहीं है। द्विसंधान, च संघान तो ठीक पर सप्त संघान काव्य मेघविजय उपाध्याय की एकमात्र कृति है। भूवलय ग्रन्थ ो अनोखा है जिसका पूर्णतया वांचन, उद्‌घाटन भी नहीं हुआ। 'उपमिति भव प्रपंच कथा' रूपक न्थ भी सिद्धर्षि की अद्‌भुत और सुरुचिपूर्ण रचना है। कुषाण कालीन सांस्कृतिक सामग्री वाला अंगविज्जण' ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है और वह विद्वज्जनों द्वारा प्रशंसित है। मृग पक्षी शास्त्र भी नों की अनोखी रचना है।

भारत की सभी भाषाओं में जैन ग्रन्थ रचे गये। रास, चौपाई की तो हजारों रचनाएं है, उनमें त्कालीन समसामयिक लोकगीतों की प्रयुक्त देशियां २५०० से ऊपर होंगी। जैन रचनाओं की वधाएं १२५ से ऊपर तो सामने आ चुकी हैं। मंत्र, तंत्र-यंत्र, व्याकरण, छंद, अलंकार, काव्य, द्य, ज्योतिष, गणित आदि सभी विषयों में जैन विद्वानों ने कलम चलाई है। श्वेताम्बर समाज का अधिकांश आर्ष साहित्य अर्द्ध मागधी और महाराष्ट्री प्राकृत में है जब कि दिगंबर साहित्य सौरसेनी ैं। यों देखा जाय तो परवर्ती विद्वानों की संस्कृत, बंगला, राजस्थानी, सिंधी, पंजाबी, कन्नड़ आदि भी भाषाओं में तामिल, तेलुगू, मराठी आदि में जैनेतर कृतियों की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। द्य साहित्य की अन्य साहित्यिक रचनाओं में जैन साहित्य अधिक परिमाण में और प्राचीन उपलब्ध ै। स्थान-स्थान पर ज्ञान भंडार स्थापित कर प्राचीन प्रतियों की रक्षा भी जैनों ने ही की है।

इस प्रकार किसी भी दृष्टि से विहंगावलोकन कर देखें तो भी जैन साहित्य, कला, शिल्प, संस्कृति नादि पर विवेचन सीमित पृष्ठों में नहीं किया जा सकता। इसके विषय में इतनी सामग्री है कि वद्वानों द्वारा कितने ही बड़े-बड़े ग्रन्थ तैयार किये जा सकते हैं। गुजरात की यह कहावत 'सरस्वतीनो ोहर जैनो ने त्यांछे' यह सत्य ही प्रमाणित होती है।

श्री जिनप्रभ सूरि प्रतिबोधित सम्राट सुल्तान मुहम्मद शत्रुंजय यात्रार्थ गया वहां रायणरूख से दूध ी वर्षा हुई। जब विशाल दरबार का आयोजन हुआ और विश्व के समस्त देवों में कौन सर्वोच्च प्रश्न आया तो सम्राट ने कहा, इस दरबार में सर्वोच्च व्यक्ति कौन है? तो लोगों ने कहा आपही बसे बड़े हैं तो सम्राट ने कहा देवों में भी देवाधिदेव जिनेश्वर ऋषभदेव सबसे अधिक ऊंचे आदरणीय ौर सर्वदोषों से रहित हैं।

इन्हीं आचार्य श्री जिनप्रभसूरि का विविध तीर्थकल्प नामक ग्रन्थ भी तीर्थों के इतिहास के लिए वश्व साहित्य के अजोड़ ग्रन्थों की कोटि में माना जाता है। यह संस्कृत, प्राकृत और गद्यपद्य ं लिखा गया है। इसका अनुवाद मैने करके नाकोड़ा तीर्थ से प्रकाशित करवाया था। इसमें जिन ीर्थों का उल्लेख है वे आज कितने ही लुप्त हो गये। अलुप्त तीर्थों के नाम इस प्रकार हैं :

मिथिला, कन्यापनयन, प्रतिष्ठानपत्तन, नाशिक, हरिकंरवी पार्श्व, अवन्ती देशस्थ अभिनन्दन,

प्रतिष्ठानपुर, कोकावसति, कोटिशिला, ढिंपुरी, कुडुगेश्वर, आमरकुण्ड आदि।

जैन धर्म सर्वज्ञ प्रणीत होने से वह आत्म धर्म और संसार से मुक्ति दिलाने वाला सर्वोच्च गुणों का सागर है। इसकी विशेषताओं को उजागर कर अहिंसा, उदारता और अपरिग्रही स्याद्वाद मार्ग का आचरण कर विश्व में सुख शान्ति के साथ प्राणीमात्र उत्कर्षमय जीवन जी सकता है।

जैन मनोविद्या

- गणेश ललवानी, कलकत्ता

जीव तत्व की आलोचना करते हुए जैन मनीषियों ने मनोविद्या नामक ऐसे तत्व की आलोचना की है, विश्लेषण किया है जिसे आज हम 'साइकालाजी' (Psychology) कहते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में हम सामान्य रूप से उसी की चर्चा करेंगे।

जीव के गुणों में चेतना एवं उपयोग को प्रधान माना गया है। किन्तु चेतना क्या है? चेतना क्या है यह समझाना उतना आसान नहीं है, क्योंकि यह अनुभूति का विषय है। फिर भी चेतना क्या है समझाने के लिए चेतना की अभिव्यक्ति किन-किन रूपों में होती है उस पर प्रकाश डाला गया है। यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है, यथा- (१) सुख-दुख की अनुभूति से, (२) कार्य करने की शक्ति से, (३) ज्ञान की अनुभूति से। जैन दर्शन के अनुसार स्थावर जीव भी सुख-दुख का अनुभव करता है, पर कार्य करने की शक्ति अनुभव नहीं करता जबकि निम्न स्तरीय त्रस जीव सुख-दुःख की अनुभूति के साथ कार्य करने की शक्ति को भी अनुभव करता है, लेकिन उसे ज्ञान की अनुभूति नहीं होती। ज्ञान की अनुभूति तो होती है मात्र मनुष्य जैसे उच्च स्तरीय जीवों को ही। इन तीन प्रकार की अनुभूतियों के पूर्ण चैतन्य के विकास क्रम के तीन स्तर भी मान सकते हैं। प्रथम स्तर है सुख-दुख के अनुभव का, द्वितीय कार्य शक्ति का, तृतीय ज्ञान शक्ति का। इससे यह फलित हुआ कि जिसे साधारणतया अचेतन पदार्थ समझा जाता है उन मृत्तिकादि में भी चेतन शक्ति तो है, किन्तु है अविकसित रूप में। उस चेतना की अभिव्यक्ति होती है मात्र सुख-दुःख के अनुभव में। पाश्चातत्य क्रम-विकासवादी मनोवैज्ञानिकों ने भी आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। वे कहने लगे हैं कि मनुष्येतर जीवों में भी एक प्रकार का निम्नस्तरीय चैतन्य रहता है। वे केवल अचैतन्य वस्तु पिण्ड मात्र नहीं हैं।

जीव का दूसरा गुण है उपयोग। उसके भी दर्शन और ज्ञान के भेद से दो प्रकार बताए गए हैं। वस्तु का सामान्य अनुभव है दर्शन। दर्शन में तो मात्र इतनी उपलब्धि होती है 'कुछ है'। उदाहरण स्वरूप एक गाय को लीजिए। आपने गाय देखी, दर्शन से आपको इतना ही अनुभव हुआ, गाय 'कुछ है', पर क्या है इसकी विशेष जानकारी नहीं होती। उसके सींग हैं, पूंछ है, वह घास खाती है, दूध देती है यह सब ज्ञान नहीं होता। ज्ञान तो उपयोग का दूसरा प्रकार है, जिसका उदय होता है दर्शन के बाद और यह किस प्रकार उदय होता है आगे जाकर इसकी चर्चा करेंगे।

शास्त्रों में दर्शन के चार प्रकार बताए गए हैं। चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन। आंखों से देखकर जब यह अनुभव होता है कि 'कुछ है' तो उसे चक्षु दर्शन कहते हैं और जो अनुभव आंख के अतिरिक्त नाक, कान, जीभ और त्वचा से होता है, उसे कहते हैं अचक्षु दर्शन। अवधि दर्शन का अर्थ है एक सीमा के मध्य रूपी द्रव्यों का सामान्य सा अनुभव और केवल दर्शन का विश्व के समस्त पदार्थों का सामान्य-सा अनुभव मात्र।

उपयोग का दूसरा लक्षण है 'ज्ञान'। ज्ञान के पांच भेद हैं- मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्याय और केवल। इनमें प्रथम दो मति और श्रुत ज्ञान को जैन दर्शन ने परोक्ष एवं शेष तीन को प्रत्यक्ष माना है। अन्य दर्शन मति तथा इन्द्रिय लब्ध ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानता है। किन्तु जैन दर्शन ऐसा नहीं मानता। वह कहता है जो ज्ञान आत्मा द्वारा होता है वही ज्ञान प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रिय और मन के सहारे से उत्पन्न होता है, वह परोक्ष है। क्योंकि जो ज्ञान सीधा आत्मा से होता है उसमें भ्रान्ति हो नहीं सकती कारण वह स्व का ज्ञान है। पर जो ज्ञान अन्य की सहायता से उत्पन्न होता है वह भ्रान्ति युक्त हो सकता है। इस भ्रान्त ज्ञान को ही जैन दर्शन 'मिथ्या-ज्ञान' कहता है और इसके विपरीत ज्ञान को 'सम्यक् ज्ञान'। मति के 'मिथ्याज्ञान' को कुमति, श्रुत के मिथ्याज्ञान

को कुश्रुत कहा जाता है। अवधि ज्ञान आत्मिक होने पर भी उस समय मिथ्या हो सकता है जबकि वह अवधि की पूर्ण सीमा तक का पूर्ण ज्ञान न होकर आंशिक रूप में उत्पन्न होता है। इस अपूर्ण अवधिज्ञान को विभंग ज्ञान कहते हैं। भगवान महावीर के समय के कुछ ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख हम शास्त्रों में पाते हैं, जिन्हें यह विभंग ज्ञान हुआ था। और भगवान के समीप जाने पर उनके द्वारा उस भ्रान्त ज्ञान का निरसन किया गया।

दर्शन के बाद सर्वप्रथम जिस ज्ञान का उद्‌भव होता है वह है मतिज्ञान। यह ज्ञान मन और इन्द्रियों के सहारे से उत्पन्न होता है। मतिज्ञान के भी तीन प्रकार है : उपलब्धि, भावना, उपयोग। इनकी व्याख्या निष्प्रयोजन है। इनका स्वरूप तो नाम से ही प्रकट है यथा उपलब्धि अर्थात् ज्ञान का अनुभव, भावना उस ज्ञान का चिन्तन, उपयोग अर्थात् वैसी ही परिस्थिति में पुन: उसका प्रयोग। इसी प्रक्रिया का और अधिक स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ जैन दार्शनिकों ने मति ज्ञान को पांच भागों में विभक्त किया है। जैसे मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिवोध।

दर्शन से 'कुछ है' यह बोध होने के पश्चात् ही ज्ञान की जो क्रिया प्रारम्भ होती है उसका नाम है उपलब्धि या मति। पाश्चात्य दर्शन में इसे सेन्स इन्ट्यूसन (sense intuition), परसेप्सन (Perception) कहते हैं। जो मतिज्ञान केवल इन्द्रियों की सहायता से होता है उसे इन्द्रिय निमित्त मतिज्ञान कहते हैं और जो ज्ञान अनिन्द्रिय अर्थात् मन की अपेक्षा रखता है उसे अनिन्द्रिय मतिज्ञान कहते हैं। पर ये दोनों ज्ञान एक ही विषय के दो रूप हैं। आपने आंख से गाय देखी पर जब तक मन उसको ग्रहण नहीं करता तब तक उसका बोध नहीं होता। राह चलते हम हजारों वस्तुएं देखते हैं पर मन का संयोग नहीं होने के कारण वे हमारे ज्ञान का विषय नहीं बनता। ज्ञान का विषय वही बनता है जिसके साथ हमारे मन का संयोग होता है। लक ने इसे idea of sensation और idea of reflection कहा था। आज के पाश्चात्य दार्शनिकगण इसे वहिरानुशीलन (extrospection) और अन्तरानुशीलन (introspection कहते हैं।

इन्द्रियों के भेद से मतिज्ञान के भी पांच भेद हैं। ये आंख जनित मतिज्ञान, कान जनित मतिज्ञान, जिव्हा जनित मतिज्ञान और त्वचा जनित मतिज्ञान हैं।

मतिज्ञान या उपलब्धि परसेप्सन (perseption) हमें जिस प्रकार होती है अर्थात् उसमें जो जो चित्तवृत्तियां काम करती हैं। उसका विवरण आज के वैज्ञानिक गण जिस प्रकार दे रहे हैं उसे जैन दार्शनिकों ने ढाई हजार वर्ष पूर्व ही दे दिया था। जैन दर्शन ने उन चित्तवृत्तियों को चार नाम दिए हैं- (१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय, (४) धारणा। दर्शन और अवग्रह में कुछ भी अन्तर नहीं है। कारण अवग्रह से भी 'कुछ है' इतनी ही प्रतीति होती है। उसके विषय में सुनिश्चित या सविशेष रूप में कोई ज्ञान नहीं होता। जैसा कि हमने गाय के उदाहरण से स्पष्ट किया था। पाश्चात्य विज्ञान इसे सेनसेशन या प्रिमियम कागनितम (Premium cognitum) कहते हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिए इसकी तुलना हम किसी नायक-नायिका के प्रथम दर्शन से कर सकते हैं। प्रथम होता है मात्र दर्शन। फिर यह जानने की इच्छा होती है, 'वह कौन है?' इस इच्छा का नाम ही है 'इहा'। पाश्चात्य दर्शन में इसे परसेप्चुएल एटेन्शन (perceptual attention) कहते हैं। वह कौन है यह जानने की व्यग्रता के कारण वे जानकारी हासिल करते हैं कि वह अमुक है, वस इसी प्रक्रिया का नाम है 'अवाय'। पाश्चात्य दार्शनिकों की परिभाषा में यह है परसेप्चुएल डिटरमिनेशन (perceptual determination)। अर्थात् वह अमुक का पुत्र है, अमुक की कन्या है आदि आदि। अवाय में मतिज्ञान पूर्णता प्राप्त कर लेता है। पर यह अवाय भी किस काम का यदि वह ज्ञान चित्त में स्थिरता प्राप्त न करे। इतना सब कुछ होने पर भी यदि नायक नायिका एक-दूसरे को भूल जाएं तो वह समस्त व्यर्थ है। अत: जिस चित्तवृत्ति के आधार पर यह स्थिरता प्राप्त होती है उसे धारणा कहते हैं। पाश्चात्य दार्शनिक इसे परसेप्चुएल रिटेन्शन (perceptual retension) कहते हैं।

अवग्रह से धारणा तक मतिज्ञान का प्रथम क्षेत्र है। धारणा में जो वस्तु बैठ जाती है वह स्मृति का विषय बन जाती है। पूर्वानुभूत विषय के स्मरण का नाम है स्मृति। पाश्चात्य विज्ञान इसे रिकलेक्शन (recollection) या रिकग्निशन (recognition) कहता है। रिकग्निशन या रिकलेक्शन का तात्पर्य है देखी हुई वस्तु को मन में लाना और उसकी सहायता से जो वस्तुएं देखी जाती हैं उसे पहचानना। हमने गाय देखी। वह देखना चित्त में स्थिर हो गया। स्थिर होते ही उसकी स्मृति बन गई। अत: पुन: जब हम गाय को देखते हैं तो उसी स्मृति के आधार पर हम कहते हैं यह गाय है। हवस, हिउम आदि पाश्चात्य दार्शनिकों का यह मत था कि जिसे हम स्मृति कहते हैं वह क्षीयमान मतिज्ञान ही है, परन्तु यह गलत है। कारण इसमें कुछ ऐसी विशेपता भी है कि जिसके कारण उसे कभी नहीं भूलते एवं देखने मात्र से ही उसकी स्मृति हो जाती है। जैसे कि गाय को देखते ही आप दस वर्ष की उम्र में भी यही कहेंगे यह गाय है। पचास वर्ष की उम्र में भी यही कहेंगे, यह गाय है। स्मृति यदि क्षीयमान मति भी होती तो आप उसे भूल जाते। अत: हवस एवं हीउम के मत का आज के रीड आदि पाश्चात्य दार्शनिकों ने परित्याग कर दिया है। उनका कहना है कि स्मृति मति पर आधारित होने पर भी इसकी कुछ अपनी विशेषता है जिससे स्मरण सदैव बना रहता है।

स्मृति सदैव नहीं रहती इसके उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है कि किसी पूर्व देखे व्यक्ति को कुछ समय पश्चात् पुन: देखते हैं तो कभी-कभी याद नहीं कर पाते। ठीक है यह। किन्तु इसका कारण यह नहीं कि स्मृति आपको धोखा दे गई। इसका वास्तविक कारण यह है कि उस व्यक्ति के प्रति आपकी धारणा में कमी थी। आपने उसे सरसरी निगाह से देखा था, मन में कोई स्थाई रूप नहीं दिया गया था। धारणा पक्की नहीं होने के कारण आप उसे भूल गए थे।

मनोविज्ञान में ही नहीं योग दर्शन में भी धारणा (जिसका दूसरा नाम है भावना) का बहुत बड़ा महत्व है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का जो क्रम है वह इस धारणा पर प्रतिष्ठित है। उदाहरणत: जो हरदम महसूस करता है कि मैं बीमार हूं वह सदैव बीमार ही रहता है। कारण वह उसकी धारणा बन जाती है और वह सचमुच ही बीमार हो जाता है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा आपको इस निराशा से मुक्त करने का प्रयत्न करती है ताकि आप स्वस्थ और सबल बन सकें।

फिर भी स्मृति अपने आपमें पूर्ण नहीं है। आपने गाय देखी थी, आपके मस्तिष्क में उसकी स्मृति बन गई। किन्तु बाद में जब भी आप गाय को देखते हैं तो इसमें मात्र स्मृति ही काम नहीं करती। आपने पूर्व में जो गाय देखी थी उसका सादृश्य आप इसमें खोजते हैं। इस सादृश्य अनुसन्धान का नाम है प्रत्यभिज्ञा या संज्ञा। पाश्चात्य देश में इसे एसिमिलेशन (assimilation) कम्पेरिजन (comparison) एसिमिलेशन कन्सेप्शान (conception) कहते हैं। प्रत्यभिज्ञा चार प्रकार की होती है। गाय के उदाहरण से इसे स्पष्ट कर रहे हैं। (१) गाय जैसी है- अत: गाय है। यह प्रत्यभिज्ञा सादृश्य से हुई। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे एसोसिएशन बाई सिमिलरिटि (association by similarity) कहते हैं। (२) गाय भैंस जैसी नहीं है, भैंस के भी गाय के भांति सींग हैं, पूंछ है वह भी घास खाती है, दूध देती है फिर भी वह गाय नहीं है। अत: गाय का जो यह ज्ञान हुआ वह भैंस के सादृश्य से हुआ। इसीलिए पाश्चात्य विज्ञान इसे एसोसिएशन बाई कन्ट्रास्ट (association by contrast) कहता है। (३) निरन्तर देखते-देखते आपको जो विशेष ज्ञान हो जाता है उस विशेष ज्ञान को पाश्चात्य दर्शन में कन्सेप्शन (conception) कहा जाता है। इस प्रकार विश्व के अन्य सभी द्रव्यों से गाय का जो विशेषत्व है उसे जानने की प्रक्रिया को जैन परिभाषा में तिर्यक सामान्य और पाश्चात्य परिभाषा में स्पेसिज आइडिया (species idea) कहते हैं। (४) इसी प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यों में जिस एक्य की उपलब्धि होती है उस पर आप जो दृष्टि डालते हैं उसे जैन दर्शन में उर्द्धता सामान्य और पाश्चात्य दर्शन में सब्सट्राटम (substratum) या एसी (esse) कहा गया है। इस दृष्टि में गाय के गायत्व को विशेष धर्म से न देखकर जीव धर्म से देखते हैं। इसको और स्पष्ट करने के लिए अलंकारों का उदाहरण लीजिए। हार, बाला, अंगूठी आदि में जब उनके विशेषत्व को न

देखकर केवल सुवर्ण को देखते हैं। वस्तुत: द्रव्य का इन चार प्रकारों से जो ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञा ही है।

चिन्ता - चिन्ता को ऊह या तर्क कहा गया है। तर्क का सहज अर्थ है विचार। प्रत्यभिज्ञा या संज्ञा में हम गाय की एक संज्ञा बना लेते हैं जिसे हम गोत्व कहते हैं। फिर गोत्व और गाय में एक अविनाभाव सम्बन्ध भी स्वीकार कर लेते हैं अर्थात् जहां गोत्व है वहां गाय है। आज हम जिसे गाय कहते हैं वह इस तर्क या विचार पर ही कहते हैं। कारण हमने गाय की जो संज्ञा प्रस्तुत की थी वह सब इसमें है। पाश्चात्य विज्ञान इसे इन्डक्शन (induction) कहते हैं और वे भी जैन दार्शनिकों की भांति ही इन्डक्शन को आबजरवेशन (observation) या भूयोदर्शन का परिणाम मानते हैं। साथ ही जैनाचार्यों की भांति यह भी मानते हैं कि गाय और गोत्व का जो सम्बन्ध है वह इनवेरियेबल (iveriable) या अनकन्डिशनल (unconditional) है। जैन दर्शन इसे अविनाभाव या अन्यथानुपत्ति कहता है।

अभिनिवोध - तर्कलब्ध विषय की सहायता से अन्य विषय के ज्ञान को अभिनिवोध कहते हैं। इसका दूसरा नाम है अनुमान। अनुमान को पाश्चात्य विज्ञान में डिडक्शन (deduction) कहते हैं। न्याय शास्त्र में इसका एक प्रचलित उदाहरण है 'पर्वतोवन्हिमान धूमात' पर्वत से धूम या धुआं निकलते देखकर हम अनुमान करते हैं कि पर्वत पर आग लगी है। यह अनुमान तर्क पर प्रतिष्ठित है। आग एवं धुएं में जो अविनाभाव सम्बन्ध है वह तर्क से ही प्राप्त हुआ है। जहां-जहां हमने आग देखी वहां-वहां धुआं देखा अत: यह सोच लेते हैं कि पहाड़ से जब धुआं निकल रहा है तो अवश्य ही वहां आग है।

वास्तव में अनुमान तर्क शास्त्र का प्राण है। यह प्रत्यक्षमूलक होने पर भी ज्ञान के आहरण में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कारण अनुमान के आधार पर ही हम संसार के अधिकतम व्यवहार चला रहे हैं और अनुमान के आधार पर ही तर्कशास्त्र का विशाल भवन खड़ा है।

अनुमान कार्य कारण के सम्बन्ध से ही उद्भूत होता है। अग्नि से धूम की उत्पत्ति होती है। अग्नि के अभाव में धूम उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार कार्य कारण भाव व्याप्ति का अविनाभाव सम्बन्ध कहलाता है। इसका निश्चय तर्क से होता है जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। अविनाभाव निश्चित हो जाने पर कारण को देखते ही कार्य का बोध हो जाता है। यह बोध ही अनुमान है। जिस प्रकार धूम को देखकर ही अदृष्ट अग्नि का अनुमान हम कर लेते हैं इसी प्रकार जब हम किसी शब्द को सुनते हैं तो सुनते ही अनुमान कर लेते हैं कि यह आवाज पशु की है या मनुष्य की। फिर मनुष्य की भी है तो अमुक मनुष्य की, पशु की है ते अमुक पशु की। स्वर से स्वर वाले को पहचान लेना अनुमान का ही फल है।

अनुमान के भी दो भेद हैं- स्वार्थानुमान, परार्थानुमान। आप जब अपनी अनुभूति से यह ज्ञान प्राप्त करते हैं तो वह स्वर्थानुमान होता है। पर वाक्य के प्रयोग द्वारा जब वह अन्य को समझाया जाता है तो उसे परार्थानुमान कहा जाता है। परार्थानुमान का शाब्दिक रूप कैसा होगा इस विषय में न्याय दर्शन ने इन पांच अवयवों को माना है।

१. पर्वत में अग्नि है (प्रतिज्ञा)
२. क्योंकि वहां धूम है (हेतु)
३. जहां-जहां धूम है वहां-वहां अग्नि है (व्याप्ति)
४. पर्वत में धूम है (उपनय)
५. अत: पर्वत में अग्नि है।

प्रसंगवश प्रमाण के विषय में यहां दो शब्द उपस्थित किये जाते हैं। प्रमाण चार प्रकार के होते हैं। यथा- (१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) आगम प्रमाण, (४) उपमान प्रमाण। प्रत्यक्ष प्रमाणों

की आलोचना मति आदि ज्ञान की आलोचना में हो जाती हैं अनुमान की उपरोक्त आलोचना में। आगम प्रमाण का वर्णन श्रुतज्ञान की व्याख्या में करेंगे। उपमान प्रमाण वहां है जहां प्रसिद्ध पदार्थ के सादृश्य से अप्रसिद्ध पदार्थ का बोध होता है। गवय एक पशु है जो कि गाय जैसा होता है। यह बात जिन लोगों ने सुन रखी है वे गाय के सदृश पशु को देखते ही समझ जाएंगे कि यह गवय है। इस प्रकार दर्शन और स्मरण के निमित्त से होने वाला सादृश्यता का ज्ञान ही उपमान है।

श्रुतज्ञान - सामान्यत: श्रुत का अर्थ है सुना हुआ। वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द को सुनकर वाच्य वाचक सम्बन्ध से श्रोता को शब्द बोध होता है, वह श्रुतज्ञान कहलाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि श्रुतज्ञान के पूर्व मतिज्ञान होना अनिवार्य है। ज्ञान के द्वारा श्रोता को शब्दों का जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है। अत: मति और श्रुतज्ञान में कार्य कारण का सम्बन्ध है। मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान कार्य। मतिज्ञान के अभाव में श्रुत ज्ञान पैदा नहीं होता। यद्यपि ये दोनों ज्ञान एक साथ रहने वाले हैं, परोक्ष हैं, फिर भी उनमें भिन्नता है। मतिज्ञान मूक है, श्रुतज्ञान मुखर है। मतिज्ञान वर्तमान विषय का ग्राहक है तो श्रुतज्ञान त्रिकाल विषय का ग्राहक है। श्रुतज्ञान से ही हमें प्राचीन इतिहास आदिका, अपनी भवितव्यता का ज्ञान होता है। अभिप्राय यह है कि इन्द्रिय मनोजन्य दीर्घकालीन ज्ञान धारा का प्राथमिक अपरिपक्व अंश मतिज्ञान है और उत्तरकालीन परिपक्व अंश श्रुत ज्ञान है। जब यह श्रुत ज्ञान किसी को पूर्ण मात्रा में प्राप्त हो जाता है तो उसे श्रुत केवली कहते हैं।

श्रुतज्ञान के दो भेद हैं। (१) द्रव्य श्रुत, (२) भाव श्रुत। भाव श्रुत ज्ञानात्मक है, द्रव्यश्रुत शब्दात्मक है। द्रव्यश्रुत ही आगम है।

अनेक भारतीय धर्मों की भांति जैन धर्म भी आगम के प्रमाण्य को अंगीकार करता है। कारण जैन धर्म के अनुसार अनेकान्त दृष्टि के प्रवर्तक अखण्ड सत्य के द्रष्टा केवलज्ञानी तीर्थंकरों ने समस्त जीवों पर करुणा कर प्रवचन कुसुमों की वृष्टि की? और तीर्थंकरों के महान् मेधावी गणधरों ने उन्हें अपने बुद्धि पट पर झेलकर प्रवचन माला गूंथी। अत: जैन परम्परा में उन प्रवचन मालाओं को आगम प्रमाण रूप में माना जाता है। तर्क थक जाता है, लक्ष्य डगमगाने लगता है। चित्त चंचल हो उठता है तब आद्य प्रणीत आगम ही मुमुक्षु जनों का एकमात्र आधार बनता है, यह आगम ही द्रव्य श्रुत कहलाता है। और इसके सहारे उत्पन्न होने वाला ज्ञान भाव श्रुत है।

मतिज्ञान की भांति जैनाचार्यों ने श्रुतज्ञान को भी लब्धि, भावना, उपयोग और नय इन चार भागों में विभाजित किया है। परन्तु वास्तव में वह विषय समूह का व्याख्यान भेद मात्र है। इस व्याख्यान प्रणाली के साथ पाश्चात्य तर्क विद्या का एक्सप्लेनेशन (explanation) सादृश्य है। किसी वस्तु को उसके साथ सम्बन्धयुक्त वस्तु की सहायता से निर्देश करने का नाम है लब्धि। उदाहरणत: जब हम गाय शब्द को सुनते हैं तो प्रथम गाय का सामान्य-सा अनुभव होता है और वह भी पूर्व देखी हुई गाय के सादृश्य से। इसे ही हम लब्धि कहते हैं। तत्पश्चात् उसकी प्रकृति स्वरूप कार्य आदि की जो धारणा बनी हुई थी वह समझ आती है इसी का नाम है भावना। भावना प्रयोग कर जब गाय का अर्थ अवधारित करते हैं तो उसे 'उपयोग' कहा जाता है। पर नय कुछ विशेष है इसमें हम गाय शब्द के अर्थ को और भी परिष्कृत करते हैं। इसमें जैसे गो शब्द को लीजिए। 'गो' का अर्थ है गाय, धरती, वाक आदि आदि। अर्थात् जो चलती है वही गो है। किन्तु गो का तात्पर्य जब हम गाय करते हैं तो उसका चलना रूप सामान्य धर्म को न देखकर केवल उसके विशेष धर्म दूध देने पर दृष्टि निबद्ध करते हैं बस यही कार्य है नय का।

मति और श्रुतज्ञान के साथ-साथ परोक्ष ज्ञान की आलोचना समाप्त होती है। ये दोनों ज्ञान संसारी जीवों को रहता है, किन्तु अब जो प्रत्यक्ष ज्ञान विवृत करने जा रहे हैं, वे ऐसे नहीं हैं।

जहां तक मनुष्य और तीर्थंकरों का सम्बन्ध है, उन्हें अवधि ज्ञान साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। जिनमें जन्म से यह ज्ञान देखा जाता है वह उनकी पूर्व जन्मार्जित साधना का परिणाम ही मानना पड़ेगा।

अवधि ज्ञान - अवधि ज्ञान का अर्थ है सीमा या मर्यादा। जब आत्मा मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना ही साक्षात् आत्मिक शक्ति के द्वारा रूपी पदार्थों को मर्यादित रूप में जानने लगती है तो उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मन:पर्याय ज्ञान - मन:पर्याय ज्ञान तो विशिष्ट साधक को ही प्राप्त होता है। जिसने संयम की उत्कृष्टता प्राप्त की है, जिसका अन्त:करण अत्यन्त निर्मल हो चुका है, वही इस ज्ञान का अधिकारी होता है। इस ज्ञान के द्वारा प्राणी की चित्तवृत्तियों को मनोभावों को एक निर्दिष्ट सीमा में जाना जा सकता है।

अवधि एवं मन:पर्याय दोनों ज्ञान ही यद्यपि अपूर्ण हैं तथापि यह असाधारण है। आधुनिक वैज्ञानिक जिसे क्लेअरवायओन्स (clairvoyance) कहते हैं उसके साथ अवधि एवं टेलीपैथी या माइन्ड रिडिंग (telepathy or mind-reading) के साथ मन:पर्याय ज्ञान की कथंचित तुलना की जा सकती है।

केवलज्ञान - जिस ज्ञान से त्रिकालवर्ती और त्रिलोकवर्त्ती समस्त वस्तुएं एक साथ जानी जा सकती हैं, उस सर्वोत्तम ज्ञान को केवल ज्ञान कहा जाता है। थियोजफिष्टगण इस ज्ञान को ओमनीसाइन्स (omniscience) कहते हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और परम चिन्मय बन जाती है। यह मनुष्य की साधना का चरम फल है। इस फल की प्राप्ति होने पर आत्मा जीवन्मुक्त हो जाती है और पूर्ण सिद्धि के सन्निकट पहुंच जाती है।

नेतृत्व-के-लिए मील-के-पत्थर

- डॉ. नेमीचन्द, इन्दौर (म.प्र.)

एक किताब है- 'डाउ द जिंग' (द ताओ ऑफ लीडरशिप)। मायने हैं- नेतृत्व की विधि, शैली या मार्ग। लेखक हैं- जॉन हाइडर।

पूरी किताब जहाँ एक ओर नेतृत्व को गहराइयों-में-उतर-कर परिभाषित करती है, वहीं दूसरी ओर वह एक 'नेता-की-गुणवत्ता' पर भरपूर रोशनी डालती है।

हाइडर की इस किताब का एक-एक शब्द प्रखर है और बहुत गहन, वाचन और सावधान समझ की माँग करता है। यदि आज का नेतृत्व इक्यासी सूत्रों में से है, जो सचित्र दिये हुए हैं, एक या कुछेक को भी अपने जीवन में प्रकट करने का संकल्प करे तो यह 'वह-सब' हो सकता है, जिसके-लिए हम सदियों से प्रयत्नशील हैं।

हम यहाँ इनमें-से कुछ चुनिंदा सूत्रों की संक्षिप्त चर्चा कर रहे हैं।

एक सूत्र है : किसी भी लघुत्तम में कोई-न-कोई महत्तम उपस्थित रहता है, आखिर वट-बीज ही तो विशाल बरगद बनता है- और फिर सभी जानते हैं कि किसी भी मीलों लम्बी महान् यात्रा का आरम्भ एक छोटे/नाचीज कदम से ही होता है। बिन्दु-में-सिन्धु की झलक से कौन इंकार कर सकता है? इसलिए नेतृत्व को चाहिये कि वह **लघुत्तम-को-पूरा-सम्मान** दे और उसमें-से **महत्तम-की-प्रतीक्षा** करे।

दूसरा सूत्र है : हम जो करते हैं, करते रहते हैं, वही मार्ग है। अन्य शब्दों में यह कि हमारे चरित्र में-से ही कोई विधि, या मार्ग आकृति ग्रहण करता है।

जो लोग दृष्टा नहीं होते, वे दृष्टिवान् भी नहीं होते। आँख उनकी धन्य होती है, जो देखते तो हैं, किन्तु जो देख कर भी स्वयं को दृश्यों में उलझाते नहीं हैं। **जो जानता है, देखता भी है, किन्तु जो उलझता नहीं है- वह असली नेता है।** उसके चरित्र में-से होकर ही यथार्थ आकृति ग्रहण करता है।

एक सूत्र है : आग्रही को आग्रहानुवर्ती ही दिखाई पड़ता है, शेष के प्रति उसकी आँखें बंद ही रहती हैं। वह जो मन में पहले से बैठा है, आग्रही को वही दीख पड़ता है। ऐसा होने से दृश्य बिगड़ जाते हैं और सत्य-का-छोर हाथ से खिसक जाता है। वस्तुतः एक नेता को सच-की-खोज में प्राप्त सच को अपनी मुट्ठी से खिसकने नहीं देना है, बल्कि उसे उत्तरोत्तर घनीभूत करता है।

सत्य का स्वभाव है कि व सादगी से आवृत्त होता है। असल में सादगी पाने में आसान नहीं है। अक्सर अधिक सुन्दर दीख पड़ने की ललक में हम अधिक बदसूरत हो पड़ते हैं, इसलिए जो नेतृत्व का दायित्व लिये होता है वह इतना सादा, शुभ और सरल होता है कि उसमें-से सार्वभौमिकता छलकने/खनकने लगती है। वह स्वयं धरती हो उठता है।

नेता अहंकारी नहीं होता, विसर्जित होता है। उसका कण-कण उन लोगों में समाया होता है जो उसके पीछे चल रहे होते हैं। लोगों को लगता है अक्सर कि वे किसी नेतृत्व के पीछे चल रहे हैं, किन्तु जो नेता होता है वह आगे चल कर भी अन्तिम आदमी होता है। वह इस तरह कुछ चलता है कि समूह का हर आदमी उसका हाथ अपनी पीठ या अपने कंधे पर अनुभव करता है। उसे लगता है कि वह उसके पीछे चल रहा है, कोई दीपक उसके साथ है, कोई मन्त्र उसके रोम-रोम में अवस्थित हुआ है।

एक सूत्र है : नेतृत्व की अभिव्यक्ति उदाहरण बन कर होती है, शब्द में-से नेतृत्व प्रकट

नहीं होता। नेता खुलता (अनफोल्ड होता) है स्वकर्म में-से, अपने कृतित्व में-से। जो लोग भाषणों में-से व्यक्त होते हैं, वे नेता नहीं होते। नेता तो वास्तव में वे होते हैं, जिनकी पहचान उनके कृतित्व में-से बनती है।

सब जानते हैं कि जहाँ अधिक है, वहाँ लोभ है और जहाँ कम है, कमी है वहाँ चौर्य के लिए गुंजाइश है, इसलिए **एक सफल नेतृत्व अधिकाई और अभाव के बीच सहज संतुलन रखता है,** वह न तो लोभ ही करता है और न ही तस्करी, न ही शोषण-दमन को अपने व्यक्तित्व का अंश बना पाता है। जिसमें आंतरिक संतुलन है, वही नेतृत्व समाज को ऊँचा उठाता है और जो संतुलित न होकर संतुलित-दीख-पड़ने-का-ढोल-पीटता है, वह समाज को पतन की ओर धकेलता है।

नेतृत्व-की-शक्ति का असली स्रोत मौन है। एक सफल/कुशल नेता अपनी शक्ति मौन में-से हासिल करता है (सायलेंस इज ए ग्रेट सोर्स ऑफ स्ट्रेंथ), इसलिए **नेतृत्व को चाहिये कि वह मौन में-से ऊर्जा समेटे।** जो लोग अधिक बोलते हैं, वे सफल/अचूक नेतृत्व नहीं कर सकते। एक नेता को चाहिये कि वह स्वयं में मौन को उगने-बढ़ने (ग्रो करने) दे। ऐसा होने देने में उसे निष्कामता उपलब्ध होगी और 'यह मैं, यह वह, यह मेरा, यह उसका' का द्वैत मिटेगा। जिस व्यक्ति के मन में 'यह मेरा, यह उसका' की दुई कायम रहती है, वह नेता नहीं हो सकता। आज का नेतृत्व 'यह मैं, यह तू' के द्वैत में जी रहा है, अत: अपने कृतित्व में स्वयं द्वारा हुआ है। उसके लक्ष्य छोटे हैं, खोटे हैं, इसलिए वह, वह नहीं कर पा रहा है, जो उसके द्वारा होना चाहिये।

एक सूत्र है : **नेता को अपनी हर सांस समयबद्ध रखनी चाहिये।** यहां 'सांस' से तात्पर्य 'काम' से है। जो नेता अपने लक्ष्य पर समर्पित है, उसका काम ही उसकी सांस है और उसकी सांस ही उसका काम है। ऐसे व्यक्ति के लिए सांस और कर्त्तव्य एकार्थक शब्द होते हैं। वह हर कदम को 'टाइम' करता है। टाइमिंग उसके जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। वह सिर्फ समय के साथ जीता-भर नहीं है, बल्कि इस तरह कुछ जीता है कि क्रमश: समय या समय-मय ही हो जाता है। 'यथासमय' उसकी जिन्दगी का निर्देशक सूत्र बन जाता है।

एक अन्य सूत्र है कि जिसमें असक्तियां हैं, उसमें कुण्ठाएँ और तनाव है। यदि हम अनासक्त हो सकें तो फिर कोई वजह नहीं है कि तनाव या कुण्ठा की बेड़ी हमारी चेतना-के-पाँव में पड़े।

'तनाव' और 'स्वार्थ' एक ही अर्थ रखते हैं। **एक स्वस्थ नेता स्व+अर्थ को इतना विकसित कर लेता है कि उसके लिए हिन्दी के 'अर्थ' और अंग्रेजी के 'अर्थ' दोनों के 'अर्थ' बदल** जाते हैं। वह धन और धरती दोनों से अलिप्त जीवन जीता है। उसमें न तो कीर्ति-कामना होती है और न ही वह कोई काम इसलिए करता है कि उसका श्रेय, मात्र उसे मिले। वह काम जम कर करता है, किन्तु ऐसे सारे कामों में हाथ-लगी कीर्ति और श्रेय पर अपना स्वामित्व नहीं मानता, वह होता है सम्यक् पुरुष, सही-समय-पर-सही-काम करने वाला व्यक्ति। स्वामित्व विसर्जन जब सूक्ष्मतर स्थितियों में भी बना रहता है, तब किसी सफल नेतृत्व की महानता प्रकट होती है या शक्ल लेती है।

एक कुशल नेता दबाव या दमन की नीति पर नहीं चलता। वह अगुआई करता है, किन्तु बगैर धोंस-धमक या रुआब-आतंक के। वह नेतृत्व करता है बगैर किसी 'डॉमिनेशन' के।

एक अच्छे नेतृत्व को समूह के भावनात्मक मौसम की परख होती है। वह हवा के रुख को पहचान कर काम करता है (अवसरवादी नहीं होता), किन्तु ऐसा करते हुए वह न तो खुद के साथ कपट करता है और न ही उन लोगों के साथ जिन्होंने उसे अपना सब कुछ सौंप दिया है। ऐसा नेता कपट के समस्त पट उतार कर निपट ईमानदारी से काम करता है। मुक्त और पूरी तरह खुले रहकर काम करना उसका सहज स्वभाव होता है। वह उन लोगों से कुछ भी छुपा कर

नहीं चलता, जिनके विकास के लिए वह प्रतिफल जूझता है और जिन्हें वह सर्वोत्कृष्ट प्राप्त कराने की कोशिश में बड़ा-से-बड़ा बलिदान करने के लिए कमर कसे रहता है।

ऐसा नेता दुधारे मूल्यांकन की तेजाबी प्रक्रिया से होकर आगे बढ़ता है। वह पग-पग पर अपना मूल्यांकन स्वयं करता है और इस तरह तथा इस कदर खुद को दूसरों के लिए खुला रखता है कि कोई भी, कभी भी उसे कसौटी पर कस सके। वस्तुत: वह दूसरों द्वारा हुए मूल्यांकनों को लेकर वह उबलता, उफनता या गर्म नहीं होता, बल्कि उन्हें वह आने वाले जीवन का आधार बनाता है और प्रयत्न करता है कि वह प्रस्तुत कसौटियों के योग्य बने।

'आज' आरै 'अभी' में ठहरना बहुत कठिन काम है। ज्यादातर लोग 'बीते कल' या 'आगामी कल' में ठहरे होते हैं— 'आज में रुकना-ठहरना उनके लिए एक क्षणांश को भी सम्भव नहीं होता, किन्तु एक सफल और सत्यनिष्ठ नेतृत्व 'आज' और 'अभी' में ठहरता है— वहाँ पड़ाव डालता है— उनसे विचार-विमर्श करता है और उनकी नाड़ पर हाथ रखने के बाद ही अपने अगले पड़ाव का निर्धारण करता है। ऐसे विचक्षण व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण भविष्य उत्तरोत्तर प्रखर 'आज' होता रहता है। वह 'आज' हो रहे 'कल' को अपनी योजनाओं की बुनियाद बनाता है और अत्यन्त जागरूक चित्त से आगे बढ़ता है।

जागरूकता अपनी और अपनों की वह खरगोश-के-कान की तरह आठों याम उत्तिष्ठ रखता है। लोरियों की जगह प्रभातियां उसे अधिक प्रिय होती हैं। सोने और जागने की भेद-रेखा की उसे इतनी प्रखर और अमोघ पहचान होती है कि कुछ क्षणों के लिए दोनों क्रियाएं अपना अर्थ ही खो बैठती हैं।

हाइडर की पूरी पुस्तक इस तरह के अनूठे सूत्र-रत्नों से भरी पड़ी है। जब वह कहता है कि एक नेता शक्ति और सहानुभूति के मध्य मृदुतम, किन्तु अचंचल संतुलन रखता है तब वह नेतृत्व की परिभाषा को एक नया ही आयाम प्रदान करता है।

चूंकि शक्ति (सत्ता/सम्पदा) में उन्माद होता है वह किसी भी व्यक्ति को किसी भी हद तक पगला सकती है, अत: जब तक उसके पाँव सहानुभूति की जमीन पर टिके हुए नहीं होंगे, उसके द्वारा उसे सबके होने की आशंका लगातार बनी रहेगी जो पूरी मानवता को किसी भी सर्वनाश की दिशा में हाँक सकती है। ज्यादातर लोग शक्ति-के-उन्माद में सच और उसकी खोज को एकदम बिसार बैठते हैं— इसलिए एक नेता को प्रतिपग/प्रतिपल चोखूँट जागरूक चलना चाहिए (चलना होता है)। उसके भीतर कान-खड़े-किये-बैठी जागरूकता शक्ति और समवेदना के सुकुमार संतुलन में-से प्रकट होती है। यदि हम नेतृत्व को कम-से-कम शब्दों में परिभाषित करें तो वह यूं होगा कि जो भीतर-बाहर समग्र और संतुलित है वह स्व-पर-कल्याणकारी नेतृत्व है। आज स्व-कल्याणी (आत्म-कल्याणी नहीं) नेतृत्व तो है, किन्तु स्व-पर-स्वस्तिकर नेतृत्व देश और समाज़ की मुट्ठी से खिसका हुआ है।

हाइडर की यह किताब एक ऐसे नेतृत्व की संरचना, परिकल्पना या परिदर्शन में सफल है जो दूसरों के बनने में-से स्वयं के बनने और स्वयं के बनने में-से दूसरों के बनने में सक्रिय और सचेष्ट है। 'डाउ द जिंग' को अक्षरश: जीना या पाना मुश्किल जरूर है, किन्तु असम्भव बिल्कुल नहीं है।